प्रकाशक
भारती-सदन
२० मॉडल बस्ती,
दिल्ली।

प्रथम बार १९५२ द्वितीय बार १९५४

मुद्रक
युगान्तर प्रेस,
डफरिन पुल, दिल्ली।

प्राक्कथन

कविता का उद्देश्य है—रमण-वृत्ति। रमण वृत्ति का व्यापार प्राचीन कवियों की अनुभूति प्रधान कविताओं में ही मिल सकता है। इसलिए इस संग्रह में वीरगाथा-काल के कवियों से लेकर रीतिकाल के विशेष-विशेष कवियों की मधुर एवं प्रमादमयी कविताओं का संग्रह किया है। चन्दवरदाई की कविताएँ बहुभाषामर्मज्ञ विद्वानों को ही बुद्धिगम्य हैं, और इस संग्रह का उद्देश्य सुकुमारमति रसिकों को लाभ पहुँचाना है, इसलिए चन्द को केवल चयनिका में ही स्थान दिया गया है। यहाँ अमीर खुसरो की मनोरञ्जनात्मक कविताओं को प्रथम स्थान दिया गया है क्योंकि इनके पढ़ने से विनोद की उपलब्धि के साथ-साथ बुद्धि में तीव्रोत्पादक शक्ति भी पैदा होती है। रसिक-वृन्द खुसरो की पहेली एवं मुकरियों द्वारा विनोद-सरिता में स्नान करके कबीर की उपदेशमयी कविताओं से जीवन मे आनन्द की उपलब्धि प्राप्त कर सकेंगे। कबीर की कठिन रहस्यवादात्मक निगूढ़ कविताओं को इस संग्रह में स्थान नहीं दिया गया।

श्री गुरुनानक देव ने एकेश्वरवाद को मानते हुए साम्प्रदायिकता के झमेले को दूर करने का प्रयत्न किया है। इसी प्रकार की कविताओं को इस संग्रह में स्थान दिया गया है। तुलसीदास के परम प्रसिद्ध, विशाल रामचरितमानस, दोहावली आदि ग्रन्थों से, हिन्दी-साहित्य में प्राचीन कवि प्रकृति-चित्रण किस प्रकार करते थे, इसको स्पष्ट करने के लिए वर्षा तथा शरद्-ऋतु-वर्णन दिये गये हैं, और दोहावली से उपदेश-

परक एवं सुगम दोहे भी दिये गये हैं।

सूरदास के विनय-पद, वात्सल्य रस एव विप्रलम्भ का वर्णन, साहित्य में विशेष स्थान रखते हैं। अत तीनों प्रकार की सरस एव सरल कविताओं का सग्रह यहाँ मिल सकेगा।

मीरा प्राचीनकालीन अनुभूतिगम्य भक्ति-रस स्नातिका है। उसकी भक्तिपरक कविताओं को स्थान न देने से यह संग्रह अधूरा रह जाता, अत इसकी प्रेम तथा भक्तिमयी कविताओं की झलक यहाँ विशद रूप से मिल सकेगी।

मुसलमान (पठान) होते हुए भी रसखान की कृष्ण-विषयक भक्ति-भावना कितनी ऊँची थी, इसका दिग्दर्शन उसके मनोरञ्जक सवैयों द्वारा किया गया है।

रहीम के दोहे नीतिपरक तथा सन्मार्ग-प्रदर्शक होने के कारण नहीं छोड़े जा सकते थे, अत उत्कृष्ट कोटि के भाव वाले चुने हुए दोहों को यहां सग्रहीत किया गया है।

बिहारी शृङ्गार रस का तो कवि था ही, पर इसके साथ साथ उसका पाण्डित्य अन्य विषयों पर कुछ कम जादू-सा असर न रखता था। इस कथन को पुष्ट करने के लिए हमने हास्य एव नीतिपरक दोहों का सग्रह करके पाठकों को बिहारी की विशेषज्ञता से परिचय करा दिया है।

वृन्द की बनाई हुई 'वृन्द-सतसई' में दृष्टान्त देकर समझाया गया है कि ससार में मानव व्यवहार-निपुण कैसे हो सकता है। क्योंकि कविता का लक्ष्य निर्दिष्ट करते हुए बताया गया है कि कविता 'व्यवहारविदे' अर्थात कविता का जानना व्यवहार-ज्ञान के लिए होता है। अत वृन्द को यहां स्थान देना परमावश्यक था। मतिराम की कविताएँ [illegible] चित्रण तथा व्यावहारिक ज्ञान के विषय

में विशेषता रखती हैं, अतः उसकी सरस कविताओं की भी यहाँ झलक दिखला दी है। कौन नहीं जानता कि रसनिधि के दोहे और गिरिधर की कुण्डलियाँ जगत् का यथार्थ रूप दिखलाने के लिए हिन्दी-साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती हैं? अतः जगत् का वास्तविक रूप दिखानेवाली कुण्डलियों से पाठकों के ज्ञान में कितनी वृद्धि होगी इसको पाठक स्वयं समझ सकेंगे। पाठकों के लाभार्थ विभिन्न कवियों के, चयनिका में, उपदेशात्मक, व्यावहारिक, धार्मिक एवं मनोरञ्जक दोहे भी दिये गये हैं।

इस प्रकार विशेष-विशेष कवियों की, विशेष महत्त्व रखने वाली सरल, सरस एवं प्रसादमयी कविताओं का यह संग्रह सहृदयों के हृदय की अन्तस्थली को उल्लसित करेगा।

कविता के श्रेय और प्रेय दोनों रूपों की यहाँ झलक मिलेगी। सब कविताओं की 'सार और आलोचना' भी दे दी गई है जिससे पाठकों को कविता के रसपान में विशेष आनन्द मिल सके और वे उन कविताओं की सरसता अनुभव कर सकें। साहित्य के अरुणोदय के समय आदर्श कवियों की कविता-पुष्प-पराग की सुगन्धि, शीतल मलयानिल द्वारा विद्वानों के मस्तिष्क को सदा सुवासित करती रहेगी, ऐसा मुझे विश्वास है। पाठकों से त्रुटियों के लिए क्षमा-याचना करता हूँ।

—टेकचन्द

नोट—प्रस्तुत पुस्तक में प्रत्येक दोहे के नीचे ही उसमें आये हुए कठिन शब्दों के अर्थ दे दिये गये हैं, और साथ ही सम्पूर्ण दोहे का भावार्थ खोलकर रख दिया गया है। इससे यह पुस्तक सर्वगुण-सम्पन्न हो गई है इसलिए छात्रों को इसकी कुंजी आदि लेने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। जहाँ आप मूल का अध्ययन करेंगे वहाँ आपको साथ-ही-साथ उसकी व्याख्या भी मिल जायेगी।

प्रकाशक

विषय-क्रम-निर्देश

अमीर खुसरो

परिचय

जन्म संवत् १३१२ मृत्यु संवत् १३८२

आपका जन्म १३१२ में हुआ। मुसलमान कवि होने पर भी खड़ीबोली के प्रथम कवि होने का सौभाग्य आपको ही प्राप्त है। संस्कृत, हिन्दी, अरबी, फारसी, ब्रज, खड़ीबोली और अवधी आदि भाषाओं पर आपका पूरा अधिकार था। आपने 'ख़ालिकबारी' नामक पुस्तक लिखी, जिसमें अरबी, फ़ारसी और तुर्की आदि शब्दों के पर्यायवाची हिन्दी-शब्द पद्य में बताये गये हैं। आपकी शैली तत्कालीन कवियों की छाया पर आश्रित नहीं है, प्रत्युत अपनी प्रतिभा पर ही अवलम्बित है। आपकी पहेलियाँ, मुकरियाँ और ढकोसले हिन्दी-साहित्य की अक्षय सम्पत्ति हैं। आपका देहावसान १३८२ में हुआ।

पहेलियाँ, मुकरियाँ और ढकोसले

सार तथा आलोचना

आपकी पहेलियों में उत्सुकता से पूर्ण, बुद्धि को तीव्र करने वाली भावना सजग रूप से विद्यमान है। पाठकों के हृदय में क्षण-भर के लिए यह उत्कण्ठा उत्पन्न होती है कि यह क्या वस्तु हो सकती है ? वहीं उत्तर मिलने पर उत्कण्ठा तत्काल शान्त हो जाती है और आनन्द की लहर हृदय में हिलोरें मारने लगती है। इसी प्रकार मुकरियों में भी छेकापन्हुति मिलती है अर्थात् किस प्रकार एक सच्ची बात को छिपाकर झूठी बात की स्थापना की जा सकती है। ढकोसले और गीत भी ऊटपटाँग होने के कारण मनोरंजक हैं।

आपकी कविता की विशेषता खड़ीबोली का विकास करना है। मनोरंजन के साथ-साथ बुद्धि को चमत्कारिणी बनाना भी आपका ध्येय है। हिन्दी में हास्य रस का उद्गम भी आपकी कविताओं से होता है।

पहेलियाँ

मिला रहे तो नर रहे, अलग होय तो नार।
सोने के सा रङ्ग है, कोइ चतुरा करे विचार॥ (चना)

शब्दार्थ—नर = मनुष्य (यहाँ पर प्रयोजन पुँल्लिङ्गवाचक संज्ञा से है) नार = नार, स्त्री (यहाँ स्त्रीलिङ्गवाचक संज्ञा से प्रयोजन है)

भावार्थ—एक वस्तु ऐसी है जो यदि मिली रहे तो पुरुष (वाचक) हो जाती है और अलग हो जाय तो स्त्री (लिंगवाचक) हो जाती है। उसका रंग सोने के समान पीला है। कोई चतुर मनुष्य विचार कर बताये कि ऐसी वस्तु कौन सी है। इस पहेली का उत्तर 'चना' बताया गया है क्योंकि उसके दोनों भाग अलग अलग कर दिये जायँ तो उस चने की 'दाल' बन जाती है। 'दाल' स्त्रीवाचक संज्ञा है। अतः

कहा गया है कि अलग होने पर वह स्त्री बन जाती है। चने की दाल का रंग सोने जैसा पीला होता ही है।

एक नार तरवर से उतरी, वाके सर पर पॉव।
ऐसी नार कुनार को, मैना देखन जाव॥ (मैना)

शब्दार्थ — तरवर = वृक्ष (इसका शुद्ध रूप तरुवर है)। वाके = उसके। कुनार = बुरी स्त्री। देखन = देखने के लिए। मैना = मैं नहीं और मैना नामक पक्षी।

भावार्थ—एक स्त्री वृक्ष से उतरी जिसके सिर पर पॉव हैं। ऐसी कुनारी-स्त्री को मैं नहीं देखने जाता। पहेली के उत्तर मे इसका अर्थ होगा ऐसी नारी को देखना है तो मैना को देखो।

मैना वृक्षों पर रहती है। उसके सिर पर (पंख) और पॉव होते हैं। 'मैना' शब्द स्त्रीवाचक है। इसलिए उसे स्त्रीलिङ्ग के रूप में सम्बोधित किया गया है।

आवे तो अंधेरी लावे, जावे तो सब सुख ले जावे।
क्या जानूँ वह कैसा है, जैसा देखो वैसा है॥ (ऑख)

भावार्थ—वह जब आती है तो अंधेरी या अंधापन ला देती है। यदि वह चली जाये तो सब सुख अपने साथ ही ले जाती है। अमीर खुसरो कहते हैं कि मैं क्या जानूँ वह कैसी है। तुम उसे जैसी देखते हो यह वैसी ही है। इस पहेली का उत्तर 'ऑख' बताया जाता है, क्योंकि यदि ऑख आजाय अर्थात् ऑखें दुखने लग पड़ें तो ऑखों में अंधापन छा जाता है। और यदि ऑख चली जाय तो सब सुख चला जाता है। उसका वर्णन कोई क्या करे कि वह कैसी है। उसको तो प्रत्यक्ष देख लो। जैसी है वह अपने आप दीख जाती है।

सावन भादों बहुत चलत है, माघ पूस मे थोरी।
'अमीर खुसरो' यों कहे, तू बूझ पहेली मोरी॥ (मोरी)

शब्दार्थ—पूस=पौष का महीना। बूझ=बता। मोरी=मेरी और नाली।

भावार्थ—एक वस्तु ऐसी है जो सावन भादों में तो बहुत चलती है पर पौष और माघ के महीने में कम चलती है। अमीर खुसरो कहते हैं कि तुम मेरी इस पहेली का सोच समझ कर उत्तर दो। इसका उत्तर मोरी या नाली है। मोरी सावन भादों मे बरसात के दिनों में खूब चलती है। बरसात में मोरियों में पानी खूब बहता है। इसके विपरीत पौष माघ में वर्षा कम होने से या न होने से मोरियाँ थोड़ी चलती हैं—उनमें पानी कम बहता है।

नारी से तू नर भई, औ' श्याम बरन भइ सोय।
गली गली कूकत फिरे, कोइलो कोइलो लोय॥ (कोयला)

शब्दार्थ—भई=हो गई। औ=और। श्याम=काला। बरन=रंग। कोइलो=कोई ले लो अथवा कोयला। लोय=लोग।

भावार्थ—अमीर खुसरो कहते हैं कि तू स्त्री से तो पुरुष बन गई और रंग भी तेरा काला हो गया है, अब तुझे लोग अपने साथ लिए 'कोई लो, कोई लो' कह कर चिल्लाते हैं। इसका उत्तर 'कोयला' बताया गया है। क्योंकि लकड़ी से कोयला बनता है। लकड़ी स्त्रीलिङ्गवाचक संज्ञा है और कोयला पुँलिङ्ग वाचक संज्ञा है, इसलिए कहा गया है कि लकड़ी कोयला बन जाने पर स्त्री से पुरुष हो गई। कोयले का रंग तो काला हो ही जाता है। कोयला बेचने वाले लोग अपने साथ कोयलों को लिये हुए कोइलो-कोइलो की आवाज लगाते फिरते हैं। (ब्रजभाषा में और राजस्थानी में ओकारान्त शब्दों का प्रयोग होता है अत: 'कोयले' के स्थान पर 'कोइलो' शब्द ठीक ही है) 'कोइलो' पद से पहेली का उत्तर भी दे दिया गया है।

झिलमिल का कुआँ, रतन की क्यारी।
बताओ तो बताओ, नहीं दूँगी गारी॥ (दर्पण)

शब्दार्थ—झिलमिल = झिलमिलाहट, प्रकाश। रतन = हीरे जवाहरात।

भावार्थ—एक जगमगाहट या प्रकाश का कूआँ है। उसके चारों ओर हीरे, जवाहरात, रत्न आदि की क्यारियाँ हैं। यदि बता सकते हो कि वह कौन-सी वस्तु है तो बताओ, नहीं तो गाली दूंगी। इसका उत्तर 'दर्पण' बताया गया है। दर्पण या शीशा मानो प्रकाश का कूआँ है। उसकी चौखट पर चारों ओर जड़े हुए काच के टुकड़े मानो रत्न आदि पदार्थों की क्यारियाँ हैं।

बाला था जब सब को भाया, बढ़ा हुआ कछु काम न आया।
'खुसरो' कह दिया इसका नाँव, अर्थ करो या छोड़ो गाँव॥ (दिया)

शब्दार्थ— बाला = बच्चा और जलाया। भाया = अच्छा लगा। बढ़ा हुआ = आयु मे बड़ा हुआ अथवा बुझा दिया गया।

भावार्थ—अमीर खुसरो कहते हैं कि एक वस्तु ऐसी है जो जब तक बच्चा थी तब तक सब को अच्छी लगती थी, पर जब बड़ी हो गई तो किसी काम न आई। खुसरो ने इसका नाम कह दिया है। इस पहेली का अर्थ बताओ या गाँव छोड दो। इसका अर्थ 'दिया' बताया गया है। दिये के पक्ष मे बाला का अर्थ जलाया और 'बढ़ा हुआ' का अर्थ 'बुझाया' कर देने पर इस पहेली का अर्थ इस प्रकार होगा कि दिये को जब जलाते हैं तो वह सब को अच्छा लगता है और जब बुझा देते हैं तो वह किसी काम नहीं आता। 'कह दिया' इस पद में 'दिया' शब्द कह कर पहेली का उत्तर भी अपने आप बतला दिया गया है।

श्याम बरन पीताम्बर काँधे, मुरलीधर नहिं होय।
बिन मुरली वह नाद करत है, बिरला बूझै कोय॥ (भौंरा)

शब्दार्थ— श्याम = काला। बरन = वर्ण—रग। पीताम्बर = पीला वस्त्र। मुरलीधर = मुरली—बंशी को धारण करने वाले श्रीकृष्ण।

नाद = शब्द । विरला = कोई कोई ।

भावार्थ—एक जीव ऐसा है जिसका रंग श्याम है और जिसके कंधे पर पीताम्बर है । पर वह मुरली धारण करने वाला श्रीकृष्ण नहीं है। वह बिना ही बंशी के बंशी की ध्वनि करता है । ऐसा वह जीव कौन-सा है इस बात को कोई विरला ही समझ सकता है । इसका उत्तर 'भौंरा' बताया गया है । क्योंकि भौंरे का रंग काला होता है । उसके ऊपर पीली धारी होती है, वही पीताम्बर है । वह गूँजता रहता है, यही उसकी बंशी-ध्वनि है ।

> तरवर से एक तिरिया उतरी उसने खूब रिझाया ।
> बाप का उससे नाम जो पूछा आधा नाम बताया ।
> आधा नाम पिता पर प्यारा आधा नाम है ओरी ।
> 'अमीर खुसरो' यों कहे बूझ पहेली मोरी ॥ (निंबोरी

शब्दार्थ—तरवर = पेड़, वृक्ष, तरुवर । तिरिया = स्त्री ।

भावार्थ—वृक्ष से एक स्त्री उतरी, जिसने सबको बहुत प्रसन्न किया उसके पिता का नाम उससे पूछा गया तो उसने अपना आधा नाम पिता का बताया । उसका आधा नाम अपने पिता पर है, आधा नाम 'ओरी' है अमीर खुसरो कहते हैं कि मेरी इस पहेली को बूझो । इस पहेली का उत्तर 'निंबोरी' बताया गया है । निबोली नीम के वृक्ष से गिरती है । स्त्रीलिंग वाचक संज्ञा होने के कारण उसे तिरिया—स्त्री कहा गया है । 'निंबोरी' शब्द में उसके पिता नीम का आधा नाम 'निम्ब' है और उसके साथ ओरी जोड़ने से निम्बोरी बना । इसलिये इस पहेली का उत्तर निंबोली ठीक ही है

> आदि कटे ते सबको पारै, मध्य कटे ते सबको मारै ।
> अन्त कटे ते सबको मीठा, सो 'खुसरो' मैं आँखों दीठा॥ (काजल

शब्दार्थ—आदि = पहला । पारै = पालन करे । मध्य = बीच का अंत = आखिरी । दीठा = दीखा ।

भावार्थ—अमीर खुसरो कहते हैं कि एक वस्तु ऐसी है जिसका पहला अक्षर कट जाय तो वह सबका पालन करने वाला बन जाता है, यदि उसका बीच का अक्षर कट जाय तो सबको मारने वाला बन जाता है. यदि उसका अन्तिम अक्षर कट जाय तो सबको प्यारा लगने लगता है। कवि कहता है कि मैंने उसे आँखों से देखा है, बताओ वह क्या वस्तु है। इसका उत्तर 'काजल' दिया गया है। 'काजल' का पहला अक्षर (क) कट जाय तो जल रह जाता है जो सबका पालन करता है। यदि उसके बीच का अक्षर 'ज' हटा दिया जाय तो काल बन जाता है जो सब को मार डालता है यदि उसका अन्तिम 'ल' काट दिया जाय तो काज बन जाता है। काज या कार्य सबको प्रिय लगता है। अमीर खुसरो कहते हैं कि उस वस्तु को मैंने आँखों में देखा है। काजल आँखो में होता ही है।

एक नार कूएँ में रहे, वाका नीर खेत में बहे।
जो कोई वाके नीर को चाखे, फिर जीवन की आस न राखे।। (तलवार)

शब्दार्थ—नीर=जल।

भावार्थ—एक स्त्री कुएँ में रहती है। उसका जल युद्ध-क्षेत्र में बहता है, जो कोई उसके पानी को चख लेता है वह फिर जीवन की आशा नहीं रखता इसका उत्तर तलवार दिया गया है। क्योंकि तलवार रूपी नारी म्यान रूपी कुएं में रहती है। उससे बहाया हुआ खून रूपी जल युद्धक्षेत्र में बहता है अथवा तलवार का पानी (धार) युद्ध-क्षेत्र में बहता या चमकता है। तलवार के इस पानी को जो कोई चख लेता है वह मर ही जाता है।

एक थाल मोती से भरा, सबके सिर पर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाली फिरे, मोती उससे एक न गिरे।। (आकाश)

शब्दार्थ—औंधा=उल्टा।

भावार्थ—एक थाल मोतियों से भरा हुआ है। वह सबके सिर पर

उल्टा ?? हुआ है, आगे और थाला फिरता है फिर भी उसमें से कोई मोती नहीं गिरता। इसका उत्तर 'आकाश' दिया गया है क्योंकि आकाश रूपी थाल तारे रूपी मोतियों से भरा हुआ है और वह सबके ऊपर उल्टा पड़ा हुआ है फिर भी उसमें से तारा रूपी मोती एक भी नहीं गिरता।

बात की बात ठठोली की ठठोली।
मरद की गाँठ औरत ने खोली॥ (ताला)

शब्दार्थ—ठिठोली=हँसी-मजाक।

भावार्थ—अमीर खुसरो कहते हैं कि यह बात की तो बात है और हँसी की हँसी है कि पुरुष की गाँठ औरत ने खोली। इसका उत्तर 'ताला' दिया गया है। ताले रूपी पुरुष की गाठ 'चाबी' रूपी स्त्री खोलती है।

उज्वल वरन अधीन तन, एक चित्त दो ध्यान।
देखत में तो साधु है, निपट पाप की खान॥ (बगुला)

शब्दार्थ—उज्वल=सफेद। अधीन=विनयी नम्र। तन=शरीर। साधु=सज्जन। निपट= बिल्कुल, सर्वथा।

भावार्थ—एक जीव ऐसा है, जिसका रंग बिलकुल सफेद है और जो बड़ा विनयी है। उसका चित्त तो एक है पर ध्यान दो में लगा रहता है। देखने में तो वह बड़ा सज्जन प्रतीत होता है पर वास्तव में बिलकुल पाप की खान है, इसका उत्तर 'बगुला' है। बगुले में ये बातें पूरी पूरी घटती हैं।

एक नार तरवर से उतरी मा सो जनम न पायो।
बाप को नाम जो वासे पूछ्यो आधो नाँव बतायो।
आधो नाँव बतायो 'खुसरो' कौन देस की बोली।
वाको नाँव जो पूछ्यो मैंने अपना नाँव न बोली॥ (निबोरी)

भावार्थ—एक स्त्री वृक्ष से उतरी, उसका जन्म माँ से नहीं हुआ है। उससे उसके पिता का नाम पूछा तो उसने अपना आधा नाम 'निम्ब' बताया, मैंने जो उससे उसका अपना नाम पूछा तो वह अपना नाम कुछ न बोली, अथवा उसने अपना नाम 'नबोली' बता दिया। पहले आई हुई 'निंबोली' की पहेली के समान इसमें भी सब बातें घटती हैं।

श्याम बरन और दाँत अनेक, लचकत जैसी नारी।
दोनों हाथ से 'खुसरो' खींचे और कहूँ तू आरी॥ (आरी)

शब्दार्थ—श्याम=काली। बरन=रंग। अनेक=बहुत-से।

सरलार्थ—खुसरो कहते हैं कि एक वस्तु ऐसी है जिस का रंग काला है, बहुत से दाँत हैं और स्त्रियों की तरह लचकती है। खुसरो कहते हैं—आ,री अर्थात् अरी तू इधर आ। इसका उत्तर 'आरी' बताया गया है। आरी काले रंग की है, उसके कई दाँत होते हैं और वह स्त्रियों की तरह लचकती चलती है। लकड़ी को चीरते हुए लोग उसे दोनों हाथों से खींचते हैं।

पौन चलत वह देह बढ़ावै, जल पीवत वह जीव गँवावै।
है वह प्यारी सुन्दर नार, नार नहीं पर है वह नार॥ (आग)

शब्दार्थ—पौन=हवा। देह=शरीर।

भावार्थ—एक वस्तु ऐसी है, जिसका शरीर हवा के चलने पर बढ़ जाता है और पानी पीते ही वह मर जाती है वह बड़ी प्यारी सुन्दर नारी है। इसका उत्तर 'आग' दिया गया है। आग हवा चलने से बढ़ जाती और पानी पड़ने पर बुझ जाती है।

फारसी बोली आई ना, तुर्की ढूँढ़ी पाई ना।
हिन्दी बोली आरसी आए, 'खुसरो' कहे कोई न बताए॥ (आरसी)

शब्दार्थ—आइना=शीशा। आरसी=शीशा।

भावार्थ—फारसी भाषा में तो वह वस्तु कहीं आई नहीं अथवा फारसी में उसे 'आइना' कहते हैं। तुर्की भाषा में उसका कहीं पता नहीं लगा। हिन्दी बोली में उसे आरसी कहते हैं। खुसरो कहते हैं कि कोई नहीं बताता वह क्या वस्तु है। इसका उत्तर आरसी या शीशा बताया गया है। शीशे को फारसी में 'आइना' और हिन्दी में 'आरसी' कहते हैं।

चोरी की ना खून किया, वाका सिर क्यों काट लिया॥ (नाखून)

बीसों का सिर काट लिया, ना मारा ना खून किया॥ (नाखून)

भावार्थ—उस बेचारे ने न तो किसी की चोरी की और न किसी का खून ही किया है। फिर भी तुमने उसका सिर क्यों काट लिया? इसका उत्तर 'नाखून' दिया गया है। हाथ पैर की बीसों अंगुलियों के नाखूनों का सब लोग सिर काटते ही हैं।

आना जाना उसका भाए, जिस घर जाए लकड़ी खाए॥ (आरी)

भावार्थ—उसका आना-जाना सबको अच्छा लगता है। वह जिस घर जाती है उसी घर लकड़ी खाती है। इसका उत्तर 'आरी' दिया गया है। आरी चलती हुई सबको अच्छी लगती है और वह लकड़ी चीरती है, इस प्रकार वह लकड़ी खाती है।

हाथ में लीजे, देखा कीजे। (दर्पण)

भावार्थ—इसका उत्तर 'शीशा' दिया है। जो सर्वथा उपयुक्त है, क्योंकि शीशे को हाथ में लेकर लोग देखते रहते हैं। इसलिए इसका उत्तर दर्पण ठीक है।

एक नार ने अचरज किया, साँप मार पिंजरे में दिया।

जों जों साँप ताल को खाए, ताल सूख साँप मर जाए॥ (दिया की बत्ती

भावार्थ—एक स्त्री ने बड़ा आश्चर्यजनक काम किया कि साँप को मारकर पिंजरे में डाल दिया। ज्यों-ज्यों साँप तालाब को खाता है त्यों-त्यों

तालाब सूखता जाता है और अन्त में साँप मर जाता है। इसका उत्तर दिये की बत्ती दिया गया है। दिये की बत्ती रूपी मरा हुआ साँप दिये रूपी पिंजरे में पड़ा है। वह बत्ती रूपी साँप दिये के तेल रूपी तालाब को खाता है। ज्यों-ज्यों वह इस तेल को सुखाती है त्यों-त्यों वह स्वयं भी जलकर भस्म हो जाती है।

एक अचम्भा देखो चल, सूखी लकड़ी लागे फल।
जो कोई इस फल को खावै, पेड़ छोड़ कहिं और न जावै॥ (बरछी)

भावार्थ—चलकर यह एक आश्चर्य की बात देखो कि सूखी लकड़ी पर फल लगे हुए हैं। जो कोई उस फल को खा लेता है वह उस पेड़ को छोड़कर और कहीं नहीं जाता। इसका उत्तर 'बरछी' दिया गया है। बरछी का फल सूखे डंडे पर लगा हुआ होता है। शस्त्रों के लोहे के काटने वाले अंश को 'फल' या 'फलक' कहते हैं। बरछी का फलक जिसको लग जाता है वह मर जाता है। इसलिये कहा गया है कि जो कोई उसके फलक (की चोट) को खा लेता है वह उसको छोड़कर और कहीं नहीं जाता बल्कि मरकर वहीं ढेर हो जाता है।

एक तरुवर का फल है तर, पहिले नारी पीछे नर।
वा फल की यह देखो चाल, बाहिर खाल और भीतर बाल॥ (भुट्टा)

भावार्थ—एक वृक्ष का फल बड़ा तर (सरस) होता है। उसके पहले तो नारी है बाद में नर है। उस फल की यह विचित्र चाल देखो कि उसके बाल अन्दर हैं और खाल बाहर है। इसका उत्तर भुट्टा है। भुट्टे की मंजरी या मूँछ रूपी नारी पहले निकलती है और भुट्टा रूपी नर बाद में निकलता है। भुट्टे के बाल अन्दर होते हैं और पत्ते रूपी खाल ऊपर होती हैं।

आगे आगे बहिना आई, पीछे पीछे भइया।
दांत निकारे बाबा आए, बुरका ओढ़े मइया॥ (भुट्टा)

भावार्थ—आगे-आगे बहन आई और पीछे-पीछे भाई, दाँत निकालते

हुए बाबा आय औ कुर्ती फाड़कर मा आ गई। इसका उत्तर भी भुट्टा है। मंजरी रूप। बहन आगे-आगे आती है और भुट्टा रूपी भाई पीछे आता है। मक्की के दाने रूपी दाँत निकले मानो बाबा आता है। उस मक्की ने पत्ते रूपी तुर्की अपने ऊपर ओढ रक्खा है।

अचरज बँगला एक बना था, ऊपर नींव तले घर छाया।
बाँस न बल्ली बन्धन घने, कहे 'खुसरो' घर कैसे बने ॥ (बया का घोंसला)

भावार्थ—अमीर खुसरो कहते हैं कि ऐसा आश्चर्यजनक बँगला बना हुआ है कि जिसकी नींव तो ऊपर है और घर नीचे है। उसमें बाँस या बल्ली कोई नहीं है फिर भी बहुत सालों से वह बँधा हुआ है। अमीर खुसरो कहते हैं कि ऐसा घर भला कैसे बन सकता है। इसका उत्तर बया का घोंसला है। बया का घोंसला ऊपर से किसी वृक्ष की शाखा से लटकता है अतः कहा गया है कि उसकी नींव ऊपर है। इसमें कोई बाँस या बल्ली नहीं होती, फिर भी अनेक स्थानों से वह बँधा रहता है।

एक नार करतार बनाई, सूहा जोडा पहिन के आई।
हाथ लगाये वह शर्माये, या नारी को चतुर बताये ॥ (वीरवहूटी)

शब्दार्थ—करतार = ईश्वर। सूहा = लाल।

भावार्थ—भगवान् ने एक ऐसी नारी बनाई है जो लाल जोड़े पहन कर आई है। हाथ लगाते ही वह शरमा जाती है। कोई चतुर उस नारी का नाम बताये। इसका उत्तर वीरवहूटी है। वीरवहूटी लाल रंग की होती है और हाथ से छूते ही इकट्ठी हो जाती है।

धूपों से वह पैदा होवे, छाँव देख मुर्झाये।
ए री सखी मैं तुझसे पूछूँ, हवा लगे मर जाये ॥ (पसीना)

भावार्थ—धूप से तो वह पैदा होता है। छाया में मुरझा जाता है और हवा लगने पर वह मर जाता है। हे सखी, मैं तुझ से पूछती हूँ कि

वह कौन-सी वस्तु है। इसका उत्तर 'पसीना' है। पसीना धूप में पैदा होता है, छाया में कम हो जाता है और हवा के लगते ही सूख जाता है।

खेत मे उपजे सब कोई खाय। घर में होवे घर खा जाय॥ (फूट)

भावार्थ—एक वस्तु ऐसी है जो यदि खेत में उत्पन्न हो तो उसे सब कोई खाते हैं, पर यदि वह घर में उत्पन्न हो जाय तो घर को ही खा जाती है। इसका उत्तर 'फूट' है। खेत में उगने वाली फूट को सब कोई खाते हैं। पर यदि घर के लोगों मे आपस में फूट पड़ जाय तो वह घर ही नष्ट हो जाता है।

एक पुरुष बहुत गुन भरा। लेटा जागे सोवै खड़ा।
उलटा होकर डाले बेल। यह देखो करतार का खेल॥ (चरखा)

शब्दार्थ—गुण=गुण और धागा।

भावार्थ—एक पुरुष कई गुणों से भरा हुआ है। वह लेटा रहता है तो जागता है और खड़ा रहता है तो सो जाता है, वह उल्टा होकर बेल डालता है। भगवान् का यह विचित्र खेल देखो इसका उत्तर 'चरखा' है। चरखा बहुत से गुण (सूतों) से भरा हुआ होता है जब उससे सूत नहीं कातते तो उसे खड़ा कर देते है। और जब काम करते हैं तो उसे लिटा देते हैं। उसके सूत को उल्टा चला कर लपेटते हैं इसलिए कहा गया है कि वह उल्टा होकर बेल डालता है।

चालीस मन की नार रखावै, सूखी जैसी तीली।
कहने को पर्दे की बीबी, पर वह रंग रंगीली॥ (चिलम)

भावार्थ—वह चालीस मन की नारी है फिर भी तिनके के समान सूखी हुई है। कहने को तो वह परदे की बीबी है पर है वह पूरा रंग-रंगीली। इसका उत्तर 'चिलम' है। आदमी चिलम पीते हुए दोनों हाथों से उसे ऐसे उठाता है मानो भारी (चालीस मन की) हो। वह सूखी

पतली सी होती है। निलम के नीचे साफी या कपड़ा लिपटा रहता है इसलिए कहा गया है कि वह परदे की नारी है। वह लाल रंग की होती है इसलिए उसे रंग-रंगीली कहा गया है।

दानाई से दाँत उस पै लगाता नहीं कोई।
सब उसको भुनाते हैं पै खाता नहीं कोई ॥ (रुपया)

भावार्थ—एक वस्तु ऐसी है जिसे सब कोई भुनाते हैं पर खाता कोई भी नहीं और न कोई उस पर दाँत ही लगाता है। इसका उत्तर 'रुपया' दिया गया है।

जब काटो तब ही बढ़ै, बिन काटै कुम्हिलाय।
ऐसी अद्भुत नार का, अन्त न पाया जाय ॥ (दीपशिखा)

भावार्थ—एक नारी ऐसी है उसे जब काटो तभी बढ़ती है और बिना काटे मुरझा जाती है। ऐसी अद्भुत नारी का कुछ अंत नहीं पाया जाता। इसका उत्तर 'दिये की बत्ती' है। दिये की बत्ती को जितना काटो उसकी उतनी ही लौ बढ़ती है और न काटो तो उसकी लौ मन्द पड़ जाती है।

एक पुरुष का अचरज लेखा। मोती फलते आँखों देखा।
जहाँ से उपजे वहाँ समाय। जो फल गिरे सो जल जल जाय ॥(फुआरा)

भावार्थ—एक मनुष्य का बड़ा आश्चर्य जनक काम है। मैंने उसे अपनी आँखों मे मोती फलते हुए देखा। वे मोती जहाँ से उत्पन्न होते हैं वहीं समा जाते हैं। जो फल गिरते हैं वे सब जल जल जाते हैं। इसका उत्तर 'फव्वारा' है। फव्वारे के बूँदें रूपी मोती हैं। वे मोती पानी से उत्पन्न होकर पानी में समा जाते हैं और जल के जल बन जाते हैं।

जल कर उपजे जल में रहे। आँखों देखा 'खुसरो' कहे। (काजल)

भावार्थ—खुसरो कहते हैं कि एक वस्तु ऐसी है, जो जल कर उत्पन्न होती है और जल ही में रहती है। उसे अपनी आँखों से देखा है। इसका

उत्तर काजल है। काजल दिये के जलने से उत्पन्न होता है और आँखों के पानी में रहता है। वह आँखो मे देखा जाता है।

चार अंगुल का पेड़ सवा मन का पत्ता।
फल लगे अलग अलग पक जाय इकट्ठा।। (चाक)

भावार्थ—एक चार अंगुल का छोटा-सा पेड़ है पर उसका पत्ता सवा मन का है। उसके फल अलग लगते हैं और पक जाते हैं तो सब इकट्ठे हो जाते हैं। इसका उत्तर कुम्हार की 'चाक' है। कुम्हार की चाक की धुरी या आधार चार अगुल की होती है और उस पर चाक रूपी सवा मन का पत्ता होता है। उससे उत्पन्न होने वाले वरतन रूपी फल अलग-अलग उत्पन्न होते हैं और जब पक जाते हैं तो सब को इक्ठा धर दिया जाता है।

पानी में निसि दिन रहे, जाके हाड़ न मांस।
काम करे तलवार का फिर पानी में वास ।।(कुम्हार की डोरी)

शब्दार्थ—निशि=रात।

भावार्थ—एक वस्तु ऐसी है जो रात दिन पानी में रहती है उसके हड्डी या मास कुछ नहीं है फिर भी वह तलवार का काम करती है और पानी में ही रहती है। इसका उत्तर 'कुम्हार की डोरी' है।

एक कहानी मैं कहूँ, तू सुन मेरे पूत।
बिना परों वह उड़ गया, बॉध गले में सूत।। (पतंग)

भावार्थ—हे मेरे पुत्र, तू सुन, तुझे मैं एक कहानी कहती हूँ। एक वस्तु ऐसी है जो बिना ही परो के गले में सत वॉध कर आकाश में उड़ गई। इसका उत्तर पतग दिया गया है, जो सर्वथा उपयुक्त है।

मुकरियाँ

वह आवे तब शादी होय, उस बिन दूजा और न कोय।
मीठे लागे वाके बोल, ऐ सखि साजन? ना सखी ढोल॥

भावार्थ—एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि उसके आने पर ही विवाह होता है उसके बिना दूसरा कोई अच्छा नहीं लगता, उसके बोल बड़े मीठे लगते हैं। इतना कह चुकने पर सुनने वाली सखी ने जब उससे पूछा कि क्या तुम अपने प्रियतम की बात कह रही हो तो वह उत्तर देती है कि नहीं मैं तो ढोल की बात कह रही हूँ। यहाँ पर ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया गया है जो ढोल और 'साजन' दोनों के लिए उपयुक्त हो सकते हैं।

जब मेरे मन्दिर मे आवे, सोते मुझको आन जगावे।
पढ़त फिरत वह विरह के अच्छर, ऐ सखि साजन? ना सखि, मच्छर॥

शब्दार्थ—मन्दिर = महल, घर।

भावार्थ—हे सखी, वह जब मेरे घर आता है तो मुझे सोई हुई को जगा देता है और सदा विरह के गीत गाता रहता है। इस पर सखी पूछती है कि क्या अपने साजन की बात कह रही हो। तब वह बात बदल कर कहती है कि नहीं मैं तो मच्छर की बात कह रही हूँ।

बेर बेर सोवतहिं जगावे, ना जागूँ तो काटे खावे।
व्याकुल हुई मैं हक्की बक्की, ऐ सखि साजन? ना सखि, मक्खी॥

भावार्थ—वह मुझे बार बार सोई हुई को जगाता है और न जागूँ तो काटता खाता है। मैं उसके मारे व्याकुल हो जाती हूँ। हक्की-बक्की रह जाती हूँ, इस पर सखी ने पूछा कि क्या तुम अपने उस प्रियतम की बात कह रही हो। तो वह बात बदल कर कहती है कि नहीं, मैं तो मक्खी की बात कह रही हूँ।

सोभा सदा बढावनहारा, आँखिन ते छिन होत न न्यारा।
आये फिर मेरे मनरंजन, ऐ सखि साजन ? ना सखि, अंजन ॥

भावार्थ—वह सदा मेरी शोभा बढाने वाला है, वह मेरी आँखों से एक क्षण भर के लिए भी अलग नहीं होता, वह मेरे मन को प्रसन्न करने के लिए बार-बार आता है। यह सुन कर सखी ने पूछा कि क्या तू अपने साजन की बात कह रही है ? इस पर वह यह उत्तर देती है कि नहीं, मैं तो 'अजन' की बात कह रही हूँ।

बरस-बरस वह देस में आवे, मुँह से मुँह लगा रस प्यावे।
वा खातिर मैं खरचे दाम, ऐ सखि साजन ? ना सखि, आम ॥

भावार्थ—वह प्रत्येक वर्ष या हर साल देश में आता है, मेरे मुँह में अपना मुँह लगा कर रस पिलाता है। इसके लिए मैं खूब पैसे खर्चती हूँ। इस पर सखी पूछती है कि क्या अपने साजन की बात कह रही हो ? तो वह बात बदल कर कहती है कि नहीं, मैं तो आमो की बात कह रही हूँ।

रात समय वह मेरे आवे, भोर भये वह घर उठ जावे।
यह अचरज है सबसे न्यारा, ऐ सखि साजन ? ना सखि, तारा ॥

शब्दार्थ—भोर=प्रातःकाल।

भावार्थ—वह रात के समय में मेरे यहाँ आता है। प्रातःकाल होते ही उठकर चला जाता है, यह बड़े आश्चर्य की बात है। सखी के यह पूछने पर कि प्रियतम की बात कह रही हो ? वह बात बदल कर कहती है कि नहीं, मैं तो तारे की बात कह रही हूँ।

जब माँगू तब जल भर लावे, मेरे मन की तपन बुझावे।
मन का भारी तन का छोटा, ऐ सखि साजन ? ना सखि, लोटा ॥

भावार्थ—वह जब मैं मागूँ तभी पानी भर लाता है, मेरे मन की तपन को बुझा देता है। उसका मन तो बड़ा भारी है पर शरीर बहुत

छोटा है। इस पर सखी पूछती है क्या अपने प्रियतम की बात कह रही हो? तो वह कहती है कि नहीं, मैं लोटे की बात कह रही हूँ।

दोसखुना हिन्दी

उत्तर

रोटी जली क्यों, घोड़ा अड़ा क्यों, पान सड़ा क्यों, फेरा न था।

भावार्थ—चूल्हे या तवे पर रक्खी हुई रोटी को यदि न फेरा जाय तो वह जल जाती है। घोड़े को तांगे आदि में जोतने से पहले यदि उन्हें गोल चक्कर में न घुमाया जाय तो वह अड़ जाता है, इसलिये कहा गया है कि घोड़े को न फिराने से वह अड़ जाता है। इसी प्रकार टोकरी में पड़े हुए पानों को यदि ऊपर नीचे न फेरा जाय तो वह सड़ जाते हैं। इसलिए इन तीनों प्रश्नों का एक ही उत्तर हुआ।

अनार क्यों न चक्खा, वज़ीर क्यों न रक्खा, दाना न था।

भावार्थ—यदि अनार में दाना न हो तो कोई कैसे खा सकता है। और वज़ीर या मन्त्री दाना या समझदार न हो तो राजा उसे कैसे रख सकता है।

गोश्त क्यों न खाया, डोम क्यों न गाया, गला न था।

भावार्थ—अच्छी तरह न गलने के कारण मास न खाया गया और गला अच्छा न होने के कारण डोम गा न सका।

राजा प्यासा क्यों, गदहा उदासा क्यों; लोटा न था।

भावार्थ—कुएँ से पानी निकाल कर पीने के लिये लोटा न होने के कारण राजा प्यासा का प्यासा रह गया। और भूमि पर न लेटने के कारण गधा उदास रहता है।

ढोलकी क्यों न बजी, दही क्यों न जमी; मढ़ी न थी।

भावार्थ—ढोलकी जब तक चमड़े से न मढ़ी गई हो तब तक नहीं

बज सकती। और छाछ आदि खटाई न हो तब तक दही नहीं जम सकती।

सितार क्यों न बजा, औरत क्यों न नहाई; परदा न था।

भावार्थ—सितार के परदे या बन्द नहीं हो, तो भला वह कैसे बज सकती है और यदि परदा न हो तो औरतें भला कैसे नहा सकती हैं।

घर क्यों अंधियारा, फकीर क्यों बिगड़ा; दिया न था।

भावार्थ—यदि घर में दिया न हो तो घर में अंधेरा हो ही जाता है। यदि फकीर को कुछ न दिया जाय तो वह बिगड़ ही जाता है।

ढकोसले

भादों पकी पीपली, झड़ झड़ पड़े कपास।
बी मेहतरानी दाल पकाओगी, या नंगा ही सो रहूँ॥

कोठी भरी कुल्हाड़ियाँ, तू हरीरा करके पी।
बहुत ताडल है तो छप्पर से मुँह पोंछ॥

पीपल पकी पपोलियाँ, झड़ झड़ परे हैं बेर।
सर मे लगा खटाक से, वाह वे तेरी मिठास॥

भैंस चढी बबूल पर और लपलप गूलर खाय।
दुम उठा कर देखा तो पूरनमासी के दिन तीन॥

गोरी के नैना ऐसे बड़े जैसे बैल के सींग॥

खीर पकाई जतन से और चरखा दिया जला।
आया कुत्ता खा गया, तू बैठा ढोल बजा, ला पानी ला॥

सावन का गीत

अम्माँ मेरे बाबा को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरो बाबा तो बुड्ढा री कि सावन आया॥

अम्माँ मेरे भाई को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरो भाई तो बाला री कि सावन आया॥
अम्माँ मेरे मामू को भेजो जी कि सावन आया।
बेटी तेरो मामू तो बाँका री कि सावन आया॥

जैसा कि ऊपर सार और समालोचना में कहा गया है यह ढकोसले और गीत ऊट-पटाँग हैं। इनका कुछ अर्थ नहीं है।

कबीरदास

परिचय

जन्म संवत् १४५५ मृत्यु संवत् १५५१

आप जाति के जुलाहे थे और आपका जन्म काशी में सं० १४५५ में हुआ। आपके गुरु का नाम रामानन्द था। आपने स्वयं लिखा है कि "काशी में हम प्रगट भये हैं, रामानन्द चेताये"। आपकी पत्नी का नाम लोई था। आपने हिन्दू और मुसलमानों को एक पिता (ईश्वर) के पुत्र माना है। आपने अपनी कविता में आश्चर्य प्रकट किया है कि दोनों (हिन्दू और मुसलमान) एक पिता की सन्तान होकर भी आपस में मतभेद क्यों रखते हैं। आपने अपनी कविता में दोनों के आडम्बरों की घोर निन्दा की है। केवल मसजिदों और मन्दिरों में ईश्वर को ढूँढने वाले हिन्दू और मुसलमान आपके भर्त्सना-पात्र बने हैं। आप बहुश्रुत थे, पंडित नहीं; उपदेशक कवि थे, केवल कवि नहीं। बहुत देशों में भ्रमण के कारण आपकी भाषा सधुक्कडी है। इसमें ब्रज, अवधी, खड़ीबोली, पंजाबी आदि अनेक प्रान्तीय भाषाओं का पुट मिलता है।

कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' कहलाता है। इसके तीन भाग हैं—१ रमैनी, २. शब्द और ३. साखी। आपका मृत्यु-समय गवेषणा करने पर १५५१ उपलब्ध होता है। परन्तु जनश्रुति के आधार पर १५७५ माना जाता है।

साखी

सार और आलोचना

आपकी कविता मे निर्गुण उपासना का स्पष्टीकरण है। आप गुरु को मान देने के लिए कहते हैं कि गुरु और परमात्मा यदि दोनों खड़े हों तो मैं गुरु के चरण पहले पकड़ूँगा क्योंकि गुरु ही परमात्मा के बतलाने वाले हैं। आप मनुष्य-जीवन को पानी के बुद्बुद के समान समझते है, इसलिए अपनी कविता में यही उपदेश देते हैं कि इस थोड़े-से जीवन में ईश्वर का भजन करो, वही सच्चा सहायक है। ईश्वर-प्रेमाक्षर की शिक्षा ही जीवन को सफल बना सकती है।

आपकी कविता मानव-जीवन में क्या हेय है और क्या उपादेय है इस विषय को खोल कर सुलझाने वाली है। ईश्वर की सत्ता सर्वत्र है, उससे कोई पाप छिपा नहीं रह सकता। मानव-कर्तव्य है कि वह उसके रूप को भली भांति समझ ले जो फूल की सुगन्धि से भी सूक्ष्मतर है, तभी यह जीवन सफल हो सकता है।

कबिरा मेरी सिमरनी रसना ऊपरि रामु।
आदि जुगादि सकल भगत ताको सुखु बिस्रामु ॥

शब्दार्थ—सिमरनी = माला। रसना = जीभ। सकल = सब। बिस्रामु = विश्राम—आराम।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि मेरी माला और जीभ पर सदा राम का नाम रहता है। आदि, युगादि अर्थात् अनादि काल से सब भक्तों को राम का भजन करने से ही सुख और विश्राम या शान्ति प्राप्त होती रही।

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दिया बताय॥

शब्दार्थ—गोविन्द=भगवान्। काके=किसके। पाय लागूँ=पैरों में पड़ूँ। बलिहारी=धन्यवाद।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि गुरुदेव और भगवान् दोनों के एक साथ दर्शन हो गये तो मैं या भक्त बड़ी दुविधा में पड़ गये कि दोनों में से पहले प्रणाम किसे किया जाय। अन्त में विचारपूर्वक महात्मा कबीर कहते हैं कि मैं तो अपने गुरुदेवजी की बलिहारी हूँ, जिनकी कृपा से भगवान् के दर्शन हो गये। गुरु के ज्ञान के द्वारा ही मनुष्य को भगवान् के दर्शन हो सकते हैं, इसीलिए गुरु का कवि विशेष धन्यवाद करता है।

दुख में सुमिरन सब करैं सुख मे करै न कोय।
जो सुख मे सुमिरन करै तो दुख काहे होय॥

शब्दार्थ—सुमिरन=स्मरण (याद)। कोय=कोई। काहे=क्यों-कर। होय=होना।

भावार्थ—महात्मा कबीर कहते हैं कि दुःख में तो भगवान् का सब कोई स्मरण करते हैं, परन्तु सुख में कोई नहीं करता। यदि कोई सुख में भी भगवान् का स्मरण करता रहता है तो उसे दुःख कभी हो ही नहीं सकता।

जब लगि भक्ति सकाम है तब लगि निष्फल सेव।
कह कबीर वह क्यों मिले निहकामी निज देव॥

शब्दार्थ—सकाम=फल की इच्छा से युक्त। निष्फल=व्यर्थ। सेव=सेवा। निकामी=निष्काम, जिसको कोई इच्छा नहीं। निज=अपना। देव=देवता (ईश्वर)।

भावार्थ—जब तक भक्त किसी फल की इच्छा करता हुआ भक्ति

करता है तब तक उसकी भक्ति और सेवा व्यर्थ है। कबीर जी कहते हैं कि वह अपना परम प्रियतम प्रभु तो निष्काम है। उसे तो किसी प्रकार की इच्छा नहीं। फिर भला वह निष्काम प्रभु हमारी सकाम भक्ति से हमें कैसे मिल सकता है।

कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखौ आय॥

शब्दार्थ—नौबत = नगारा। पुर = नगर, शहर। पट्टन = कस्बा। बहुरि = फिर।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि हे मनुष्यो! तुम अपनी नौबत दस दिन बजा लो अर्थात् इस जीवन के थोड़े से समय में जो कुछ करना है सो कर लो, क्योंकि मरने के पश्चात् इस नगर, कस्बे या गली को फिर आकर देख भी न सकोगे। यह मानव-शरीर फिर मिलने का नहीं। इसलिए अभी जो कुछ करना है, कर लो।

कबिरा आप ठगाइये और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजै और ठगे दुख होय॥

शब्दार्थ—ठगाइये = स्वय धोखा खाना। कोय = कोई। ऊपजै = उत्पन्न हो।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि स्वय धोखा खाना अच्छा है, परन्तु किसी दूसरे को धोखा नहीं देना चाहिए। स्वय ठगे जाने पर प्रसन्नता होती है, पर दूसरे को ठगने से पीड़ा होता है। भाव यह कि दूसरे को कष्ट या दु ख देना किसी भी दशा मे उचित नहीं।

केसन कहा बिगारिया जो मूँडो सौ बार।
मन को क्यों नहिं मूँडिये जामे विषै विकार॥

शब्दार्थ—केसन = बाल। कहा = क्या। बिगारिया = बिगाड़ा।

मूँडो=काटना। जामें=जिसमें। विषै-विकार=काम-भावना, वासना।

भावार्थ—महात्मा कबीरदास जी कहते हैं कि इन बालों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जो तुम इन्हें बारम्बार काटते हो। उस मन को क्यों नहीं मूँडते जो वासना तथा कामना से भरपूर है। कवि का विचार है कि निर्दोष बालों को कटवाकर साधु बनना सहज है किन्तु मन की बुरी भावनाओं को हटाकर सत बनना कठिन है। अतः साधु बनने के लिए मन का सुधार आवश्यक है।

कबिरा गर्व न कीजिए काल गहे कल केस।
ना जानौं कित मारिहै क्या घर क्या परदेस॥

शब्दार्थ--गर्व=अभिमान। काल=मौत। गहे=पकड़े। केस=बाल। कित=कहां। मारिहै=मारेगा।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि मनुष्य को कभी अभिमान नहीं करना चाहिए, क्योंकि कल यमराज बालों से पकड़ लेगा और इस बात का भी पता नहीं कि वह कहाँ और किस स्थान पर पटक देगा। सारांश यह कि मौत का कुछ पता नहीं, इसलिए अहंकार नहीं करना चाहिए।

पानी केरा बुदबुदा अस मानुस की जात।
देखत ही छिप जायगा ज्यों तारा परभात॥

शब्दार्थ—केरा=का। अस=यह। मानुस=मनुष्य। जात=जाति। परभात=प्रात.काल।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि मनुष्य-शरीर पानी के बुलबुले की तरह क्षणभगुर है और वह देखते देखते इस प्रकार छिप जाता है, जिस प्रकार प्रात.कालीन तारे।

इक दिन ऐसा होयगा कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहै तन की नारी जाहिं॥

शब्दार्थ—इक=एक। कोउ=कोई। काहू=किसी का, नारी=स्त्री, नारी=नाड़ी।

भावार्थ—महात्मा कबीरदास जी कहते हैं कि एक दिन ऐसा होगा जब कोई किसी का न रहेगा। तुम घर की नारी अर्थात् अपनी पत्नी की शिकायत कर रहे हो कि वह बेवफा है परन्तु एक दिन तो तुम्हारे शरीर की नाड़ी भी तुम्हारा साथ न दे सकेगी। भाव यह कि घर की नारी का गिला तो दूर रहा शरीर की नाड़ी भी बन्द हो जायेगी।

छिनहिं चढ़ै छिन ऊतरै सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिञ्जर बसै प्रेम कहावै सोय॥

शब्दार्थ—छिनहिं=क्षण में। अघट=निरन्तर। पिंजर=शरीर। सोय=वह।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि जो क्षण में चढ जाये और क्षण में उतर जाय वह प्रेम नहीं होता। जो शरीर में निरन्तर एकरस रहे उसे वास्तव में प्रेम कहते हैं। कहने का अभिप्राय यह कि प्रेम में उतराव-चढाव नहीं होता। उसका प्रवाह सदा एक-सा रहता है।

प्रेम प्रेम सब कोई कहै प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहै प्रेम कहावै सोय॥

शब्दार्थ—प्रेम=स्नेह। चीन्है=पहचाने। कोय=कोई। आठ पहर=रात-दिन। भीना=भीगा। सोय=वही।

भावार्थ—कबीरदास जी प्रेम की व्याख्या करते हैं कि प्रेम की दुहाई सभी देते हैं परन्तु प्रेम को कोई नहीं समझता और न पहचानता है। प्रेम वह है जिसमें मनुष्य आठों पहर खोया रहे। भावार्थ यह कि प्रेम का नशा कभी नहीं उतरता।

जब मैं था तब गुरु नहीं अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी ता में दो न समाहिं॥

शब्दार्थ—सांकरी=तंग। ता में=उसमें।

भावार्थ—जब अहंकार था तब प्रभु न थे। जब परमात्मा हृदय में आये तो अहभाव चला गया। इसलिए कबीरदास जी कहते हैं कि प्रेम की गली अत्यन्त तग है, उसमें दो का वास कठिन है। अहंकार और वह परम प्रियतम प्रभु दोनों एक साथ नहीं रह सकते।

प्रेम न बाड़ी ऊपजै प्रेम न हाट विकाय।
राजा परजा जेहि रुचै सीस देइ ले जाय॥

शब्दार्थ—बाड़ी=बगीची। ऊपजै=पैदा होता है। हाट=दुकान। विकाय=बिकता है। परजा=प्रजा। जेहि=जिसे। रुचै=भाये। सीस=सिर।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि प्रेम न तो बगीची में पैदा होता है और न ही दुकान पर बिकता है। राजा और प्रजा में से जिसको प्रेम चाहिए वह आत्मदान देकर ले सकता है। भाव यह कि प्रेम में बलिदान, त्याग आदि की अत्यन्त आवश्यकता है।

कबिरा हँसना दूर करु रोने से करु चीत।
बिन रोये क्यों पाइये प्रेम पियारा मीत॥

शब्दार्थ—चीत=पहचान (प्रेम)। पाइये=प्राप्त करना। पियारा=प्यारा। मीत=मित्र।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि हँसना छोड़कर रोने से प्रेम करना चाहिए। बिना आँसू बहाये किसी ने अपना प्यारा परमेश्वर नहीं पाया। दुःख सहकर ही प्रभु को प्राप्ति होती है।

हाड जरै ज्यों लाकड़ी केस जरै ज्यों घास।
सब जग जरता देखि करि भये कबीर उदास॥

शब्दार्थ—हाड=शरीर। जरै=जले। लाकडी=लकडी।

जरता = जलता। करि = कर। भगे = हुए।

भावार्थ—शरीर लकड़ी की तरह जल रहा है और नाल सूखी घास की तरह। सारे ससार को जलता देखकर कबीरदास जी अत्यन्त उदास हो गये हैं। चिता पर मनुष्य देह सूखी लकड़ी की तरह जलकर राख हो जाती है। इस महानाश को देखकर कबीरदास जी उन्मन हो गये।

पाँचों नौबत बाजती होत छतीसो राग।
सो मंदिर खाली पड़ा बैठन लागे काग॥

शब्दार्थ—पांचों = पांच। नौबत = नगारे। छतीसो = अनेको। राग = रागरग। सो = वह। मन्दिर = महल।

भावार्थ—जिन महलों में पाँच समय नगारे बजते थे और नाना प्रकार के राग-रग होते थे आज उन्हीं महलों में कोई नहीं रहता और उनकी चोटियों पर कौवे बैठे काँय-काँय कर रहे हैं। भाव यह है कि मृत्यु के पश्चात् यह शरीर रूपी मदिर जो मनुष्य के जीवन-काल में अनेकों भोग-विलास करता है। मरने के पश्चात् इस प्रकार निस्सार हो जाता है कि कौए उस पर बैठते और मास नोच-नोच कर खाते हैं।

यह तन काँचा कुम्भ है लिये फिरै था साथ।
टपका लागा फूटिया कछु नहिं आया हाथ॥

शब्दार्थ—काँचा = कच्चा। कुम्भ = घड़ा।

भावार्थ—कबीरदास जी शरीर के सम्बन्ध में कहते हैं कि यह एक कच्चा घड़ा है, जिसे मनुष्य साथ लिये फिरता है। ज्यों ही यह शरीर-रूपी घड़ा गिर पड़ा त्यों ही फूट जायेगा। फूट जाने पर इसका कुछ उपयोग न हो सकेगा। यह शरीर नश्वर है। मृत्यु के पश्चात् इसका कुछ उपयोग न हो सकेगा।

भक्ति भाव भादों नदी सबै चली घहराय।
सरिता सोइ सराहियै जो जेठ मास ठहराय॥

शब्दार्थ—भक्ति=श्रद्धा। भादों=एक मास का नाम। घहराय=गर्जती हुई। सरिता=नदी। सोवै=वही। सराहियै=प्रशंसा कीजिये। ठहराय=रहे अर्थात् वहे।

भावार्थ—भक्ति की भावना भादों मास की नदी के समान भरकर बहती है, परन्तु कबीरदास जी कहते हैं कि नदी तो वही है जो जेठ के मास में निरन्तर वहे। प्रायः वर्षा ऋतु मे नाना नदी-नाले वहने लगते हैं और ग्रीष्म में सूख जाते हैं। यही हाल भक्ति का है। आरम्भ में भक्ति-भावना वलवती होती है परन्तु धीरे-धीरे कम होती जाती है। इसका एक रस होना निरन्तर बहना आवश्यक है।

सिख तो ऐसा चाहिए गुरु को सब कुछ देय।
गुरु तो ऐसा चाहिए सिख से कछु नहिं लेय॥

शब्दार्थ—सिख=शिष्य।

भावार्थ—महात्मा कबीरदास जी कहते हैं कि शिष्य का धर्म यह है कि वह गुरु के श्रीचरणों में अपना सर्वस्व अर्पण कर दे और गुरुदेव का कर्तव्य है कि वह अपने प्रिय शिष्य से कुछ भी ग्रहण न करे।

साधु कहावन कठिन है ज्यों खाँडे की धार।
डगमगाय तो गिरि परे निहचल उतरै पार॥

शब्दार्थ—साधु=संत। कहावत=कहलाना। खांडे=तलवार। निहचल=दृढ, निश्चल।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि साधु बनना ऐसे ही कठिन है जैसे तलवार की धार पर चलना। यदि डगमगा गया तो गिर जायगा और अगर दृढ़ रहा तो निस्संदेह पार हो जायगा।

भय बिनु भाव न ऊपजै भय बिनु होत न प्रीति ।
जब हिरदे से भय गया मिटी सकल रस नीति ॥

शब्दार्थ—भय=डर । भाव=विचार (प्रेम) । प्रीति=प्यार । हिरदे=मन । नीति=विधान ।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि भय (डर) के बिना श्रद्धा की भावना नहीं पैदा होती और न ही प्रेम की उत्पत्ति होती है । जब हृदय से डर निकल जाता है तो सब प्रकार का रस-विधान प्रेमभाव समाप्त हो जाता है ।

दया दिल मे राखिये तू क्यों निरदइ होय ।
साईं के सब जीव हैं कीड़ी कुंजर दोय ॥

शब्दार्थ—दया=कृपा । निरदइ=निष्ठुर, कठोर । साईं=ईश्वर । जीव=जीवधारी (प्राणी) । कीड़ी=चींटी । कुंजर=हाथी ।

भावार्थ—महात्मा कबीरदास जी का कथन है कि मनुष्य को अपने मन में दया भाव रखना चाहिये और कभी किसी के साथ निर्दयता का व्यवहार नहीं करना चाहिये क्योंकि चींटी से लेकर हाथी तक सभी जीव ईश्वर ही के हैं । अतः इन पर अत्याचार करना ईश्वर को अप्रसन्न करना है ।

बुरा जो मैं देखन चल्या बुरा न मिलिया कोय ।
जो दिल खोजौं आपना मुझ सा बुरा न कोय ॥

शब्दार्थ—चल्या=चला । कोय=कोई ।

भावार्थ—जब मैं नीच और पापी मनुष्य देखने चला तो मुझे कोई न दिखाई दिया, परन्तु जब मैंने अपने मन की छान-बीन की तो मुझ-सा कोई पापी न निकला । आत्म-निरीक्षण से ही वस्तुत. मनुष्य अपनी स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सकता है ।

मधुर वचन है औषधि कटुक वचन है तीर।
स्रवन-द्वार ह्वै संचरै सालै सकल सरीर॥

शब्दार्थ—मधुर=मीठे। वचन=शब्द। औषधि=दवाई। कटुक=कड़वे। स्रवन-द्वार=कान। संचरै=प्रवेश करें। सालै=दुःख दे। सकल=सारा। सरीर=शरीर (तन)।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि मीठे वचन दवाई के समान हैं और कड़वे शब्द बाण के सदृश। दोनों कान के द्वार से भीतर प्रवेश करते हैं परन्तु एक शरीर को प्रफुल्लित करता है, दूसरा उसे काटे के समान चुभता और दुःख देता है।

सिर राखे सिर जात है सिर काटे सिर सोय।
जैसे वाती दीप की कटि उजियारा होय॥

शब्दार्थ—सोय=शोभित होता है। दीप=दिया। उजियारा=प्रकाश, रोशनी। वाती=बत्ती।

भावार्थ—मनुष्य यदि अपने सिर को बचाना चाहता है, प्राणों से मोह करता है तो उसका सिर अर्थात् स्वाभिमान नष्ट हो जाता है और यदि सिर को कटा दे अर्थात् प्राणों का मोह न करे तो उसके सिर की शोभा हो जाती है, उसका मान होता है। जैसे कि दिये की बत्ती को काटो तो उसकी रोशनी बढ़ जाती है।

जो तोको काँटा बुवै ताहि बोय तू फूल।
तोहिं फूल को फूल है वाको है तिरसूल॥

शब्दार्थ—तोको=तुमको। तिरसूल=त्रिशूल।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि जो मनुष्य तुम्हारे मार्ग पर काटे बिछाता है, तू उसकी राह पर फूल बिछा। तुझे तो फूलके बदले में फूल ही मिलेंगे किन्तु उसे काटों के कारण त्रिशूल का-सा कष्ट सहन करना पड़ेगा। भाव यह कि तू सदा परोपकार करता जा और इस बात

की चिन्ता न कर कि कौन तेरा क्या अपकार करता है। क्योंकि तुम्हें भलाई का भला ही फल मिलेगा और बुरा करने वाले को बुरा फल मिलेगा।

ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै आपहु सीतल होय॥

शब्दार्थ—बानी = शब्द। आपा = अभिमान। सीतल = ठण्डा, शान्त।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि मन के अभिमान को खोकर ऐसी मधुर कोमल वाणी बोलनी चाहिए कि दूसरों के हृदय को भी शीतल करे और स्वय भी शीतल, शान्त और प्रसन्न हो जाय।

जिन ढूँढा तिन पाइया गहरै पानी पैठ।
जो बौरा डूबन डरा रहा किनारे बैठ॥

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि उस परम प्रियतम प्रभु को जिन्होंने परिश्रम करके ढूँढने का प्रयत्न किया, गहरे पानी में प्रविष्ट होने पर अर्थात् पूरी साधना करने पर वह उन्हें प्राप्त हो जाता है। पर मैं पागल तो डूबने से डरता रहा अर्थात् परिश्रम या साधना करने से घबराता रहा, इसलिए किनारे पर ही बैठा रह गया, उस प्रभु को प्राप्त न कर सका। भाव यह है कि जो मनुष्य अपने प्राणों को हथेली पर रख कर उस प्रभु को प्राप्त करने के लिए साधना करते हैं उन्हें वह मिल भी जाता है। पर जो लोग सराहना ही नहीं करते उन्हें भला वह कैसे मिल सकता है। वह तो देखते ही रह जाते हैं।

जहँ आपा तहँ आपदा जहँ संशय तहँ सोग।
कह कबीर कैसे मिटे चारो दीरघ रोग॥

शब्दार्थ—आपा = अभिमान। तहँ = वहाँ। आपदा = सकट। संशय = सन्देह। सोग = दुःख। दीरघ = बड़े।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि जहाँ अभिमान है वहाँ संकट एवं दु.ख है और जहाँ सन्देह व दुविधा होती है वहाँ शोक व दुःख होता है। यह चारों—अभिमान, सन्देह, संकट और शोक-रूपी बड़े रोग कैसे मिट सकते हैं। भाव यह है कि मनुष्य को अभिमान और सन्देह नहीं करना चाहिये।

नैना अन्दर आव तू नैन झाँपि तोहिं लेव।
ना मैं देखौं और को ना तोहिं देखन देव॥

शब्दार्थ—नैना = आखें। झांपि = बन्द करके। तोहि = तुझे।

भावार्थ—कवि अपने परम प्रियतम को सम्बोधित करते हुए कहता है कि हे परम प्रियतम प्रभो! मुझे एक बार दर्शन दो और मेरी आँखों में समा जाओ तो अपनी आखें इस प्रकार बन्द कर लूँगा कि उन आँखों से न तो मैं स्वयं तुम्हारी छवि के सिवाय किसी और को देखूँगा, और न तुम्हे ही देखने दूँगा। प्रियतम की छवि जब आँखों में समा जायगी तो यह स्वाभाविक है कि उन बन्द आँखों से न तो संसार को देखा जा सकेगा और न ससार ही उन्हे देख सकेगा।

पीया चाहे प्रेम रस राखा चाहे मान।
एक म्यान में दो खडग देखा सुना न कान॥

शब्दार्थ—मान = अभिमान। खडग = तलवार।

भावार्थ—यदि कोई प्रेम का रस भी पीना चाहे और अपना अभिमान भी न छोड़े तो यह होने का नहीं। ये दोनो बातें एक साथ कभी नहीं हो सकतीं, इन दोनों का साथ रहना वैसे ही असम्भव है, जैसे कि—एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं। इसलिए जो प्रभु के प्रेम का रस चखना चाहते हैं उन्हे अभिमान का त्याग कर देना चाहिए।

निन्दक नियरे राखिये आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना निर्मल करै सुभाय॥

शब्दार्थ—निन्दक=निन्दा करने वाला। नियरे=पास में (निकट)। कुटी=कुटिया। छवाय=छाकर (बनाकर)। निर्मल=स्वच्छ। सुभाय=स्वभाव।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि अपनी निन्दा करने वाले मनुष्य को अपने आँगन में उसके लिए कुटिया बना कर चौबीसों घण्टे अपने पास रखो, क्योंकि वह निन्दा करने वाला व्यक्ति तो बिना पानी व बिना साबुन के हमारे स्वभाव को निर्मल व पवित्र बना देता है। भाव यह कि जो पुरुष हमारी निन्दा करता है वह हमारी त्रुटियों को बताता है, हमें सहनशील व उदार बनाता है। इसलिए अपनी निन्दा करने वालों से दूर न भागो। प्रत्युत यदि कोई हमारी निन्दा करे तो उसे बड़े प्रेम से सुनो और अपनी त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न करो ताकि हमारा स्वभाव निर्मल हो जाये।

जा घट प्रेम न सचरै सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की साँस लेत बिन प्रान॥

शब्दार्थ—घट=शरीर (हृदय)। सचरै=व्याप्त होता (रहता) है। खाल=चमड़ी, यहाँ इसका अर्थ 'धौकनी' है।

भावार्थ—कबीर जी प्रेम की महिमा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिस हृदय में प्रभु के प्रेम का सचार नहीं होता उस हृदय या शरीर को श्मशान के समान घिनौना और छोड़ देने योग्य समझो। वास्तव में वह मनुष्य जीवित होते हुए भी वैसे ही मुर्दा है जैसे कि लोहार की धोकनी बिना प्राणों के श्वास लेती रहती है। इसलिए मनुष्य को सदा ईश्वर-प्रेम से अपने हृदय को भरे रखना चाहिए।

आगि लगी आकास में झरि झरि परै अँगार।
कविरा जरि कंचन भया काँच भया संसार॥

शब्दार्थ—आगि = आग। झरि झरि परै = झड़ झड़ कर गिरते हैं। कंचन = सोना।

भावार्थ—इस ससार रूपी आकाश में काम, क्रोध, दुख आदि की आग लगी हुई है। उससे अगारे झर-झर कर गिर रहे हैं। उस आग में इस ससार के विषयी प्राणी तो काच के समान पिघल गये पर कबीर उसमें तप कर सोने के समान कान्तिमान् हो गये।

जल में बसै कमोदिनी चन्दा बसै अकास।
जो है जाको भावता सो ताही के पास॥

शब्दार्थ – बसै = रहती है। कमोदिनी = कमलिनी। अकास = आकाश। जाकों = जिसको। भावता = अच्छा लगता। सो = वह। ताही = उसके।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि जो जिसको अच्छा लगता है वह उसी के पास रहता है। जैसे कुमुदिनी तो सरोवर में रहती है और चाद उससे बहुत दूर आकाश में रहता है, दोनो एक दूसरे से बहुत दूर हैं तो भी उनका परस्पर बड़ा प्रेम है, दूर रहने के कारण उनके प्रेम में कोई अन्तर नहीं आता।

तरवर तासु बिलम्बिये बारह मास फलन्त।
सीतल छाया सघन फल पंछी केल करन्त॥

शब्दार्थ—तरवर = पेड़। बिलम्बिये = आश्रय लीजिए। बारह मास = वर्ष भर। फलन्त = फल दे। सघन = घनी। केल = क्रीडा (खेल)। करन्त = करते हैं।

भावार्थ—महात्मा कबीरदास जी कहते हैं कि उस बड़े पेड़ की शरण

लेनी चाहिये जो वर्ष पर्यन्त फल देता रहे और जिसकी ठण्डी एव सुख-दायक छाया हो, व पक्षी उसकी शाखाओं पर तरह तरह की क्रीड़ा करते हों। भाव यह कि मनुष्य को सर्वश्री-सम्पन्न भगवान् का ही आश्रय लेना चाहिये। इससे उसके सम्पूर्ण दु ख दूर हो जाते हैं।

गाँठि दाम ना बाँधई नहिं नारी से नेह।
कह कबीर ता साधु के हम चरनन की खेह॥

शब्दार्थ—गांठि = जेब मे, गाठ में। दाम = रुपया। नेह = प्यार। चरनन = चरण (पैर)। खेह = मिट्टी, धूल।

भावार्थ – सत कबीर साधु की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि सच्चा साधु वही है जो जेब में पैसा नहीं रखता और न स्त्री से प्यार करता है अर्थात् सत को न तो लोभ ही होता है और न मोह। कबीरदास जी कहते हैं—मैं ऐसे नेक सत के चरणों की धूल के समान हूँ।

साधु सती औ' सूरमा ज्ञानी औ' गज-दंत।
ऐसे निकसि न बाहुरैं जो जुग जाहि अनत॥

शब्दार्थ – साधु = सज्जन। सती = पतिव्रता स्त्री। सूरमा=शूरवीर गजदंत=हाथी का दात। बाहुरैं = पुन. (फिर लौटते)। जुग = युग जाहि = व्यतीत हो जाये। अनत = अनेक।

भावार्थ—सज्जन, सती, शूरवीर, ज्ञानी पुरुषों के वचन औ हाथी का दान एक बार अपने स्थान से निकल जाने पर पुन युग युगान्तों तक उस स्थान पर नहीं आ सकते। साधु या नारी यदि पतित। जायें तो एक की तपस्या और दूसरी की धर्म-मर्यादा कभी लौट न सकती। इसी प्रकार ज्ञानी, शूर और हाथी के दात का हाल है।

अथवा—जैसे हाथी के दात एक बार उसके मुंह से बाहर निकल आ हैं तो फिर वे उसके मुख के अन्दर वापस कभी नहीं जा सकते चाहे यु

क्यों न बीत जायें, उसी प्रकार हाथी, शूरवीर, सती व साधु पुरुष एक बार जो मुँह से कह देते हैं उससे वे कभी नहीं फिरते।

रूखा सूखा खाइकै ठंडा पानी पीव।
देखि विरानी चूपड़ी मत ललचावै जीव॥

शब्दार्थ—रूखा सूखा=सादा (बिना घी वाला)। पीव=पी। विरानी=दूसरे की। जीव=मन।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि हे मनुष्य! तू सादी अर्थात् बिना घी वाली रूखी सूखी रोटी खाकर और शीतल जल पीकर सहर्ष निर्वाह कर। किसी दूसरे की चुपडी रोटी देख कर अपने मन को न तरसा। भावार्थ यह कि संतोष ही सर्वोत्तम धन है।

पोथी पढि पढि जग मुआ पंडित हुआ न कोय।
ढाई अक्खर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय॥

शब्दार्थ—पोथी=पुस्तक। मुआ=मर गया। पंडित=ज्ञानी। अक्खर=अक्षर।

भावार्थ—कबीरदास जी व्यंग्य कसते हुए कहते हैं कि यह संसार ग्रंथ व पुस्तकें पढ-पढकर भी परम ज्ञानी नहीं हो सका और न ही प्रभु-प्रेम के महत्व को समझ सका है। प्रेम के केवल ढाई अक्षर (राम) हैं जो इसे पढ लेता है वह वास्तव मे विद्वान् हो जाता है।

कस्तूरी कुण्डल वसै मृग ढूँढै वन माहिं।
ऐसे घट मे पीव है दुनिया जानै नाहिं॥

शब्दार्थ—कुंडल=नाभि। बसै=रहती है (होती है)। मृग=हरिण। माहि=में (भीतर)। घट=शरीर। पीव=परमात्मा।

भावार्थ—ब्रह्मज्ञानी कबीर कहते हैं कि जिस प्रकार हरिण की नाभि में कस्तूरी होती है, उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में परमात्मा का वास है।

जैसे मृग सुगंध के कारण बन बन भटकता फिरता है वैसे ही मनुष्य हृदयवासी ईश्वर को बाहर खोजता है। दुःख तो यह है कि इस रहस्य को अज्ञानी संसार नहीं जानता। ईश्वर को खोजने के लिए बन बन भटकने की आवश्यकता नहीं, आवश्यकता है उसे अपने भीतर देखने की।

हरि से तू जनि हेत कर कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत हैं हरिजन हरिहीं देत॥

शब्दार्थ—हरि=भगवान्। जनि=मत। हेत=प्रेम। हरिजन=भगवान् के भक्त। माल मुलुक=वैभव (धन-दौलत)।

भावार्थ—कबीरजी कहते हैं कि तू चाहे भगवान् से भले ही प्रेम मत कर, पर भगवान् के भक्त से अवश्य प्रेम कर, क्योंकि भगवान् तो प्रसन्न होकर केवल धन-धाम ही देंगे पर भगवान् का भक्त तो भगवान् को ही दे देगा।

जो आवै तो जाय नहिं जाय तो आवै नाहिं।
अकथ कहानी प्रेम की समझ लेहु मन माहिं॥

शब्दार्थ—आवै=आता है। अकथ=जो कही न जाय। लेहु=लो। माहिं=अन्दर।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि प्रेम की महिमा का कोई वर्णन नहीं कर सकता, क्योंकि जिसके हृदय में प्रभु-प्रेम का संचार हो जाता है फिर वह प्रभु-प्रेम उसके हृदय में से निकल नहीं सकता और जिसके हृदय मे उसका संचार नहीं होता वह उससे वंचित ही रह जाता है।

सपने में साईं मिले सोवत लिया जगाय।
आँखि न खोलूँ डरपता मति सुपना ह्वै जाय॥

शब्दार्थ—साईं=प्रियतम। सोवत=सोता हुआ। डरपता=डरता हुआ। मति=मत।

भावार्थ—कबीरदासजी कहते हैं कि मुझे प्रियतम स्वप्न में मिले और उन्होंने मुझ सोते हुए को जगाकर सचेत कर दिया। अब मैं इस डर के मारे अपनी आखें नहीं खोलता कि कहीं यह सारी सच्ची घटना स्वप्न न बन जाए।

कबिरा बैद बुलाइया पकरिके देखी बाहिं।
बैद न बेदन जानइ करक करेजे माँहि॥

शब्दार्थ—बैद=वैद्य। बुलाइया=बुलवाया। पकरिके=पकड़ कर। बाहि=हाथ। बेदन=पीड़ा। करक=कसक। करेजे=हृदय।

भावार्थ—कबीरदास जी ने वैद्य बुलवाया और उसने हाथ पकड़ कर नाड़ी की परीक्षा की परन्तु वह हृदय की पीड़ा या दर्द को न समझ सका और न ही उसके कारण को खोज पाया। भला अनाड़ी वैद्य पिया मिलन की व्याकुलता को क्या समझ सके। यह रोग शरीर का रोग नहीं प्रत्युत आत्मा का है। उस परम प्रियतम के विरह की वेदना को भला यह संसारी वैद्य क्या जान सकता है।

मांस गया पिञ्जर रहा ताकन लागे काग।
साहिब अजहुँ न आइया मन्द हमारे भाग॥

शब्दार्थ—गया=नष्ट हो गया। पिंजर=हड्डी का ढांचा मात्र। ताकन=देखने। मन्द=बुरे।

भावार्थ—प्रभु-विरह में व्याकुल कबीरदास जी अपनी दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि अब तो प्रतीक्षा करते-करते मेरे शरीर का बुरा हाल हो गया है। यहाँ तक कि मांस नाम-मात्र को नहीं रहा। कौवे इस अभिप्राय से देख रहे हैं कि यह कब मरे और इसकी आखें निकालें। ऐसी अवस्था मे भी ईश्वर ने दर्शनों की कृपा नहीं की। अतः हम अत्यन्त मन्द-भाग्य हैं।

रात गँवाई सोय करि दिवस गँवायो खाय।
हीरा जन्म अमोल था कौडी बदले जाय॥

शब्दार्थ—गँवाई=खोई। सोय=सोकर। दिवस=दिन। हीरा=उत्तम।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि रात सोकर खो दी और सारा दिन खाने-पीने में काट दिया परन्तु ईश्वर का भजन न किया। हीरे के समान उत्तम और अमोल जन्म को बेकार कौड़ी के समान तुच्छ बनाकर नष्ट कर दिया।

काल करै सो आज कर आज करै सो अब्ब।
पल मे परलै होयगी बहुरि करेगा कब्ब॥

शब्दार्थ—काल=कल। अब्ब=अभी। पल=अल्प काल में। परलै=प्रलय। बहुरि=फिर।

भावार्थ—तत्वज्ञानी कबीरदास जी कहते हैं कि जो कुछ तुझे कल करना है वह आज कर ले और जो तुझे आज करना है वह अभी कर। थोड़े समय के पश्चात् जब प्रलय (मृत्यु) हो जायगी तब तू कुछ नहीं कर सकेगा केवल पश्चात्ताप ही करता रह जायगा, इसलिए जो-कुछ अच्छा काम तुझे करना है उसे अभी कर ले। आज का काम कल पर न टाल।

जा मरने से जग डरै मेरे मन आनन्द।
कब मरिहौं कब पाइहौं पूरन परमानन्द॥

शब्दार्थ—जा=जिस। जग=ससार। मरिहौं=मरूँगा। पाइहौं=पाऊँगा। परमानन्द=परमात्मा।

भावार्थ—निडर कबीरदास जी कहते हैं कि जिस मृत्यु से ससार डरता है मुझे उस मृत्यु से कोई भय नहीं लगता। मैं तो उसके आने पर आनन्द मनाऊँगा, क्योंकि कौन जाने कब मर कर परमेश्वर को पा लूँ। भक्त कबीर को मृत्यु भयभीत नहीं करती प्रत्युत प्रियतम-मिलन का विश्वास

दिलाती है, इसलिए उन्हें आनन्द होता है।

जो देखे सो कहै नहिं कहै तो देखे नाहिं।
सुनै सो समझावै नहीं रसना द्रिग स्रुति काहिं॥

शब्दार्थ—रसना = जीभ। द्रिग = आँख। स्रुति = कान।

भावार्थ—जिसने उस प्रभु का साक्षात्कार कर लिया वह तो उसका वर्णन कर नहीं सकता और जो उसका वर्णन करते फिरते हैं उन्होंने उसको देखा ही नहीं। इसी प्रकार जो उसके गुणों को सुनते हैं वे दूसरे को समझा नहीं सकते अथवा जो नेत्र से देखते हैं वे तो कह नहीं सकते और जो जिह्वा बोलती है वह देख नहीं सकती। इस प्रकार जो कान सुनते हैं वह दूसरे को समझा नहीं सकते। ये सब भिन्न-भिन्न हैं।

जो जल बाढ़ै नाव में घर मे बाढ़ै दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये यहि सज्जन को काम॥

शब्दार्थ—बाढ़ै = बढ़ जाये। दाम = रुपया। दोऊ = दोनों। उलीचिये = फेंकिये। काम = कार्य।

भावार्थ—नीति-निपुण कबीरदास जी कहते हैं कि नाव में जल और घर में धन सम्पत्ति, रुपये बढ़ जावें तो दोनो हाथो से उलीचना (देना) ही सज्जनों का काम है। भाव यह कि पानी न निकाला गया तो नौका डूब जायेगी और दान न किया गया तो घर का विनाश हो जायगा।

जहाँ काम तहँ नाम नहिं जहाँ नाम नहिं काम।
दोनों कबहूँ ना मिलैं रवि रजनी इक ठाम॥

शब्दार्थ—रवि = सूर्य। रजनी = रात। इक = एक। ठाम = स्थान। काम = काम-वासना। नाम = भगवान् का नाम।

भावार्थ—संत कबीरदास जी कहते हैं कि जहाँ कामवासना है वहाँ भगवान् का नाम नहीं होता और जहाँ भगवान् का नाम होता है वहाँ

कामवासना नहीं। क्या कभी सूर्य और रात्रि एक स्थान पर मिले हैं अर्थात् कभी नहीं मिलते। इसी प्रकार भगवान् का नाम और कामवासना दोनों एक स्थान पर नहीं रह सकते।

प्रभुता को सब कोइ भजे प्रभु को भजे न कोय।
कह कबीर प्रभु को भजै प्रभुता चेरी होय॥

शब्दार्थ—प्रभुता=बड़प्पन। भजे=ले। चेरी=दासी।

भावार्थ—सब लोग चाहते हैं कि हम प्रभु—स्वामी बन जायें, पर उस प्रभु की उपासना कोई नहीं करता। यदि ईश्वर की उपासना करें तो सारी प्रभुता दासी बन जायगी।

आवत गारी एक है उलटत होत अनेक।
कह कबीर नहिं उलटिये वही एक की एक॥

शब्दार्थ—आवत=आती हुई। गारी=गाली। उलटत=लौटती हुई।

भावार्थ—नीतिकुशल कबीर कहते हैं कि गाली आती तो एक है किन्तु यदि उलटी दी जाय तो अनेक हो जाती है। अत यदि उसे न उलटो तो वही एक की एक ही रहती है अर्थात् गाली देने वाले को फिर गाली नहीं देनी चाहिये।

कबिरा गर्व न कीजिये अस जोवन की आस।
टेसू फूला दिवस दस खखर भया पलास॥

शब्दार्थ—गर्व=अभिमान। अस=इस। जोवन=यौवन। दिवस=दिन।

भावार्थ—कबीरदास कहते हैं कि इस यौवन की आशा पर अभिमान नहीं करना चाहिए। क्योंकि यह दस दिन खिलने वाले टेसू के समान है और बाद में सूखकर खखर हो जायगा।

दस द्वारे का पींजरा तामे पंछी पौन।
रहिवे को अचरज वड़ो जाय तो अचरज कौन॥

शब्दार्थ—द्वारे=दरवाजे पर। पींजरा=शरीर रूपी पिंजरा। तामें=उसमें। पौन=वायु, प्राण। अचरज=आश्चर्य।

भावार्थ—महात्मा कबीरदास जी कहते हैं कि शरीर रूपी (आँख, कान, नाक, मुख आदि) दस द्वारे के पिंजरे में प्राण रूपी पत्ती है। यदि यह इस पिंजरे से उड जाय तो क्या आश्चर्य है। हा, यदि रहने में तो निश्चय ही आश्चर्य की बात है।

चलती चक्की देख के दिया कबीरा रोय।
दुइ पाटन के बीच में साबित रहा न कोय॥

शब्दार्थ—दुइ=दो। पाटन=पुडों। साबित=पूरा।

भावार्थ—कबीरदास जी चलती चक्की देखकर रो पड़े। क्योंकि इस ससार रूपी चक्की के जन्म-मरण रूपी दोनों पाटों के बीच में पड़कर कोई भी बचकर नहीं निकल सका। अन्त में सब मृत्यु का ग्रास बनते हैं।

सिंहन के लहँड़े नहीं हसों की नहि पॉत।
लालों की नहि बोरियॉ साध न चलै जमात॥

शब्दाथ—सिंहन=शेरो के। लहँडे=मुण्ड। पांत=पक्तिया। जमात=टोली।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि शेरों के समूह नहीं होते, हसों की पक्तिया नहीं होतीं, हीरों के ढेर नहीं होते, और महात्माओ की जमात नहीं होती। भाव यह कि सज्जन कोई लाखों मे एक आध ही होता है।

पतिवरता मैली भली काली कुचित कुरूप।
पतिवरता के रूप पर वारौं कोटि सरूप॥

शब्दार्थ—पतिबरता = पतिव्रता (सती)। कुचित = बुरी। कुरूप = बुरे रूप वाली। कोटि = करोड़ों।

भावार्थ—चाहे काली, कुचैली और कुरूप भी क्यों न हो, यदि स्त्री पतिव्रता है तो वह श्रेष्ठ है। पतिव्रता के साधारण स्वरूप पर भी करोड़ों सुन्दर रूपों को न्यौछावर किया जा सकता है।

नीर पियावत का फिरै घर घर सायर वारि।
तृषावत जो होइगा पीवैगा झख मारि॥

शब्दार्थ—नीर = जल। सायर = समुद्र। वारि = जल। तृषावत = प्यासा।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि तू पानी क्या पिलाता फिरता है, प्रत्येक घर में सरोवर बने हैं। इसलिए जो प्यासा होगा वही स्वय झख मार वहा पानी पीने आयेगा। भाव यह कि तू घर-घर जाकर लोगों को उपदेश मत देता फिर। जिसको ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा होगी वह स्वय तेरे पास आ जायगा।

मेरा मुझ मे कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझ को सौंपते का लागत है मोर॥

शब्दार्थ— तोर = तेरा। लागत = लगता है। मोर = मेरा।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि हे प्रभु, मेरा मुझ में कुछ नहीं है, यह जो कुछ भी है वह तुम्हारा है। तेरी वस्तु तुझे सौंप रहा हूँ। इसमें मेरा कुछ मोल नहीं लगा है या मेरा इसमें क्या लगता है।

जब लगि मरने से डरै तब लगि प्रेमी नाहिं।
बडो दूर है प्रेम घर समुझ लेहु मन माँहि॥

शब्दार्थ—जब लगि = जब तक। लेहु = लो।

भावार्थ—मनुष्य जब तक मरने से डरता रहता है तब तक वह

सच्चा प्रभु प्रेमी नहीं बन सकता, इसलिए इस बात को हृदय में समझ लो कि प्रेम का घर बहुत दूर है। प्रभु-प्रेम बड़ी कठिनता से प्राप्त होता है।

देखा देखी भक्त का कबहुँ न चढ़सी रंग।
विपति पड़े यों छाँड़सी ज्यों कैंचुली भुजंग॥

शब्दार्थ—चढ़सो = चढ़ता है। विपति = कठिनाई। छोंडसी = छोड़ता है। भुजङ्ग = सर्प।

भावार्थ—महात्मा कबीरदास जी कहते हैं कि दूसरो की देखा-देखी से भक्ति का रग कभी नहीं चढ सकता। थोडी-सी विपत्ति में साप की केंचुली के समान भक्ति का नकली रग उतर जायेगा। भाव यह कि भक्ति तो हृदय से होनी चाहिए।

लाली मेरे लाल की जित देखो तित लाल।
लाली देखन मैं गई मैं भी हो गई लाल॥

शब्दार्थ—लाल = प्रियतम। जित = जहां। तित = तहां। लाली = उस प्रियतम का प्रकाश।

भावार्थ—सत्यवादी कबीरदास जी कहते है कि मेरे प्रियतम का ही प्रकाश सर्वत्र दिखाई दे रहा है। मैं जो उस प्रकाश को देखने के लिये प्रस्तुत हुआ तो मैं उसीका स्वरूप बन गया। ब्रह्मज्ञान के हो जाने पर आत्मा और परमात्मा में कोई भेद-भाव नहीं रहता।

जाको राखे साईयाँ मारि न सके कोय।
बाल न बाँका करि सकै जो जग बैरी होय॥

शब्दार्थ—जाको = जिसको। राखे = रक्षा करे। साईयां = स्वामी। बाल = केश। बांका = टेढा।

भावार्थ—भगवान् जिसके रक्षक हो उसको कोई नहीं मार सकता।

चाहे सारा संसार ही उसका बैरी क्यों न हो जाय, पर उसका बाल भी बाका नहीं कर सकता।

साधू ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहे थोथा देइ उड़ाय॥

शब्दार्थ—साधु = सज्जन। सूप = छाज। सुभाय = स्वभाव। सार = तत्व। गहि = ग्रहण करना।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि साधु तो छाज के समान गुणग्राही होना चाहिये, जो सार को तो ग्रहण कर ले और निस्सार वस्तु को उड़ा दे, त्याग दे।

एक कहौं तो है नहीं दोय कहौं तो गारि।
है जैसा तैसा रहे कहै कबीर विचारि॥

शब्दार्थ—दोय = दो। गारि = गाली। विचारि = विचार कर।

भावार्थ—संत कबीरदास जी कहते हैं कि प्राणी-मात्र ब्रह्मस्वरूप है, अतः उसे एक ही नहीं कहा जा सकता, परब्रह्म दो भी तो नहीं है। इसलिए वह जैसा है वैसा ही है अर्थात् अनिर्वचनीय है।

जाके मुँह माथा नहीं नाहीं रूप कुरूप।
पुहुप बास से पातरा ऐसा तत्व अनूप॥

शब्दार्थ—जाके = जिसके। रूप = स्वरूप। पुहुप = पुष्प। बास = गंध। पातरा = पतला। अनूप = विचित्र।

भावार्थ—जिसके मुख, मस्तक तथा कोई भी आकार प्रकार नहीं, वह प्रभु पुष्प की सुगन्धि से भी सूक्ष्म है। अतः उसका कोई वर्णन नहीं कर सकता।

जनम मरन से रहित है मेरा साहिब सोय।
बलिहारी वहि पीव की जिन सिरजा सब कोय॥

शब्दार्थ— जनम = पैदा होना। वलिहारी = न्यौछावर। पीव = प्रियतम। सिरजा = रचा।

भावार्थ—कवीरदास जी कहते हैं कि मेरा प्रियतम जन्म-मरण के वन्धनों से मुक्त है। मैं उस प्रियतम पर न्यौछावर जाता हूँ जिसने ससार के कण-कण की रचना की है।

साहेव सों सव होत है वंदे तें कछु नाहिं।
राई ते पर्वत करे पर्वत राई माँहि॥

शब्दार्थ—साहेव = ईश्वर। वंदे = मनुष्य।

भावार्थ—ईश्वर सव कुछ करने वाला है मनुष्य नहीं, यदि प्रभु चाहे तो राई को पर्वत और पर्वत को राई कर सकता है।

कविरा माला काठ की वहुत जतन का फेर।
माला स्वाँस उसास की जामे गाँठ न मेर॥

शब्दार्थ—काठ = लकड़ी। जतन = यत्न। स्वाँस = श्वास। जामें = जिसमे। मेर = माला का सुमेरु।

भावार्थ—कवीरदास जी कहते हैं कि इस लकड़ी की माला को वड़े परिश्रम से क्यों फेरता है। सच्ची माला तो अपने श्वासों की है जिसमें न तो गाठ है और न सुमेरु ही, अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि वह अपने प्रत्येक श्वासोच्छ्वास के साथ प्रभु का स्मरण करता रहे।

कविरा क्या मैं चिंतहूँ मम चिन्ते क्या होय।
मेरी चिन्ता हरि करै चिन्ता मोहि न कोय॥

शब्दार्थ—चिन्तहूँ = चिन्ता करूँ। मम = मेरे। हरि = ईश्वर। मोहि = मुझे। कोय = कोई।

भावार्थ—कवीरदास जी कहते हैं कि मैं अपने लिए चिन्ता क्यो करूँ और मेरे चिन्ता करने से होता ही क्या है। मेरी तो प्रभु को चिन्ता

है, अत मुझे अपनी कोई चिन्ता नहीं।

कथनी मीठी खाँड सी करनी विष की लोय।
कथनी तजि करनी करै विष से अमृत होय॥

शब्दार्थ—कथनी = कथन (कहना)। विष = ज़हर। करनी = कर्म। लोय = लोया।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि केवल बातें बनाना तो शक्कर के समान मीठा अर्थात् अत्यन्त सरल है परन्तु कार्य करना विष के समान है अर्थात् अत्यन्त कठिन है। यदि मनुष्य केवल बातें बनाना छोड़कर कार्य करने लग जाये तो विष भी अमृत हो जाता है अर्थात् काम ठीक हो जाते हैं।

एक अचंभौ देखिया हीरा हाट बिकाय।
परखनहारा है नहीं कौड़ी बदले जाय॥

शब्दार्थ—अचम्भौ = आश्चर्य। हीरा = रत्न। हाट = दुकान। परखनहारा = पहचानवाला।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि हमने एक आश्चर्यजनक बात यह देखी कि हीरा बाज़ार में बिक रहा है परन्तु सच्चे परीक्षक के न होने से वह एक कौड़ी में ही बिक जाता है। भाव यह कि ज्ञानी पुरुष के ज्ञान का मूर्ख लोग आदर नहीं कर सकते।

जो हंसा मोती चुगै काँकर क्यों पतियाय।
कॉकर माथा ना नवै मोती मिलै तो खाय॥

शब्दार्थ— चुगै = खाये। पतियाय = विश्वास करे। काकर = पत्थर। नवै = झुके।

भावार्थ—कबीरदास जी कहते हैं कि हंस तो मोती चुगता है पत्थर नहीं। यदि मोती मिल जाये तो उन्हें आदरपूर्वक उठा लेता है परन्तु

पत्थरों को वहीं त्याग देता है, उनके उठाने के लिए सिर नहीं झुकाता। भाव यह कि ज्ञानी पुरुष उत्कृष्ट पदार्थों—सारभूत वस्तुओं को ही ग्रहण करता है निस्सार को नहीं।

मैं मरजीवा समुद्र का डुबकी मारी एक।
मूठी लाया ज्ञान की जामें वस्तु अनेक॥

शब्दार्थ—मरजीवा=गोता लगाने वाला, गोताखोर। वस्तु=चीजें।

भावार्थ—कबीर जी कहते हैं कि मैं संसाररूपी सागर में मरजीवा (गोताखोर) बनकर आया हूँ। अतः मैं इसमें डुबकी लगाकर ज्ञान की ऐसी मुट्ठी भर लाया हूँ जिसमें अनेकों महत्वपूर्ण वस्तुएँ समाई हुई हैं।

कबिरा सीप समुद्र की रटै पियास पियास।
और बूँद को ना गहै स्वाति बूँद की आस॥

शब्दार्थ—सीप=सीपी। समुद्र=सागर। गहै=ग्रहण करना। स्वाति=एक नक्षत्र का नाम।

भावार्थ—महात्मा कबीर कहते हैं कि सागर की सीप प्यास के कारण अत्यन्त व्याकुल हो रही है परन्तु फिर भी सागर का खारा पानी नहीं पीती। वह तो स्वाति नक्षत्र की एक बूँद की प्यासी है और उसी की आशा रखती है।

गाया जिन पाया नहीं अनगाये तें दूरि।
जिन गाया विश्वास गहि ताके सदा हुजूरि॥

शब्दार्थ—गाया=भजन किया। अनगाये=बिना भजन किये। गहि=ग्रहण कर। ताके=उसके। हुजूरि=हाजिर।

भावार्थ—जो केवल भगवान् का नाम रटते फिरते हैं तथा कहते फिरते हैं उन्होंने भगवान् को प्राप्त नहीं किया और जो कभी भी भगवान् का नाम नहीं लेते उनसे भी भगवान् दूर रहते हैं परन्तु जो भगवान् का भजन पूर्ण विश्वास के साथ करते हैं वे सदा ही उसके साथ रहते हैं।

गुरु नानक

परिचय

जन्म संवत् १५२६ मृत्यु संवत् १५६६

आपका जन्म १५२६ में हुआ। आप बचपन से ही सरल प्रकृति के थे। आपकी रुचि ईश्वरीय ज्ञान की ओर प्रवृत्त थी। सांसारिक वस्तुओं से आपका तनिक मात्र भी लगाव न था। आप निर्गुणोपासक थे। साम्प्रदायिकता से आपको बड़ी घृणा थी। भक्ति के आवेश में आकर आप जो गीत गाते थे, उन सब का सकलन सं० १६६१ में 'गुरु-ग्रंथ साहब' में किया गया। ये भजन पंजाबी का पुट लिये हुए देश की सामान्य काव्य-भाषा हिन्दुस्तानी में हैं। आपका गोलोक-वास १५६६ में हुआ।

जपुजी और पद

सार और आलोचना

संगृहीत कविताओं में ईश्वर को अनादि काल से सत्य माना गया है। इन कविताओं में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि ईश्वर की आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। यहाँ गुरु को ईश्वर से बढ़कर स्थान दिया गया है। बतलाया गया है कि गुरुदर्शन के बिना आन्तरिक प्यास कभी शान्त हो ही नहीं सकती। आपकी कविता का सार यह है कि दम्भ, अहंकार आदि कुत्सित भावनाओं को त्याग कर केवल ईश्वर का भजन करो।

आपकी कविता का लक्ष्य केवल मनोरञ्जन नहीं, प्रत्युत उपदेश है। आपका उपदेश आत्मिक ज्ञान से सम्बन्ध रखता है। आडम्बर आत्मज्ञान में बाधक है, इसलिए आपने इसे अच्छा नहीं समझा।

आदि सचु जुगादि सचु।
है भी सचु 'नानक' होसी भी सचु॥

सोचै सोचि न होवई जे सोची लखवार।
चुपै चुपि न होवई जे लाइ रहा लिवतार।
भुखिआ भुख न उतरी जे बना पुरीआ भार।
सहस सिआणपा लख होहि त इक न चलै नालि॥
किव सचिआरा होईए किव कूड़ै तुटै पालि॥
हुकमि रजाई चलणा 'नानक' लिखिआ नालि॥१॥

शब्दार्थ—आदि=सृष्टि के आरम्भ। सचु=सच, सत्य। जुगादि=युग के आरम्भ। होसी=होगा। सोचै=शौच, पवित्रता करने

से या सोचने-विचारने से । सोचि न होवई = पवित्रता नहीं हो सकती, या विचार का विषय नहीं बन सकता । लखवार = लाखों बार । लिव = लौ, उस प्रियतम में लगन । तार = इक तार, निरन्तर । भुखिआ = भूखों की । पुरीआ = पुरी, भुवनों का । भार = समूह । सहस = हज़ारों । सियाणपा = चतुरता । लख = लाखों । नालि = साथ । सचिआरा = सत्य स्वरूप, सच वाला । किव = कैसे । कूड़ै = असत्य की । पालि = दीवार । तुटै = टूटे । रजाई = आज्ञा, उस प्रभु का आदेश ।

भावार्थ—नानक जी कहते हैं कि वह प्रभु और उसका नाम आदि काल से अनादि युगों से सत्य है । वह सत्य-स्वरूप था, सत्य-स्वरूप है और सत्य-स्वरूप ही रहेगा ।

मनुष्य चाहे कितना ही किसी वस्तु के बारे में सोच विचार करे पर उसके सोचने से कुछ नहीं होता । चाहे वह लाख बार सोच ले, उसका सोचा हुआ कभी पूरा नहीं हो सकता । होता तो वही है जो ईश्वर करना चाहता है । चुप रहकर प्रभु में अपनी चित्त-वृत्ति लगा देने से भी मनुष्य का मन चुप (शान्त) नहीं रहता । चाहे पूरियों का ढेर भी क्यों न बना ले, पर उनके देखने मात्र से बिना खाये किसी भूखे की अथवा यदि उसके भाग्य में नहीं है तो भूख नहीं मिटती । चाहे कोई हज़ारों प्रकार की चतुरता क्यों न दिखाये, पर उसकी कोई चतुरता उसके साथ नहीं जायेगी । भला मनुष्य को सचाई से प्राप्त होने वाली शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है, और असत्य की दीवार कैसे टूट सकती है । नानक जी कहते हैं कि मनुष्य के साथ जो भाग्य के लेख लिखे हुए हैं मनुष्य को उन्हीं की आज्ञा के अनुसार चलना पड़ता है ।

भाव यह कि वह सत्य स्वरूप परब्रह्म आदि अर्थात् सृष्टि के आरम्भ से पूर्व भी विद्यमान था । वह सर्वादि सत्य-स्वरूप परमात्मा सृष्टि के मध्य में—वर्तमान समय में—भी विद्यमान है और अन्त में भी बना रहेगा ।

इस पद के अर्थ विभिन्न विद्वानों ने भिन्न प्रकार से किये हैं। हमारी धारणा है कि इस पद मे श्री गुरु नानकदेव जी—भगवान् ने जो भाग्य में लिख दिया है, भाग्य के लिखे को कोई नहीं मिटा सकता, इसी आशय का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि—मनुष्य के अपने सोचने से कुछ नहीं होता, चाहे वह लाखों बार क्यों न सोच ले मनुष्य का सोचा कभी नहीं होता, होता तो वह है जो प्रभु सोचता है। मनुष्य चाहे कितना ही एकाग्र भाव से लगन लगा कर मन को चुप अर्थात् शान्त करने का प्रयत्न क्यों न करे, मन कभी चुप नहीं होता; वह तो इधर-उधर भटकता ही रहता है।

मनुष्य भूखा है, वह चाहता है कि उसकी भूख मिट जाय, और उसके सामने पूरियों का भार अर्थात् नाना प्रकार के पदार्थों का ढेर भी लगा पड़ा है फिर भी उसके भाग्य में नहीं लिखा तो उसकी भूख मिट नहीं सकती, उसे वे पदार्थ प्राप्त नहीं हो सकते। चाहे मनुष्य में हज़ारों चतुराइयाँ क्यों न हों, पर एक भी उसके साथ न जायगी। भाव यह कि जब मनुष्य के भाग्य में कोई बात नहीं लिखी होती तो उसकी कोई भी चतुराई काम नहीं आती। फिर भला मनुष्य को कैसे शक्ति प्राप्त हो और असत्य या दुःखों की दीवार कैसे टूट सकती है। श्री गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि प्रभु की आज्ञा जो उसने जन्म के समय ही मनुष्य के भाग्य के रूप में लिख दी है उसी के अनुसार मनुष्य को चलना होगा।

इस पद्य के निम्न दो प्रकार के और भी अर्थ प्राप्त हुए हैं :—

(वह परमात्मा, जिसका स्वरूप इससे पहले मूलमन्त्र में वर्णन किया गया है) आदि में सत्य था, युगों के आदि में सत्य था, अब भी सत्य है और भविष्य में भी सत्य होगा (यह श्री नानक जी कहते हैं)।

(इस सत्य स्वरूप अकाल पुरुष को प्राप्त करने के लिए, सत्य स्वरूप बनने के लिए असत्य की दीवार तोड़ने की आवश्यकता है, वह दीवार

शरीर धोने वाले मनुष्यों से कर्मों द्वारा नहीं टूटती, क्योंकि शारीरिक) शौच कर्म से (मन की शुद्धि) नहीं प्राप्त होती, चाहे लाख बार शुद्धि करते रहें। (अगर मैं बोलूँ ही नहीं, तो झूठ बन्द हो गया और स्वय ही सत्य बन गया, इस पर बताते हैं कि बोलने की अपेक्षा) चुप रहने से (मन को वासना के वेग की झूठी लगन से) चुप अर्थात् शान्ति नहीं हो सकती, चाहे निरन्तर लगाये रखूँ। (इसी तरह व्रत धारण करने या) भूखे रहने से (वासना में रहने वाले झूठे पदार्थों की) भूख (तृष्णा कभी) तृप्त नहीं होती। चाहे (व्रतों के प्रभाव से चौदह) पुरियों के भार (धनाधिक्य) प्राप्त कर लूँ। (बुद्धि के चातुर्य) बुद्धिमत्ता चाहे हज़ारों लाखों हों। (वे अहम् [अहङ्कार] के आश्रित होने से इधर ही रह जाती हैं)। (वहा सत्य के देश तक) एक भी साथ नहीं जाती। (फिर बताइये) कैसे सत्यस्वरूप बनें और असत्य की दीवार कैसे टूटे (जो कि हमारे और उस परब्रह्म परमात्मा के मध्य विघ्न घोल रही है) ? हे नानक ! परमेश्वर की (उस) आज्ञा के अनुसार चलना (करना, जो उसने जीव के) साथ लिख दिया है (सत्यस्वरूप बन जाता है)। (उसकी आज्ञा का विषय अगली पौड़ी में बताया है)।

अथवा

निराकार को जो मनुष्य अपने विचार का विषय बनाना चाहे तो चाहे वह लाखों बार ध्यान जमावे निराकार उसकी सोच का विषय नहीं बन सकता। अगर कभी मैं अपनी लगन चुपचाप होकर उस निरकार के ध्यान में लगाये रखूँ तो भी अन्तरात्मा में शान्ति नहीं आती। आत्मज्ञान के भूखों की भूख नहीं उतरती यदि उनको पदार्थों वाली दुनियाँ की एक पुरी (लोक) नहीं कई पुरियों (भुवनों) के समूह (loads of worlds) मिल जायें। हज़ारों नहीं, लाखों ही सासारिक चतुराइयों का मनुष्य स्वामी हो जाय परन्तु उसको निरकार तक पहुँचाने के लिये कोई भी चतुराई

साथ नहीं देती। फिर कैसे सच वाले बनें ? झूठ की दीवार कैसे टूटे ? गुरु नानक जी कहते हैं—निरकार की आज्ञा में चलने से सिद्धि प्राप्त होती है। यह आज्ञा निरकार ने मनुष्य को बनाते समय ही साथ लिख दी है।

सुणिऐ ईसरु बरमा इन्दु ।
सुणिऐ मुखि सालाहण मंदु ।
सुणिऐ जोग जुगति तनि भेद ।
सुणिऐ सास्त सिमृति वेद ।
'नानक' भगता सदा विगासु ।
सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥

शब्दार्थ—सुणिऐ=(उस प्रभु के नाम के) सुनने से। ईसरु=ईश्वर-भगवान् शंकर। बरमा=ब्रह्मा। इन्दु=इन्द्र। सलाहण=सलाह, विचार या प्रशंसा। मुखि=मुख से। मंदु=मन्द पुरुष—छोटे आदमी भी। जोग जुगति=योग की युक्तियां। तनि=के। भेद=रहस्य। सासत=शास्त्र। सिमृति=स्मृति=मनुस्मृति आदि धर्मग्रन्थ। भगता=भक्तों को। विगासु=आनन्द, प्रसन्नता या खिला हुआ। नासु=नाश।

भावार्थ—उस प्रभु के नाम के सुनने से शिवजी, ब्रह्मा और इन्द्र की पदवी प्राप्त होती है। नाम के श्रवण से पापी लोग भी निरकार प्रभु की प्रशंसा करने लग जाते हैं। नाम के श्रवण से प्रभु से मिलने की युक्ति और शरीर का भेद खुल जाता है। नाम के सुनने से शास्त्रों, स्मृतियों और वेदों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। गुरु नानक जी कहते हैं—भक्तों के अन्दर सदा वह ईश्वर खिला हुआ रहता है। नाम के श्रवण से दुःख और पाप नष्ट हो जाते हैं।

१

मन की मनहीं माँहि रहि।
ना हरि भजे न तीरथ सेये, चोटी काल गही।
दारा मीत पूत रथ सपति, धन जन पूर्ण मही।
और सकल जग मिथ्या जानो, भजना राम सही।
फिरत फिरत वहुते जग हारयो, मानस देह लही।
'नानक' कहत मिलन की बिरियाँ, सुमिरन कहा नहीं।
गुरु गोबिन्द गायो नहीं, जनम अकारथ कीन।
'नानक' भजु रे हरि मना, जेहि विन जल को मीन।
विषयन सों काहे रच्यो, निमिष न होय उदास।
कहि 'नानक' भजु हरि मना, परै न जम की फाँस।

शब्दार्थ—भजे = भजन किया। गही = पकड़ ली। दारा = स्त्री। मीत = मित्र। पूत = पुत्र। सम्पति = धन। पूर्ण = भरी हुई। जन = मनुष्य। मही = पृथ्वी। सकल = सब। मिथ्या = झूठा। मानस = मनुष्य। देह = शरीर। लही = प्राप्त की। बिरियाँ = समय, अवसर। अकारथ = व्यर्थ। कीन = किया। मीन = मछली। विषयन = काम, क्रोध आदि विषय-वासनाएँ। काहे = क्यों। रच्यो = लीन हुआ, लगा रहा। निमिष = पल भर, ज़रा-सा।

भावार्थ—नानक जी मनुष्य के विनाश की ओर लक्ष्य करते हुए कहते हैं कि जब काल ने आकर चोटी पकड़ ली तो हमारे मन के सब विचार मन ही में रह गये। न तो हम भगवान् का भजन कर सके और न तीर्थ-यात्रा ही कर पाये। स्त्री, पुत्र, मित्र, रथ, धन-दौलत और सगे-सम्बन्धियों से भरे हुए यह घर-बार (ज़मीन जायदाद) और जो दूसरे भी पदार्थ हैं वे सब झूठे हैं। राम का भजन ही सच्चा है। ससार में इधर-उधर बहुत भटकते हुए अथवा चौरासी लाख योनियों में भटकने के पश्चात् यह दुर्लभ

मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ है। इसलिए नानक जी कहते हैं कि इस मनुष्य शरीर को पाकर जब प्रभु से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ तो तू उसका स्मरण क्यों नहीं करता? तूने गुरु और गोविन्द का भजन नहीं किया। इस प्रकार मनुष्य-जन्म को व्यर्थ खो दिया। नानक जी कहते हैं कि हे मन! तू हरि का भजन कर, उसके बिना यह मानव शरीर वैसे ही व्यर्थ है जैसे कि पानी के बिना मछली। हे मन! तू काम क्रोध आदि विषय-वासनाओं में क्यों लगा हुआ है? एक पल के लिए भी विषय-वासनाओं से उदास नहीं होता। अब भी तू हरि का भजन कर, ताकि यमराज की फाँसी में न बंधना पड़े।

२

साधो मन का मान त्यागो।
काम क्रोध संगति दुर्जन की, ताते अहनिस भागो।
सुख-दुख दोनों सम करि जाने और मान अपमाना।
हर्ष शोक ते रहे अतीता तिन जग तत्त पिछाना।
अस्तुत निन्दा दोउ तिआगे खोजे पद निरवाना।
जग 'नानक' यह कठिन है किनहूँ गुरमुख जाना॥

शब्दार्थ—त्यागो=छोड़ दो। संगति=साथ। दुर्जन=दुष्ट। ताते=उससे। अहनिस=रात-दिन। सम=बराबर। हर्ष=खुशी, प्रसन्नता। शोक=दुःख। अतीता=परे। तत्त=तत्त्व, सार। अस्तुत=प्रशंसा, स्तुति। निरवाना=निर्वाण, मोक्ष।

भावार्थ—हे सज्जनो! मन के अभिमान को छोड़ दो। काम, क्रोध और दुष्टों की संगति से रात-दिन बचते रहो (दूर भागते रहो)। जो व्यक्ति दुःख और सुख दोनों को तथा मान और अपमान को समान समझता है और हर्ष व शोक से परे रहता है अर्थात् सुखदायक वस्तु को पाकर प्रसन्न नहीं होता और दुःखदायक वस्तु को पाकर दुःखी नहीं होता, स्तुति और

निन्दा दोनों को छोड़ देता है वही ससार के तत्त्व को पहचानता है और उसी ने निर्वाण पद अर्थात् मोक्ष का पद खोज लिया है। नानक जी कहते हैं कि इस प्रकार समदर्शी बन जाना अत्यन्त कठिन है। कोई-कोई साधक ही गुरु की कृपा से इस प्रकार की स्थिति को प्राप्त कर सकता है।

३

इस दम दा मैनु की भरोसा, आया आया न आया न आया।
या ससार रैन दा सुपना, कहिं दीखा कहिं नाहिं दिखाया॥
सोच विचार करे मत मन मे, जिसने ढूँढा उसने पाया।
'नानक' भक्तन के पद परसे, निसदिन रामचरन चित लाया॥

शब्दार्थ—रैन=रात। निसदिन=रात-दिन। पद=चरण, पैर। परसे=छूना, स्पर्श करना।

भावार्थ—नानक जी कहते हैं कि इन श्वासों का मुझे क्या भरोसा है। जो श्वास मैं ले रहा हूँ उससे अगला श्वास आ जाये तो आ जाये और यह भी हो सकता है कि न आये। यह ससार तो रात्रि के स्वप्न के समान है, जो कभी दीखता है और कभी नहीं दीखता। हे मन! तू अब उस प्रभु की भक्ति करने के सम्बन्ध में अधिक सोच विचार मत कर। क्योंकि जो उसे ढूँढता है वही उसे प्राप्त करता है। नानक जी कहते हैं कि मैं तो भक्तों के चरणों को छू कर रात-दिन राम के चरणों में चित्त लगाये रहता हूँ।

४

सब कछु जीवत को ब्योहार।
मात पिता भाई सुत बाधव, अरु पुन गृह की नार।
तन तें प्रान होत जब न्यारे टेरत प्रेत पुकार॥
आध घरी कोऊ नहिं राखे घर तें देत निकार।
कहु 'नानक' भज राम नाम नित जातें होत उधार॥

शब्दार्थ—जीवत को=जीते रहने का। व्योहार=व्यवहार। सुत=पुत्र। बांधव=सम्बन्धी। अरु=और। पुन=फिर। गृह=घर। नार=स्त्री। तन=शरीर। न्यारे=अलग। प्रेत=मुर्दा। टेरत=कहते है। उधार= उद्धार।

भावार्थ—संसार में सब कुछ व्यवहार तभी तक है जब तक मनुष्य जीता है। उसके मर जाने पर कोई किसी का नहीं रहता। यहां तक कि माता, पिता भाई, पुत्र, सम्बन्धी और घर की स्त्री आदि सभी लोग मनुष्य के शरीर से ज्योंही प्राण निकलते हैं कि उसे मुर्दा कहने लगते हैं। कोई आधी घड़ी भी उसे घर में नहीं रहने देता। तत्काल घर से बाहर निकाल देते हैं। इसलिये नानक जी कहते हैं कि तू नित्य राम नाम का भजन कर जिस से तेरा उद्धार हो जाय।

५

जो नर दुख में दुख नहिं मानै।
सुख सनेह अरु भय नहिं जाके कंचन माटी जानै।
नहिं निन्दा नहिं अस्तुति जाके लोभ मोह अभिमाना।
हर्ष शोक तें रहे नियारो नहीं मान अपमाना।
आसा मनसा सकल त्यागि कै जग तें रहै निरासा।
काम क्रोध जेहि परसै नाहिन तेहि घट ब्रह्म निवासा।
गुरु किरपा जेहि नर पै कीन्ही तिन यह जुगति पिछानी।
'नानक' लीन भयो गोविन्द सों ज्यों पानी सँग पानी॥

शब्दार्थ—सनेह=प्रेम। जाके=जिसको। कंचन=सोना। माटी=मिट्टी। भय=डर। लोभ=लालच। मोह=ममता। त्यागकै=छोड़कर। निरासा=निराशा। जेहि=जिसको। परसै=छूए। घट=हृदय या शरीर। ब्रह्म=ईश्वर। जुगति=युक्ति, तरीका।

भावार्थ—जो मनुष्य दुःख को दुःख नहीं समझता। सुख, प्रेम

और भय आदि के भाव जिस के हृदय में नहीं हैं और जो सोने को भी मिट्टी समझता है। जो किसी की न निन्दा करता है और न स्तुति ही करता है। अथवा जो न अपनी निन्दा से दुःखी और प्रशंसा से सुखी होता है। जिसको लोभ, मोह, अभिमान नहीं है, हर्ष और शोक से जो अलग रहता है, जिसके हृदय में मान और अपमान की भावना भी नहीं है, जो संसार की सब आशाओं को मन से त्याग कर निराश रहता है, जिसे काम, क्रोध छूते भी नहीं, उसी के हृदय में उस परब्रह्म परमात्मा का वास है। जिस व्यक्ति पर गुरुदेव कृपा कर देते हैं वही इस युक्ति को पहचानता है, वह भगवान् में ऐसे लीन हो जाता है जैसे एक पानी दूसरे पानी में।

६

रे मन कौन गत होइहै तेरी।
गहि जग मे राम नाम, सो तो नहिं सुन्यो कान।
विषयन सों अति लुभान, मति नाहिन फेरी॥
मानस को जनम लीन्ह, सिमरन नहिं निमिष कीन्ह।
दारा सुत भयो दीन, पगहुँ परी वेरी।
'नानक' जन कह पुकार सुपने ज्यों जग पसार।
सिमरत नहिं क्यों पुकार, माया जा की चेरी॥

शब्दार्थ—गहि=पकड़। लुभान=ललचाया। मति=बुद्धि। दारा=स्त्री। निमिष=पल। दीन=दुःखी। पगहु=पैरों में। पसार=फैला हुआ। चेरी=दासी।

भावार्थ—हे मन! तेरी क्या दशा होगी। मैंने तुझे कहा कि संसार में आकर राम नाम ले, उसे तूने सुना नहीं और विषय-वासनाओं में ललचाया रहा, उनसे तूने अपनी बुद्धि को कभी नहीं हटाया। मनुष्य जन्म पाकर भी तूने एक पल भर भी भगवान् का भजन नहीं किया।

स्त्री और पुत्रों के कारण तू बहुत दुःखी होता रहा। इनकी मानो तेरे पैरों में बेड़ियाँ पड़ गईं। नानक जी पुकार-पुकार कर कहते हैं कि यह संसार का प्रपंच स्वप्न के समान झूठा है, इसलिए तुम उसी भगवान् का पुकार पुकार कर स्मरण क्यों नहीं करते जिसकी माया या लक्ष्मी भी दासी है।

७

सुमरन कर ले मेरे मना।
तेरी बीति जाति उमर हरि नाम बिना।
कूप नीर बिन, धेनु छीर बिन, मंदिर दीप बिना।
देह नैन बिन, रैन चंद बिन, धरती मेह बिना।
जैसे पंडित वेद विहीना, तैसे प्राणी हर नाम बिना।
काम क्रोध मद लोभ निहारो छाँड़ दे अब संतजना।
कहे 'नानकशा' सुन भगवन्ता या जग में नहिं कोई अपना॥

शब्दार्थ—कूप=कुआँ। नीर=जल। धेनु=गौ। छीर=दूध। मन्दिर=घर। दीप=दीपक। देह=शरीर। नैन=आँख। रैन=रात्रि। विहीना=रहित। निहारो=देखना।

भावार्थ—नानक जी कहते हैं कि हे मन! तू भगवान् का स्मरण कर ले, क्योंकि भगवान् के भजन बिना तेरी आयु व्यर्थ ही में बीती जा रही है। जिस प्रकार पानी के बिना कुआँ, दूध के बिना गौ, दीपक के बिना घर, आँखों के बिना शरीर, चन्द्रमा के बिना रात्रि, बादलों या वर्षा के बिना पृथ्वी और वेदों के बिना पंडित का जीवन व्यर्थ है वैसे ही भगवान् के नाम बिना प्रत्येक प्राणी का जीवन व्यर्थ है। हे सज्जनो, अब तो तुम काम, क्रोध, मोह, मद और लोभ की ओर देखना छोड़ दो। हे भगवद्-भक्तो, सुनो इस संसार में (भगवान् के सिवा दूसरा) कोई भी अपना नहीं।

८

विसर गई सब तात पराई जब से साधु सगत पाई।
नहिं कोई वैरी नहिं वेगाना सकल सग हमरो वनिआई ॥
जो प्रभु कीन्हो सो भला करि मानो यह सुमति साधु से पाई।
सब मे रम रहा प्रभु एकाकी पेख पेख 'नानक' बिगसाई ॥

शब्दार्थ—विसर गई=भूल गई। तात=प्रिय। वैरी=शत्रु। वेगाना=पराया। सुमति=अच्छी बुद्धि। एकाकी=अकेला। पेख-पेख=देख-देख कर। बिगसाई=विकसित—प्रसन्न होता है।

भावार्थ—नानक जी कहते हैं कि जब से हमने सज्जनों की सगति प्राप्त कर ली है तब से हमारे हृदय में से परायेपन की भावना (या भेद-भावना) नष्ट हो गई है। अब न तो कोई हमारा शत्रु है और न ही कोई पराया है, अब तो सब के साथ हमारी अच्छी तरह निभ जाती है। भगवान् जो कुछ करता है अच्छा ही करता है। हमे सज्जनों से यह सद्बुद्धि प्राप्त हुई है। वह एक राम ही सब में रम रहा है यह देख-देख कर नानकजी प्रसन्न होते हैं।

९

काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व निवासी सदा अलेपा तोही संग समाई।
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है मुकुर मांहि जस छाई।
तैसे ही हरि बसै निरंतर घटही खोजो भाई।
वाहर भीतर एकै जानो यह गुरु ज्ञान बताई।
जन 'नानक' विन आपा चीन्हे मिटे न भ्रम की काई ॥

शब्दार्थ—सर्वनिवासी=सब स्थान पर रहने वाले। अलेपा=निर्लेप। समाहो=समाया हुआ, व्यापक है। पुष्प=फूल। मध्य=बीच में। वास=सुगन्धि। मुकुर=शीशा। चीन्हे=पहचाने।

भावार्थ—हे मनुष्य ! तू साधु बन कर उस प्रभु को जगलों में ढूँढने क्यों जाता है। वह सर्वव्यापक सदा निर्लेप रहने वाला ईश्वर तो तुझ ही में समाया हुआ है। जिस प्रकार फूलों में सुगन्धि रहती है और शीशे में परछाईं रहती है वैसे ही सब स्थानों में निवास करने वाला वह प्रभु भी तेरे हृदय में ही रहता है। इस लिये हे भाई उसे अपने हृदय में ही ढूँढ। हमारे गुरु ने यह ज्ञान बताया है कि बाहर और भीतर सर्वत्र वह एक ब्रह्म ही समाया हुआ है। नानक जी कहते हैं कि अपने आप को पहचाने बिना मनुष्य के भ्रम या सन्देहों की काई मिट नहीं सकती।

दोहे

हिरदे जिनके हरि बसें, से जन कहि महि सूर।
कही न जाई 'नानका' पूरि रह्या भरपूर॥

शब्दार्थ—हिरदे=हृदय। महि=पृथ्वी। सूर=शूरवीर। पूरि रह्या=भरा हुआ है।

भावार्थ—जिन पुरुषों के हृदय में भगवान् बसते हैं वे ही इस ससार में सच्चे शूरवीर हैं। वह परिपूर्ण ईश्वर सर्वत्र व्याप्त हो रहा है, उसका कोई वर्णन नहीं कर सकता।

हरि पढना हरि बूझना हरि सो रहहु पिआर।
हरि जपिये हरि ध्याइये हरि का नाम अधार॥

शब्दार्थ—बूझना=समझना। ध्याइये=ध्यान कीजिए।

भावार्थ—भगवान् का नाम ही पढना चाहिए, भगवान् ही को समझने का प्रयत्न करना चाहिए और भगवान् ही से प्यार करना चाहिए। भगवान् ही का जप करना चाहिए, भगवान् ही का ध्यान करना चाहिए और भगवान् के नाम का ही आधार लेना चाहिए।

मन जूठे तन जूठ है जिह्वा जूठी होय।
मुख जूठे झूठ बोलना क्यों कर सूचा होय॥

शब्दार्थ—तन = शरीर। जिह्वा = जीभ। सूचा = शुद्ध, पवित्र।

भावार्थ—नानक जी कहते हैं कि झूठ बोलने से तन, मन, जीभ और मुख सब जूठे हो जाते हैं। फिर वह भला कैसे शुद्ध हो सकते हैं।

जो दरसै सो चालही किसको मीत करेव।
जीउ समर्पो आपना तन मन आगे देव॥

शब्दार्थ—दरसे = दिखाई देता है। चालही = चला जायेगा। मीत = मित्र। करेव = करूँ। समर्पों = समर्पित किया, दिया।

भावार्थ—नानक जी कहते हैं कि संसार में जो यह मनुष्य दिखाई देते हैं वे सब तो चले जायेंगे। अब मैं भला मित्र किसको बनाऊ। मैंने तो अपना तन मन सब कुछ भगवान् ही के आगे समर्पित कर दिया है।

'नानक' गुरुमुख पाइये हरि सों प्रीति पिआर।
गुरु बिन किन सुख पाइया देखहु मनहिं बिचार॥

भावार्थ—नानक जी कहते हैं कि हे सज्जनो। गुरु के उपदेश से भगवान् के प्रति अपार प्रेम प्राप्त कर लो। तुम मन में यह विचार कर देख लो कि गुरु के बिना संसार में किसने सुख पाया है अर्थात् किसी ने नहीं पाया।

मन की दुविधा ना मिटे मुक्ति कहाँ ते होइ।
कउडी बदले 'नानका' जनम चल्या नर खोइ॥

शब्दार्थ—दुविधा = सन्देह।

भावार्थ—नानक जी कहते हैं कि जब तक मन की दुविधा नहीं मिटती तब तक भला भक्ति कैसे हो सकती है। मनुष्य विषय-वासनाओं में पड़ कर कौड़ी के बदले दुर्लभ मानव जन्म व्यर्थ खो जाता है।

आपै गुण आपै कथै आपै सुनि विचार।
आपै रतन परखि तू आपै भातु अपार॥

शब्दार्थ—कथे=कहे। पारखी=परीक्षक, जौहरी। भातु=शोभित होता है।

भावार्थ—नानक जी ब्रह्म की सर्व-व्यापकता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह ब्रह्म स्वय ही तो गुण है, स्वयं ही उनका वर्णन करता है। आप ही सुनता है और आप ही विचारता है। स्वयं ही वह रत्न है, स्वय ही परीक्षक या जौहरी भी है और उस रत्न से स्वय ही सुशोभित होता है। भाव यह है कि वह ब्रह्म सभी रूपों में व्याप्त हो रहा है।

सोचो मान महत्त तू आपै देवनहार।
ज्यों भावै त्यों राख तू (हरि) नाम मिले आधार॥

शब्दार्थ—महत्त=बड़ाई। आपै=वह आप ही, स्वय ही। देवनहार=देने वाला।

भावार्थ—हे मनुष्य! तू मान और बड़ाई के लिए व्यर्थ सोचता रहता है किन्तु सब कुछ देने वाला तो वह भगवान् स्वयं ही है। हे भगवन्! तेरे नाम का आधार मिलना चाहिए फिर तू जैसे चाहे अपने भक्तों को वैसा रख।

विषयन सों काहे रच्यो निमिष न होय उदास।
कहि 'नानक' भजु हरि मना परै न जम की फाँस॥

शब्दार्थ—काहे=क्यों। रच्यो=लीन हो गया, मस्त हो गया। निमिष=जरा भी। जम=यमराज। फाँस=फाँसी।

भावार्थ—श्री नानकदेव जी कहते हैं कि हे मेरे मन! तू संसार की विषय-वासनाओं में ही क्यों लीन हो गया है? इनसे पल भर भी मुँह नहीं मोड़ता। अगर तू भगवान् का भजन करले तो तू इस यमराज की फाँसी से छूट जाय। अर्थात् भगवान् की भक्ति से तू जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो सकता है।

तुलसीदास

परिचय

जन्म संवत १५५४ मृत्यु सम्वत् १६८०

आधुनिक गवेषकों ने आपकी जन्म-तिथि १५५४ बतलाई है। आपकी मृत्यु-तिथि तो निम्नलिखित दोहे से स्पष्ट ही है—

सम्वत सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण कृष्णा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर॥

आपकी शिक्षा-दीक्षा उच्च थी। आप सभी शास्त्रों के पारंगत थे। पत्नी की भर्त्सना से आपका पत्नी-प्रेम ईश्वरीय प्रेम में बदल गया। आपने सब देशों का भ्रमण कर काशी में बैठकर 'रामचरितमानस' महाकाव्य का निर्माण किया। आपके ग्रन्थों में विशेषतया राम की पतित-पावनी गाथा का गान है। आपकी कृतियों में व्रज और अवधी दोनों भाषाओं का संमिश्रण है। 'आज का उत्तर भारत का समाज तुलसी का बनाया है'—ये ग्रियर्सन के शब्द आपके विषय में उपयुक्त ही हैं। आपने लगभग २५ पुस्तकें लिखीं, जिनमें से ये प्रसिद्ध हैं—(१) रामचरितमानस, (२) कवितावली, (३) गीतावली, (४) विनय-पत्रिका, (५) कृष्ण-गीतावली, (६) दोहावली, (७) पार्वती-मंगल, (८) जानकी-मंगल, (९) रामलला नहछू।

वर्षावर्णन, शरद्वर्णन, रामराज्य

सार और आलोचना

सीता-हरण के पश्चात् वर्षा-ऋतु के आने पर राम सीता की विरह-वेदना का अनुभव करते हुए लक्ष्मण के समक्ष अपना दु:ख प्रकट करते है। शरद्-ऋतु-वर्णन मे सारी पृथ्वी पर कास फूल छाये हुए ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वर्षा ऋतु का बुढापा प्रकट हो गया हो। 'रामराज्य' में सब प्रसन्न हैं, किसी को कोई कष्ट नहीं व्याप रहा—इसका विशद विवरण है। दोहों में तुलसी के इष्टदेव राम बाहुल्य से रम रहे हैं। कई दोहे 'ससार में किस प्रकार रहना चाहिए' इस विषय पर पूरा-पूरा प्रकाश डालते हैं।

कवि का ऋतु-वर्णन बडा मनोरञ्जक है। आपने राम को सासारिक व्यक्तियों की भान्ति विरह-वेदना से दु:खित हुआ बतला कर कविता में 'यथार्थ' का चित्रण कर दिखाया है। आपकी कविता मे सर्वत्र पाडित्य और प्रतिभा का निखरा हुआ रूप मिलता है।

वर्षा-वर्णन

वरषा काल मेघ नभ छाए। गरजत लागत परम सुहाए॥

शब्दार्थ—मेघ=बादल। नभ=आकाश। सुहाए=शोभित हो रहे हैं।

भावार्थ—सीता का अपहरण हो जाने के पश्चात् ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करते हुए राम लक्ष्मण को वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए अपने हृदय की अवस्था बताते हैं—वर्षा ऋतु में आकाश में छाये हुए बादल गर्जते हुए अत्यन्त शोभित हो रहे हैं।

लछिमन देखहु मोरगन नाचत वारिद पेखि।
गृही विरति-रत हरष जस विष्नु भगत कहुँ देखि ॥१॥

शब्दार्थ—मोरगण = मोरों का समूह। वारिद = बादल। पेखि = देखकर। गृही = गृहस्थी। बिरतिरत = वैराग्य में लगे हुए। हरष = खुशी। जस = जैसे।

भावार्थ—हे लक्ष्मण! देखो ये मोरों के समूह बादलों को देखकर वैसे ही नाच रहे हैं जैसे विष्णु के भक्त को देखकर विरक्त गृहस्थी प्रसन्न होते हैं।

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥
दामिनि दमक रही घन माहीं। खल की प्रीति जथा थिर नाहीं ॥

शब्दार्थ—घन = बादल। घोर = भयकर। दामिनि = बिजली। खल = दुष्ट। प्रीति = प्रेम। जथा = जैसे। थिर = स्थिर, मज़बूत।

भावार्थ—आकाश में उमड़ते-घुमड़ते बादल घोर गर्जना कर रहे हैं। प्रिय सीता के विरह में व्याकुल मेरा मन बादलों की इन गर्जनाओं को सुनकर अत्यधिक विरह संतप्त हो उठता है। बादलों में बिजली ऐसे चमकती और फिर छिप जाती है जैसे दुष्ट पुरुषों का प्रेम स्थिर नहीं होता।

बरषहिं जलद भूमि निअराए। जथा नवहिं बुध विद्या पाए ॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के वचन संत सह जैसे ॥

शब्दार्थ—जलद = बादल। भूमि = पृथ्वी। निअराए = पास में आगये। नवहिं = झुकते हैं। अघात = चोट। गिरि = पर्वत। खल = दुष्ट। सत = सज्जन।

भावार्थ—जिस प्रकार बुद्धिमान् पुरुष विद्या को पाकर नम्र हो जाते हैं, वैसे ही वर्षा करने वाले बादल भी पृथ्वी तक नीचे झुक आते हैं। जिस प्रकार सज्जन दुष्टों के वचनों को सह लेते हैं वैसे ही पर्वत भी वर्षा की

बूँदों की चोटों को बड़ी शान्ति के साथ सह रहे है ।

छुद्र नदी भरि चली तोराई । जस थोरेहुँ धन खल इतराई ॥
भूमि परत भा ढावर पानी । जनु जीवहिं माया लपटानी ॥

शब्दार्थ—छुद्र = छोटी । तोराई = अपने किनारों को तोड़कर । जस = जैसे । इतराई = इतरा जाते हैं । ढावर = छप्पर । जनु = मानो ।

भावार्थ—छोटी-छोटी नदियाँ थोड़े-से जल से इस प्रकार अपने किनारों से ऊपर बहती जा रही हैं जैसे दुष्ट या नीच पुरुष थोड़े-से धन से बहुत अधिक इतरा जाता है । बादलों का निर्मल जल पृथ्वी पर पड़ते ही वैसे ही गँदला हो गया है जैसे निर्मल चेतन-स्वरूप आत्मा संसार में आते ही माया से ग्रस्त होकर अपने निर्मल शुद्ध चैतन्य-स्वरूप को खो बैठता है ।

सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलावा । जिमि सद्‌गुन सज्जन पहिं आवा ॥
सरिता-जल जलनिधि महँ जाई । होइ अचल जिम जिव हरि पाई ॥

शब्दार्थ—सिमिटि = इकट्ठा होकर । जिमि = जैसे । सद्‌गुन = अच्छे गुण । पहि = पास । सरिता = नदी । जलनिधि = समुद्र । अचल = स्थिर । जिव = जीव ।

भावार्थ—इधर-उधर से इकट्ठा होकर जल तालाबों में इस प्रकार भर रहा है जैसे सज्जन में धीरे-धीरे सभी गुण आ जाते हैं । नदियों का जल समुद्र में जाकर वैसे ही स्थिर हो रहा है जैसे भक्त भगवान् को पाकर जन्म-मरण के चक्कर से छूट कर मुक्त हो जाता है ।

हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पथ ।
जिमि पाखंड विवाद तें लुप्त होहिं सद्‌ग्रंथ ॥२॥

शब्दार्थ—हरित = हरी । तृन = घास । संकुल = भर गई । पंथ = मार्ग । विवाद = बहस । लुप्त = नष्ट । सद्‌ग्रन्थ = श्रेष्ठ ग्रन्थ ।

भावार्थ—हरी-भरी भूमि घास से ढकी हुई है इसलिए मार्ग भी वैसे ही नहीं दिखाई देते, जैसे लोगों के पाखण्ड और वाद-विवादों से सत्य शास्त्रों का रहस्य लुप्त हो जाता है। अर्थात् पाखण्डी लोग शास्त्रों का अर्थ अपनी इच्छानुसार बताने लगते हैं। इसलिए पाखण्डियों के कारण शास्त्रों का वास्तविक अर्थ प्रकट नहीं हो पाता।

दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई। वेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥
नव पल्लव भए बिटप अनेका। साधक मन जस मिलें विवेका॥

शब्दार्थ—दादुर = मेंढक। ध्वनि = शब्द। चहुँदिसा = चारों दिशाओं में। सुहाई = शोभित। बिटप = वृक्ष। विवेक = ज्ञान होता है। बटु = ब्रह्मचारी। समुदाई = समूह। नव = नये। पल्लव = पत्ते।

भावार्थ—चारों ओर मेंढकों की ध्वनि ऐसी सुशोभित हो रही है मानो ब्रह्मचारियों के समूह वेद पढ रहे हों। अनेक वृक्ष इस प्रकार नये पत्तों से सुशोभित हो गये हैं जैसे कि साधकों का मन ज्ञान प्राप्त हो जाने पर निर्मल होकर सुशोभित हो जाता है।

अर्क जवास पात बिनु भयउ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ॥
खोजत कतहुं मिलई नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धरमहिं दूरी॥

शब्दार्थ—अर्क = आक। जवास = जवासा नामक एक कटीली झाड़ी का पौधा जो गर्मियों में हरा-भरा होता है। उद्यम = उद्योग। कतहु = कहीं भी।

भावार्थ—आक और जवासे के पत्ते इस प्रकार जल गये हैं जैसे कि श्रेष्ठ राज्य में दुष्टों के कार्य निष्फल हो जाते हैं। अब वर्षा ऋतु में धूलि तो कहीं ढूँढने पर भी नहीं मिलती जैसे कि क्रोध धर्म को दूर कर देता है।

ससि सपन्न सोह महि कैसी। उपकारी के सपति जैसी॥
निसि तम घन खद्योत विराजा। जनु दम्भिन कर मिला समाजा॥

शब्दार्थ—ससि=सस्य, खेती-बाड़ी। सम्पन्न=युक्त। सोह=शोभित होती है। महि=पृथ्वी। निसि=रात। तम=अन्धकार, अन्धेरा। घन=घना। खद्योत=जुगनू। दम्भिन कर=कपटियों का। समाजा=समूह।

भावार्थ—उपकारी की सम्पत्ति के समान खेती की लहलहाती हुई भूमि सुशोभित हो रही है। रात के घने अन्धेरे में जुगनू ऐसे चमकते हैं मानो कपटियों का समूह-समाज इकट्ठा हो गया है।

महा वृष्टि चलि फूटि किआरी। जिमि सुतन्त्र भएँ बिगरहिं नारी॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥

शब्दार्थ—महावृष्टि=बड़ी भारी वर्षा। सुतन्त्र=स्वतन्त्र। कृषी=खेती। निरावही=खेत में से घास-फूस उखाड़ कर फेंकते हैं। बुध=बुद्धिमान्। तजहिं=छोड़ देते हैं। मद=अहंकार।

भावार्थ—अत्यधिक वर्षा के कारण खेतों की क्यारियाँ वैसे ही टूट गई हैं जैसे स्त्रियाँ स्वतन्त्र होकर बिगड़ जाती हैं। चतुर किसान अपनी खेती को निराते और उनमें से अनावश्यक घास आदि को वैसे ही उखाड़ कर फेंक देते हैं जैसे बुद्धिमान् मनुष्य मोह-मद और मान को छोड़ देते हैं।

देखिअत चक्रवाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं॥
ऊसर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हिय उपज न कामा॥

शब्दार्थ—चक्रवाक=चकवा। खग=पक्षी। कलिहि=कलयुग को। पराहीं=भाग जाता है। ऊसर (भूमि)=जिसमें कोई अनाज उत्पन्न न हो। हिय=हृदय। उपज=उत्पन्न होता है।

भावार्थ—चकवे पक्षी इस प्रकार नहीं दिखाई देते जिस प्रकार कलि-युग में धर्म नष्ट हो जाते हैं। ऊसर भूमि में वर्षा होने पर भी घास वैसे ही उत्पन्न नहीं होती जैसे कि भगवान् के भक्त के हृदय में कभी काम उत्पन्न नहीं होता।

बिबिध जन्तु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ जिमि पाइ सुराजा ॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इन्द्रिय गन उपजे ग्याना ॥

शब्दार्थ—बिबिध = कई प्रकार के। जन्तु = जीव। सकुल = भरी हुई। महि = पृथ्वी। भ्राजा = शोभित होते हैं। सुराजा = अच्छा राज्य। पथिक = यात्री। इन्द्रियगण = इन्द्रियों के समूह।

भावार्थ—सारी पृथ्वी अनेक प्रकार के जीवों से भरकर इस प्रकार शोभित हो रही है जैसे अच्छे राज्य को पाकर प्रजा खूब बढती, फलती-फूलती और फैलती है। जहाँ-तहाँ पथिक थक कर इस प्रकार विश्राम कर रहे हैं जैसे कि ज्ञान के उत्पन्न होने पर इन्द्रियों के समूह विषयों को ग्रहण करने में असमर्थ हो जाते हैं।

कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहीं।
जिमि कपूत के ऊपजे कुल सद्धर्म नसाहीं ॥३॥

शब्दार्थ—मारुत = हवा। बिलाहीं = नष्ट हो रहे हैं। ऊपजे = उत्पन्न होने पर। सद्धर्म = श्रेष्ठ धर्म। नसाहीं = नष्ट हो जाते हैं।

भावार्थ—कहीं बड़ी तेज हवा चलती है जिसमें बादल इधर-उधर बिखर कर नष्ट हो जाते हैं जैसे कि कुल में कुपुत्र के उत्पन्न हो जाने पर कुल के सभी धर्म नष्ट हो जाते हैं।

कबहुँ दिवस महँ निबिड तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसग सुसंग ॥४॥

शब्दार्थ—दिवस = दिन। निबिड = घना। पतग = सूर्य। बिनसई = नष्ट होता है। कुसंग = बुरी सगति। सुसग = अच्छी सगति।

भावार्थ—कभी तो दिन में घना अन्धकार हो जाता है और कभी सूर्य प्रकट हो जाता है जैसे कि भली और बुरी सगति को पाकर ज्ञान कभी उत्पन्न हो जाता है तो कभी नष्ट हो जाता है। अच्छी सगति से तो ज्ञान उत्पन्न होता है और बुरी सगति से नष्ट हो जाता है।

शरद्-वर्णन

वरषा विगत सरद रितु आई। लछमन देखहु परम सुहाई॥
फूले कास सकल महि छाई। जनु वरषा कृत प्रगट बुढ़ाई॥

शब्दार्थ—बिगत=बीत गई। परम सुहाई=अत्यन्त शोभित। कास=सरकण्डा, काना, एक प्रकार के घास के लम्बे सफेद फूल, जो शरद ऋतु में खिलते हैं। सकल=सब, सारी। महि=पृथ्वी। जनु=मानो। कृत=की। वरषाकृत=वर्षा ने की।

भावार्थ—भगवान् राम शरद् ऋतु का वर्णन करते हुए लक्ष्मण से कहते हैं कि वर्षा ऋतु बीत गई है और शरद ऋतु आ गई है। इस अत्यन्त सुन्दर शरद् ऋतु की शोभा को हे लक्ष्मण! जरा देखो तो सही, ये कास के सफेद फूल चारों ओर इस प्रकार छाये हुए हैं मानो इन सफेद सफेद फूलों के रूप में वर्षा ने अपना बुढापा ही प्रकट किया हो। (बुढापे में बाल सफेद हो जाते हैं और इधर सफेद काश खिले हुए हैं इसलिए राम ने सफेद काशों के रूप में शरद् के बुढापे का वर्णन किया है।)

उदित अगस्त पंथ जल सोषा। जिमि लोभहि सोषइ संतोषा॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥

शब्दार्थ—उदित=चढ गया, निकल आया। अगस्त=अगस्त्य नामक एक तारा जो बरसात में दिखाई नहीं देता और शरद् ऋतु में दिखाई देने लगता है। पथ=मार्ग। सोषा=सूख गया। जिमि=जैसे। सोषइ=सुखाता है। सरिता=नदी। सर=तालाब। निर्मल=साफ। सोहा=शोभित होता है। गत=रहित। मद=अहंकार।

भावार्थ—शरद् ऋतु के आरम्भ होने पर अगस्त्य नामक वह तारा जो वर्षा में दिखाई नहीं देता था अब उदित हो गया है। वर्षा के कारण मार्गों में जो पानी भर गया था वह अब वैसे ही सूख गया जैसे कि सन्तोष लोभ को सुखा देता है। नदी और तालाबों का पानी अब साफ

होकर ऐसे शोभित हो रहा है जैसे कि अहंकार और लोभ से रहित सज्जनों का हृदय शोभित होता है।

रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी॥
जानि सरद रितु खजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए॥

शब्दार्थ—रस रस=रसते रसते या धीरे-धीरे। खंजन=सोन-चिड़िया, ममोला, एक प्रकार की काले और सफेद रंग की चिड़िया जो अपनी पूँछ को हिलाती रहती है, शरद् ऋतु में यह चिड़िया प्राय. देखी जाती है। सुकृत=पुण्य।

भावार्थ—नदी और तालाबों का पानी इस प्रकार धीरे-धीरे सूखता जा रहा है जैसे कि ज्ञानी पुरुष धीरे-धीरे ममता को छोड़ता जाता है। शरद् ऋतु को देख कर खजन पक्षी इस प्रकार दिखाई देने लगे हैं जैसे कि समय आने पर मनुष्य के पुण्य सुशोभित होते हैं।

पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुण नृप के जस करनी॥
जल सकोच बिकल भई मीना। अबुध कुटुम्बी जिमि धनहीना॥

शब्दार्थ—पक=कीचड़। रेनु=धूल। सोह=शोभित होती है। असि=ऐसी। धरनी=पृथ्वी। निपुण=चतुर। नीति-निपुण=नीति में चतुर। नृप=राजा। करनी=काम। सकोच=कमी। बिकल=व्याकुल। भई=हो गई। अबुध=मूर्ख। मीना=मछली। कुटुम्बी=घर वाले।।

भावार्थ—धूलि और कीचड़ से रहित पृथ्वी ऐसे शोभित होती है जैसे कि नीति में निपुण राजा के कार्य सुशोभित होते हैं। पानी के कम होने से मछलियाँ इस प्रकार व्याकुल हो गई हैं जैसे कि धन के कम होने पर मूर्ख घर वाले दु.खी हो जाते हैं।

बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥
कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरी। कोउ इक पाव भगति जिमि मोरी॥

शब्दार्थ—घन=बादल। हरिजन=भगवान् के भक्त। इव=समान। परिहरि=छोड़ कर। वृष्टि=वर्षा। सारदी=शरद ऋतु की।

भावार्थ—बादलों से रहित आकाश ऐसे शोभित हो रहा है जैसे कि भगवान् के भक्त सब प्रकार की आशाओं को छोड़ कर शोभित होते हैं। कहीं-कहीं शरद् ऋतु की थोड़ी-थोड़ी वर्षा इस प्रकार हो जाती है जिस प्रकार कोई-कोई लोग ही मेरी अर्थात् पुत्र की भक्ति पा सकते हैं।

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम तजहिं आश्रमी चारि ॥१॥

शब्दार्थ—हरषि=प्रसन्न होकर। तजि=छोड कर। नृप=राजा। तापस=साधु। बनिक=व्यापारी। आश्रमचारी=ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास नामक चार आश्रम।

भावार्थ—राजा, तपस्वी, साधु, व्यापारी और भिखारी जो अब तक वर्षा के कारण एक एक नगर में ही बँधे पडे थे अब वर्षा के बीत जाने पर मार्ग खुल जाने से राजा लोग युद्ध के लिए, साधु विहार के लिए, व्यापारी व्यापार के लिए, और भिखारी भीख के लिए उसी प्रकार अपने नगरों को छोड कर दूसरे नगरो की ओर चल पडे हैं जैसे कि भगवान् की भक्ति को पाकर भक्त लोग चारो आश्रम के परिश्रम को छोड देते हैं।

भक्तगण चाहे किसी भी आश्रम में, ब्रह्मचर्य में, गृहस्थ में, वानप्रस्थ में या संन्यास में हो सदा प्रभु की भक्ति मे लीन रहते हैं। अतः उन्हें आश्रमो की मर्यादा पालन की आवश्यकता नहीं रहती।

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा॥
फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुन ब्रह्म सगुन भए जैसा॥

शब्दार्थ—अगाधा=गहरा। बाधा=विघ्न, दुःख।

भावार्थ—जो मछलियाँ गहरे पानी मे रहती हैं वे उसी प्रकार सुखी

सुखी हैं जिस प्रकार भगवान् की शरण में चले जाने पर भक्त को कोई दु.ख नहीं रहता। खिले हुए कमलों से तालाब ऐसे शोभित हो रहे हैं जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारण करने पर शोभित होता है।

गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुन्दर खग-रव नाना रूपा॥
चक्रबाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर सपति देखी॥

शब्दार्थ—मधुकर=भ्रमर, भौंरे। मुखर=शब्द करते हुए, गूँजते हुए। अनूपा=अनुपम। खग=पक्षी। रव=शब्द। नाना=कई। चक्रबाक=चकवा। निसि=रात। पेखी=देख कर। सम्पति=धन।

भावार्थ—शब्द करते हुए अनुपम भौंरे गूँज रहे हैं। अनेक प्रकार के रूपों वाले पक्षी नाना प्रकार के कलरव कर रहे हैं। रात्रि को आता देख कर चकवों के मन इसी प्रकार दु खी हो रहे हैं जैसे कि दूसरे की सम्पत्ति को देख कर दुष्टों के मन दु खी होते हैं। (चकवा और चकवी रात में एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं। चकवा नदी के एक किनारे पर और चकवी दूसरे किनारे पर चली जाती है। इसलिए कहा है कि चकवा-चकवी रात्रि को देख कर दुःखी होते हैं)।

चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न सकर द्रोही॥
सरदातप निसि ससि अपहरई। सत दरस जिमि पातक टरई॥

शब्दार्थ—चातक=पपीहा। रटत=पुकारता है। तृषा=प्यास। अति=बहुत। ओही=उसे। द्रोही=शत्रुता करने वाला। सरदातप=शरद ऋतु की आतप। आतप=धूप। ससि=चन्द्रमा। अपहरई=दूर करता है। पातक=पाप।

भावार्थ—प्यासा पपीहा पी पी पुकार रहा है। उसे प्यास वैसे ही सता रही है जैसे भगवान् शिव की निन्दा करने वाले को कभी सुख प्राप्त नहीं होता और वह सदा दु.खी रहता है। शरद् ऋतु के दिन की धूप

की गर्मी को रात्रि में चन्द्रमा की चाँदनी वैसे ही दूर कर देती है जैसे कि सज्जनों के दर्शनो से सब पाप दूर हो जाते हैं।

देखि इन्दु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विजद्रोह किए कुल नासा॥

शब्दार्थ—इन्दु = चन्द्रमा। समुदाई = समूह। चितवहि = देखते हैं। हरिजन = हरि के भक्त। मसक = मच्छर। दंस = डसना या मच्छर की जाति का एक जीव। हिम = ठण्ड। त्रासा = भय। द्विज = ब्राह्मण।

भावार्थ—चकोरों के समूह चन्द्रमा को वैसे ही प्रेम से देख रहे हैं जैसे कि भगवान् के भक्त भगवान् को पाकर उन्हें एकटक देखते रह जाते हैं। ठण्ड के भय के मारे मच्छर आदि जीव ऐसे ही नष्ट हो गये हैं जैसे कि ब्राह्मणों से द्वेष करने पर कुल का नाश हो जाता है।

भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ।
सद्गुरु मिले जाहिं जिमि संशय भ्रम समुदाइ॥२॥

शब्दार्थ—संकुल = भरे हुए। संशय = सन्देह।

भावार्थ—वर्षा ऋतु में छोटे-मोटे जीव सारी पृथ्वी पर भरे हुए थे, शरद ऋतु के आते ही वे सब ऐसे ही नष्ट हो गये जिस प्रकार श्रेष्ठ गुरु के प्राप्त हो जाने पर सब प्रकार के सन्देह और भ्रम नष्ट हो जाते हैं।

राम-राज्य

राम राज बैठे त्रैलोका। हर्षित भये गए सब सोका॥
बयरु न कर काहू सन कोई। रामप्रताप विषमता खोई॥

शब्दार्थ—त्रैलोका = स्वर्गलोक, मृत्युलोक और पाताललोक ये तीनों लोक। हर्षित = प्रसन्न। बयरु = वैर विरोध। काहू सन = किसी से। बिषमता = भेदभावना।

सुखी हैं जिस प्रकार भगवान् की शरण में चले जाने पर भक्त को कोई दुःख नहीं रहता। खिले हुए कमलों से तालाब ऐसे शोभित हो रहे हैं जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप धारण करने पर शोभित होता है।

गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुन्दर खग-रव नाना रूपा॥
चक्रबाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर सपति देखी॥

शब्दार्थ—मधुकर=भ्रमर, भौंरे। मुखर=शब्द करते हुए, गूँजते हुए। अनूपा=अनुपम। खग=पक्षी। रव=शब्द। नाना=कई। चक्रबाक=चकवा। निसि=रात। पेखी=देख कर। सम्पति=धन।

भावार्थ—शब्द करते हुए अनुपम भौंरे गूँज रहे हैं। अनेक प्रकार के रूपों वाले पक्षी नाना प्रकार के कलरव कर रहे हैं। रात्रि को आता देख कर चकवों के मन इसी प्रकार दुःखी हो रहे हैं जैसे कि दूसरे की सम्पत्ति को देख कर दुष्टों के मन दुःखी होते हैं। (चकवा और चकवी रात में एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं। चकवा नदी के एक किनारे पर और चकवी दूसरे किनारे पर चली जाती है। इसलिए कहा है कि चकवा-चकवी रात्रि को देख कर दुःखी होते हैं)।

चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न सकर द्रोही॥
सरदातप निसि ससि अपहरई। सत दरस जिमि पातक टरई॥

शब्दार्थ—चातक=पपीहा। रटत=पुकारता है। तृषा=प्यास। अति=बहुत। ओही=उसे। द्रोही=शत्रुता करने वाला। सरदातप=शरद ऋतु की आतप। आतप=धूप। ससि=चन्द्रमा। अपहरई=दूर करता है। पातक=पाप।

भावार्थ—प्यासा पपीहा पी पी पुकार रहा है। उसे प्यास वैसे ही सता रही है जैसे भगवान् शिव की निन्दा करने वाले को कभी सुख प्राप्त नहीं होता और वह सदा दुःखी रहता है। शरद् ऋतु के दिन की धूप

की गर्मी को रात्रि में चन्द्रमा की चाँदनी वैसे ही दूर कर देती है जैसे कि सज्जनों के दर्शनों से सब पाप दूर हो जाते हैं।

देखि इन्दु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई॥
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विजद्रोह किए कुल नासा॥

शब्दार्थ—इन्दु = चन्द्रमा। समुदाई = समूह। चितवहि = देखते हैं। हरिजन = हरि के भक्त। मसक = मच्छर। दंस = डसना या मच्छर की जाति का एक जीव। हिम = ठण्ड। त्रासा = भय। द्विज = ब्राह्मण।

भावार्थ—चकोरों के समूह चन्द्रमा को वैसे ही प्रेम से देख रहे हैं जैसे कि भगवान् के भक्त भगवान् को पाकर उन्हें एकटक देखते रह जाते हैं। ठण्ड के भय के मारे मच्छर आदि जीव ऐसे ही नष्ट हो गये हैं जैसे कि ब्राह्मणों से द्वेष करने पर कुल का नाश हो जाता है।

भूमि जीव संकुल रहे गए सरद रितु पाइ।
सद्गुरु मिले जाहिं जिमि संशय भ्रम समुदाइ॥२॥

शब्दार्थ—संकुल = भरे हुए। संशय = सन्देह।

भावार्थ—वर्षा ऋतु में छोटे-मोटे जीव सारी पृथ्वी पर भरे हुए थे, द ऋतु के आते ही वे सब ऐसे ही नष्ट हो गये जिस प्रकार श्रेष्ठ गुरु के प्राप्त हो जाने पर सब प्रकार के सन्देह और भ्रम नष्ट हो जाते हैं।

राम-राज्य

राम राज बैठे त्रैलोका। हर्षित भये गए सब सोका॥
बयरु न कर काहू सन कोई। रामप्रताप विषमता खोई॥

शब्दार्थ—त्रैलोका = स्वर्गलोक, मृत्युलोक और पाताललोक ये तीनों लोक। हर्षित = प्रसन्न। बयर = वैर विरोध। काहू सन = किसी से। बिषमता = भेदभावना।

भावार्थ—भगवान् श्रीरामचन्द्रजी के राजगद्दी पर बैठते ही, राज-कार्य की व्यवस्था को अपने हाथों मे लेते ही, तीनों लोक—स्वर्ग, मर्त्य, और पाताल अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनके सब दुःख दूर हो गये। राम के प्रताप से सब के मनों की भेदभावना या कुटिलता नष्ट हो गई, अर्थात् कोई किसी से वैर नही करता था।

वरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद-पथ लोक।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय रोग न सोक॥१॥

शब्दार्थ—बरनाश्रम=ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास ये चार आश्रम। निरत=लगे हुए। भय=डर। पथ=मार्ग। वेदपथ=वैदिक मार्ग।

भावार्थ—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारो वर्णो तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास इन चारो आश्रमो के लोग अपने-अपने कर्तव्य का भली भाति पालन करते थे और सब लोग वेद के बताये हुए मार्ग पर चलते थे। इसी लिए सदा सुख पाते थे। उन्हें कभी कोई रोग शोक या भय नहीं सताता था।

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहिं व्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥

शब्दार्थ—दैहिक दैविक भौतिकताप=आध्यात्मिक—जो आत्मा सम्बन्धी दुःख, आधिभौतिक—शरीर सम्बन्धी रोग कष्ट आदि और आधिदैविक—बिजली गिरना आदि दैवी विपत्तिया। व्यापा=व्याप्त होते थे। परस्पर=आपस में। स्वधर्म-निरत=अपने धर्म में लगे हुए। श्रुति=वेद।

भावार्थ—भगवान् राम के राज्य में दैहिक—ज्वर आदि व्याधिया, दैविक—अकाल आदि और भौतिक—सिंह आदि पशुओं से किसी प्रकार का दुःख नहीं होता था। सब लोग आपस में बड़े प्रेम से रहते थे और

वैदिक मर्यादा का पालन करते हुए अपने अपने धर्म-कर्म का आचरण करते थे।

चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥
रामभगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥

शब्दार्थ—अघ=पाप। परमगति=मोक्ष। सकल=सब। रत=लीन।

भावार्थ—राम के राज्य मे ससार मे धर्म अपने चारों चरणों से पूर्ण हो रहा था। स्वप्न में भी वहाँ पाप के कहीं दर्शन न होते थे। सब स्त्री-पुरुष रामभक्ति में लीन थे। इसी लिए सब परम गति अर्थात् मोक्ष के अधिकारी थे।

दोहे

राम-नाम-मनि-दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
'तुलसी' भीतर बाहिरौ, जौ चाहसि उजियार॥

शब्दार्थ—मनि-दीप=मणि का दीपक। धरु=धरो, रखो। जीह=जीभ। देहरी=देहली। द्वार=दरवाजा। चाहसि=चाहता है। उजियार=उजियाला।

भावार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि यदि तुम अपने हृदय के अन्दर और बाहर दोनों ओर प्रकाश चाहते हो तो राम-नाम रूपी मणि के दीपक को जीभ रूपी देहली के द्वार पर धर लो। दरवाजे की देहली पर यदि दीपक रख दिया जाय तो उससे घर के बाहर और अन्दर दोनों ओर प्रकाश हो जाया करता है। इसी प्रकार जीभ मानों शरीर के अन्दर और बाहर दोनो ओर की देहली है। इस जीभ रूपी देहली पर यदि राम-नाम रूपी मणि का दीपक रख दिया जाय तो हृदय के बाहर और अन्दर दोनो ओर अवश्य प्रकाश हो ही जायगा।

रे मन सब सों निरस ह्वै, सरस राम सों होहि।
भलौ सिखावन देत हैं, निसिदिन 'तुलसी' तोहि॥

शब्दार्थ—निरस=उदास। सरस=प्रेमयुक्त। भलौ=अच्छी। निसि-दिन=रात-दिन। तोहि=तुझे।

भावार्थ—गोस्वामी जी अपने मन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे मन! तू सब ओर से उदास होकर भगवान् राम के प्रेम में लग जा, तुलसीदास तुझे रात-दिन यही सुन्दर शिक्षा देते हैं। भाव यह कि मनुष्य को चाहिए कि वह और सब कामों से मुँह मोड़ कर प्रभु भक्ति में लग जाय तभी उसका उद्धार हो सकता है।

'तुलसी' श्री रघुवीर तजि, करौ भरोसौ और।
सुख सपति की का चली, नरकहुँ नाहीं ठौर॥

शब्दार्थ—रघुवीर=रामचन्द्र। तजि=छोड़कर। सम्पति=धन।

भावार्थ—गोस्वामी जी कहते हैं कि जो भगवान् राम को छोड़ कर किसी दूसरे पर भरोसा रख कर बैठते हैं उन्हे भला सुख-सम्पत्ति तो मिलेगी ही कहाँ से, उन्हें तो नरक में भी स्थान न मिलेगा। भाव यह कि मनुष्य को भगवान् के सिवा किसी दूसरे का कभी भरोसा नहीं करना चाहिए।

राम नाम अवलम्ब बिनु, परमारथ की आस।
बरषत बारिद-बूँद गहि, चाहत चढ़न अकास॥

शब्दार्थ—अवलम्ब=सहारा। परमारथ=धर्म या मोक्ष। बरसत=वर्षा करते हुए। बारिद=बादल। गहि=पकड़ कर।

भावार्थ—राम-नाम का आश्रय लिये बिना जो लोग मोक्ष की आशा करते हैं अथवा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी चारों परमार्थों को प्राप्त करना चाहते हैं वे मानों बरसते हुए बादलों की बूँदों को पकड़ कर

आकाश में चढ़ जाना चाहते हैं। भाव यह है कि जिस प्रकार पानी की बूँदों को पकड़ कर कोई भी आकाश में नहीं चढ सकता। वैसे ही राम नाम के विना कोई भी परमार्थ को प्राप्त नहीं कर सकता।

ज्यों जग वैरी मीन को, आपु सहित विनु वारि।
त्यों 'तुलसी' रघुवीर विनु, गति अपनी सुविचारि॥

शब्दार्थ—मीन = मछली। वारि = जल। गति = दशा। सुविचारि = अच्छी तरह विचार लो।

भावार्थ—जिस प्रकार पानी के विना मछली के सब शत्रु हो जाते हैं, यहाँ तक कि वह स्वयं भी अपने आप ही अपनी शत्रु हो जाती है वैसे ही भगवान् राम के विना मनुष्य के सब शत्रु हो जाते हैं। इसलिए गोस्वामी जी अपने मन को समझाते हुए कहते हैं कि तू भी अपना कल्याण चाहता है तो भगवान् की शरण में जा ताकि तेरा उद्धार हो जाय। भाव यह कि जैसे पानी के विना मछली मर जाती है वैसे ही भगवान् के विना जीव भी सुखी नहीं हो सकता। अतः मनुष्य को सदा प्रभु का सहारा ढूढना चाहिए।

जग ते रहु छत्तीस ह्वै, रामचरन छः तीन।
'तुलसी' देखु विचारि हिय, है यह मतो प्रवीन॥

शब्दार्थ—ह्वै = होकर। हिय = हृदय। मतो = मत, सिद्धान्त। प्रवीण = चतुर।

भावार्थ—गोस्वामी जी कहते हैं कि संसार से तो तुम छत्तीस के अंक के समान पीठ करके रहो, और राम के चरणों में त्रेसठ के समान सम्मुख रहो। चतुर पुरुषों के इस मत को अपने हृदय में विचार करके देख लो। भाव यह है कि ३६ के अंक में ३ और ६ इन दोनों अंकों की आपस में पीठ लगी रहती है पर ६३ में ६ और ३ इन दोनों के मुख

आमने-सामने होते हैं। इसलिए मनुष्यों को चाहिए कि वे ससार से तो सदा ३६ के अक के समान पीठ फेर कर विरक्त रहें परन्तु भगवान् राम के चरणों के प्रति ६३ के अक के समान सदा अनुकूल रहें।

'तुलसी' असमय के सखा, साहस धर्म विचार।
सुकृत, सील, सुभाव रिजु, राम-चरन-आधार॥

शब्दार्थ—असमय=बुरा समय। सखा=मित्र। साहस=उत्साह। सुकृत=पुण्य, धर्म। शील=सुन्दर स्वभाव। रिजु=सरल।

भावार्थ—गोस्वामी जी कहते हैं कि भगवान् राम के चरण भक्तों के लिए दुःख के दिनों में साथी हैं। ये उत्साह, धर्म, विचार, पुण्य, सुशीलता और सरल स्वभाव के आधार हैं, अत उन्हीं के चरणों का आश्रय लो।

'तुलसी' साथी विपति के विद्या, विनय, विवेक।
साहस, सुकृत, सुसत्य-व्रत, राम-भरोसो एक॥

शब्दार्थ—विनय=नम्रता। विवेक=ज्ञान।

भावार्थ—गोस्वामी जी कहते हैं कि विद्या, विनय, ज्ञान, उत्साह, पुण्य और सत्य भाषण आदि विपत्ति में साथ देने वाले गुण एक भगवान् राम के भरोसे से ही प्राप्त हो सकते हैं।

आवत हिय हरषै नहीं, नैनन नहीं सनेह।
'तुलसी' तहाँ न जाइये, कंचन बरसे मेह॥

शब्दार्थ—हिय=हृदय। हरषै=प्रसन्न होवे। स्नेह=प्रेम। कंचन=सोना।

भावार्थ—जिस घर में जाने पर घर वाले लोग देखते ही प्रसन्न न हों और जिनकी आँखों में प्रेम न हो, उस घर में कभी न जाना चाहिए। उस घर से चाहे कितना ही लाभ क्यों न हो वहाँ कभी नहीं जाना चाहिए।

'तुलसी' जस भवितव्यता, तैसी मिलै सहाय।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय॥

शब्दार्थ—भवितव्यता=होनहार। आपु=स्वय, आप।

भावार्थ—गोस्वामी जी कहते हैं कि जैसी होनहार होती है मनुष्य को वैसी ही सहायता प्राप्त हो जाती है। होनहार स्वयं मनुष्य के पास नहीं आती प्रत्युत उसे ही स्वयं खींच कर वहाँ ले जाती है। भाव यह है कि होनहार या भाग्य के आगे किसी का कुछ वश नहीं चलता।

'तुलसी' सन्त सुअम्ब तरु, फूलि फलहि पर हेत।
इतते ये पाहन हनत, उतते वे फल देत॥

शब्दार्थ—सुअम्ब=सुन्दर जल या सुन्दर रस वाले। तरु=वृक्ष। परहेत=दूसरे के लिए। इत=इधर से। पाहन=पत्थर। हनत=मानते हैं। उत ते=उधर से।

भावार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि सज्जन और रसदार फलों वाले वृक्ष दूसरों के लिए फूलते फलते हैं क्योंकि लोग तो उन वृक्षों पर या सज्जनों पर इधर से पत्थर मारते हैं पर उधर से वे उन्हे पत्थरों के बदले में फल देते हैं। भाव यह है कि सज्जनो के साथ कोई कितना ही बुरा व्यवहार क्यो न करे, पर सज्जन उनके साथ सदा भला ही व्यवहार करते हैं।

'तुलसी' काया खेत है, मनसा भयौ किसान।
पाप पुन्य दोउ बीज हैं, बुवै सो लुनै निदान॥

शब्दार्थ—काया=शरीर। मनसा=मन। बुवै=बोये। लुनै=काटे। निदान=अन्त मे।

भावार्थ—गोस्वामी जी कहते है कि शरीर मानो खेत है, मन मानो किसान है। जिसमें यह किसान पाप और पुण्य रूपी दो प्रकार के बीजों

को बोता है। जैसे बीज बोयेगा वैसे ही इसे अन्त में फल काटने को मिलेंगे। भाव यह है कि यदि मनुष्य शुभ कर्म करेगा तो उसे शुभ फल मिलेंगे और यदि पाप कर्म करेगा तो उसका फल भी बुरा ही मिलेगा। इसलिए मनुष्य को सदा शुभ कर्म ही करने चाहिएँ।

नीच चग-सम जानिये, सुनि लखि 'तुलसीदास'।
ढील देत महि गिरि परत, खैंचत चढत अकास ॥

शब्दार्थ—चग=पतग। महि=पृथ्वी।

भावार्थ—गोस्वामी जी कहते हैं कि नीच पुरुष पतग के समान होते हैं। यदि पतग को ढील दो तो वह पृथ्वी पर गिर पड़ती है। पर यदि उसकी डोरी को खींचते जायें तो वह आकाश में चढ जाती है। भाव यह कि यदि दुष्ट पुरुष को खींच कर रखो और उससे कठोरता से काम लो तो वह ठीक काम करता है, पर यदि उसके साथ नम्रता से व्यवहार करो तो वह काम में लापरवाह हो जाता है।

घर दीन्हे घर जात है, घर छोडे घर जाय।
'तुलसी' घर बन बीच रहु, राम प्रेम-पुर छाय ॥

भावार्थ—गोस्वामी जी कहते हैं कि यदि मनुष्य एक स्थान पर घर करके बैठ जाय तो वह वहाँ की माया-ममता में फँसकर उस प्रभु के घर से विमुख हो जाता है। इसके विपरीत यदि मनुष्य घर छोड़ देता है तो उसका घर बिगड़ जाता है, इसलिए कवि का कथन है कि भगवान् राम के प्रेम का नगर बना कर घर और बन दोनों के बीच में समान रूप से रहो, पर आसक्ति किसी में न रखो।

बिनु बिश्वास भगति नहीं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम-कृपा बिनु सपनेहुँ, जीव न लहि बिश्राम ॥

शब्दार्थ—द्रवहिं=पिघलते, कृपा करते। विश्राम=शान्ति, आराम।

भावार्थ—भगवान् में सच्चे विश्वास के बिना मनुष्य को भगवद्-भक्ति प्राप्त नहीं हो सकती और बिना भक्ति के भगवान् कृपा नहीं कर सकते। जब तक मनुष्य पर भगवान् की कृपा नहीं होती तब तक मनुष्य स्वप्न में भी सुख-शान्ति नहीं पा सकता। अतः मनुष्य को भगवान् का भजन करते रहना चाहिए ताकि भगवान् के प्रसन्न हो जाने पर भक्त को सब सुख-सम्पत्ति अपने आप प्राप्त हो जाय।

राम-सतसई

स्वामी होनो सहज है, दुर्लभ होनो दास।
गाडर लाये ऊन को, लागी चरन कपास॥

शब्दार्थ—सहज=सरल। दुर्लभ=कठिन। गाडर=भेड़।

भावार्थ—संसार में किसी का स्वामी बन कर रहना तो बड़ा सरल है, पर सेवक बन कर रहना बड़ा कठिन है। मनुष्य आया तो यहाँ भगवान् का सेवक बनने के लिए है पर सेवक न बन कर वह विषय-वासना में फँस जाता है। यह तो वैसे हुआ जैसे कि कोई ऊन के लोभ से भेड को रखे कि चलो इससे ऊन मिलेगी, पर वह ऊन देने के बदले खेत के कपास को ही चर जाय, लाभ की बजाय हानि करने लग पड़े। वैसे ही मनुष्य-जन्म पाकर भी जीव प्रभु-भक्ति का लाभ नहीं प्राप्त करता और विषय-वासनाओं में फँसा रहता है।

'तुलसी' सब छल छाँड़िकै, कीजै राम-सनेह।
अन्तर पति सों है कहा, जिन देखी सब देह॥

शब्दार्थ—छल=कपट। छाड़िकै=छोड़ कर। अन्तर=भेदभाव।

भावार्थ—गोस्वामीजी कहते हैं कि सब छल-कपटों को छोड़ कर भगवान् की सच्चे हृदय से भक्ति करो। उस पति से भला क्या भेदभाव है जिसने सारे शरीर को देखा हुआ है। भाव यह कि जैसे पति

अपनी पत्नी के सारे शरीर के रहस्यों को जानता है वैसे ही प्रभु सब जीवों के सब कर्मों को जानता है।

ऊँची जाति पपीहरा, पियत न नीचौ नीर।
कै याचै घनश्याम सों, कै दुख सहै सरीर॥

शब्दार्थ—पपीहरा=पपीहा। नीर=जल। याचै=माँगे। घनश्याम=बादल।

भावार्थ—पपीहा वास्तव में बड़ी ऊँची जाति का है, जो नीचे जमीन पर पड़ा हुआ पानी नहीं पीता। वह या तो बादल से ही पानी माँगता है या अपने शरीर पर दुःख ही झेलता रहता है। (पपीहे की प्रकृति है कि वह स्वाति नक्षत्र में मेघ से बरसे हुए पानी की बूँदें ही पीता है, पृथ्वी पर गिरा हुआ पानी नहीं पीता। इसी बात को ध्यान मे रखते हुए गोस्वामी जी ने कहा है कि पपीहा प्यास के कारण अपने शरीर पर चाहे कितना ही कष्ट क्यों न सह ले पर वह मेघ के जल के सिवा और कोई जल नही पीता)। भाव यह कि श्रेष्ठ पुरुष तुच्छ वासनाओं में कभी नहीं फँसते, वे सदा उत्कृष्ट गुणों को ही ग्रहण करते हैं।

मान राखिबो माँगिबो, पिय सों सहज सनेहु।
'तुलसी' तीनों तब फबैं, जब चातक मत लेहु॥

शब्दार्थ—फबै=शोभित होवे। चातक=पपीहा।

भावार्थ—अपने मान को भी बचाये रखना चाहे और माँगे भी, साथ ही प्रिय से स्वाभाविक प्रेम भी बनाये रखना चाहे—ये तीनों बातें तभी अच्छी लग सकती हैं, जब कि पपीहे के समान आचरण करने लग पड़े। पपीहा बादल से पानी की बूँदो की प्रार्थना भी करता है और अपने स्वाभिमान को भी बनाये रखता है। क्योंकि उसके हृदय में बादल के प्रति सच्चा प्रेम है, वह बादल के सिवा और किसी से कुछ नहीं माँगता। इसी प्रकार मनुष्य भी जब सच्ची लगन वाला हो जाय तभी

उसमे ये तीनों बातें एक साथ शोभित हो सकती हैं; अन्यथा ससार में जो माँगता है उसका स्वाभिमान नहीं रह पाता और न प्रेम ही रहता है। पर सच्ची लगन होने पर ये तीनो बातें एक साथ रह सकती हैं। भाव यह कि सच्चा प्रेमी अपने प्रियतम से माँग कर भी अपने प्रेम और मान की रक्षा कर लेता है, पर दूसरे लोगो का माँगने से मान और प्रेम घट जाता है।

गंगा जमुना सुरसती, सात सिन्धु भरपूर।
'तुलसी' चातक के मते, बिन स्वाती सब धूर॥

शब्दार्थ—सिन्धु=समुद्र। स्वाति=अश्विनी, भरणी आदि २७ नक्षत्रों में से एक नक्षत्र।

भावार्थ—गगा, यमुना, सरस्वती और सातों समुद्र ये सब जल से भले ही भरे हुए हों, पर पपीहे के लिए तो स्वाति नक्षत्र के बिना ये सब धूल के समान ही हैं, क्योंकि पपीहा केवल स्वाति नक्षत्र मे बरसा हुआ जल ही पीता है। भाव यह है कि सच्चे प्रेमी अपनी प्रिय वस्तु के सिवा अन्य किसी वस्तु को कभी नहीं चाहता, चाहे वह वस्तु कितनी ही मूल्यवान् क्यों न हो।

'तुलसी' विलँब न कीजै, भजि लीजै रघुबीर।
तन तरकस ते जात है, स्वांस सार सो तीर॥

शब्दार्थ—विलँब=देर। भजि लीजै=भजन कर लीजिए। तन तरकस=शरीर रूपी तरकस।

भावार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि अब देर मत करो अब भगवान् राम का भजन कर लो, क्योंकि शरीर रूपी तरकस से प्राण रूपी तीर निकलते ही जा रहे हैं और जो श्वास एक बार निकल जाता है वह फिर नहीं आता।

असन बसन सुत नारि सुख, पापिहुँ के घर होइ ।
सन्त-समागम रामधन, 'तुलसी' दुर्लभ दोइ ॥

शब्दार्थ—असन=भोजन । बसन=वस्त्र, कपड़े । सुत=पुत्र । सतसमागम=सज्जनों से मिलना । दुर्लभ=कठिनता से प्राप्त होने के योग्य ।

भावार्थ—भोजन, वस्त्र, पुत्र और स्त्री के सुख तो पापी के घर में भी हो सकते हैं, पर सज्जनों का समागम भगवान और राम रूपी धन की प्राप्ति ये दोनो बड़े दुर्लभ हैं । भाव यह है कि जिसके बड़े भाग्य होते हैं उसे ही भगवद्भक्ति तथा सज्जन पुरुषों की संगति प्राप्त होती है ।

दुर्जन दर्पण सम सदा, करि देखो हिय गौर ।
सन्मुख की गति और है, विमुख भये पर और ॥

शब्दार्थ—दर्पण=शीशा । दुर्जन=दुष्ट । सन्मुख=सामने । विमुख=पीठ पीछे ।

भावार्थ—दुर्जन शीशे के समान होते हैं, इस बात को ध्यान से देख लो, क्योंकि दोनो ही जब सामने होते हैं तब तो और होते हैं और जब पीठ पीछे होते हैं तब कुछ और हो जाते हैं । भाव यह है कि दुष्ट पुरुष सामने तो मनुष्य की प्रशंसा करता है और पीठ पीछे निन्दा करता है, इसी प्रकार शीशा भी जब सामने होता है तो वह मनुष्य के मुख को प्रतिबिम्बित करता है, पर जब वह पीठ पीछे होता है तो प्रतिबिम्बित नहीं करता ।

सिष्य सखा सेवक सचिव, सुतिय सिखावनु साँच ।
सुनि करिये पुनि परिहरिय, पर मनरंजन पाँच ॥

शब्दार्थ—सखा=मित्र । सचिव=मन्त्री । सुतिय=अच्छी स्त्री । सिखावन=शिक्षा । पुनि=फिर । परिहरिय=छोड़ देनी चाहिए । मनरंजन=मन को प्रसन्न करने वाली ।

भावार्थ—गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि शिष्य, मित्र, सेवक, मन्त्री और स्त्री यदि इनकी कोई शिक्षा सच्ची हो और हितकारक हो तो उस पर आचरण करना चाहिए नहीं तो दूसरों के मन को प्रसन्न करने के लिए कही गई तो इन पाँचों की बातों को छोड़ देना चाहिए।

सूर समर करनी करहीं, कहि न जनावहिं आप।
विद्यमान रिपु पाइ रन, कायर करहिं प्रलाप॥

शब्दार्थ—समर=युद्ध। जनावहिं=प्रकट करते हैं। विद्यमान=उपस्थित। रिपु=शत्रु। रन=रण, युद्ध। कायर=डरपोक। प्रलाप=बकवाद।

भावार्थ—शूरवीर युद्ध में काम करके दिखाते हैं मुँह से बातें बना कर अपनी बड़ाई नहीं करते। इसके विपरीत कायर पुरुष युद्ध में शत्रु को सामने देख कर बकवाद करने लगते हैं। भाव यह कि वीर पुरुष काम करके दिखाते हैं, बातें नहीं बनाते और नीच पुरुष बातें तो बढ़-कर बनाते हैं पर काम के समय भाग जाते हैं।

अमिय गारि गारेउ गरल, नारी करि करतार।
प्रेम बैर की जननि युग, जानहिं बुध न गँवार॥

शब्दार्थ—अमिय=अमृत। गारि=सान कर, भर कर। गरल=विष। करतार=ईश्वर। जननी=माता। युग=दोनों। बुध=बुद्धिमान्।

भावार्थ—भगवान् ने स्त्री को अमृत और प्रेम दोनों में सानकर बनाया है। स्त्री बैर और प्रेम दोनों की जननी है, इस बात को बुद्धिमान् पुरुष जानते हैं किन्तु गँवार नहीं।

'तुलसी' कबहुँ न त्यागिये, अपने कुल की रीति।
लायक ही सों कीजिए, ब्याह, बैर अरु प्रीति॥

भावार्थ—तुलसीदास जी कहते हैं कि अपने कुल की रीति को कभी नहीं छोड़ना चाहिए। बैर, विवाह और प्रीति अपने समान योग्य व्यक्तियों से ही करना चाहिए।

सूरदास

परिचय

जन्म सवत् १५४० मृत्यु संवत् १६२०

महात्मा सूरदास कृष्णभक्ति सगुणाश्रयी शाखा के मुख्य प्रतिनिधि और सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। ये मथुरा और आगरा के मध्य में गउघाट नामक स्थान पर रहा करते थे और भगवद्भक्ति के गीत गाया करते थे। ये जन्मान्ध नहीं प्रतीत होते क्योंकि बाललीला का ऐसा सुन्दर वर्णन् जन्मान्ध द्वारा, चाहे वह कितना ही प्रतिभासम्पन्न हो, एकदम असभव है।

एक बार गउघाट पर महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य जी महाराज ने इनके भक्ति-विषयक पद सुनकर बहुत प्रसन्नता प्रकट की थी और इन्हें व्रज में श्रीनाथ जी के मदिर में लाकर कीर्त्तन का मुखिया बना दिया। ये तभी से भगवान् कृष्ण की भक्ति मे तन्मय होकर नित्य नये पद बना कर अपने प्रभु को रिझाने लगे। अष्टछाप के कवियों में ये प्रमुख हैं।

सूरदास को 'उद्धव' का अवतार माना जाता है। वस्तुत ये कृष्ण के अनन्य सखा थे। इनकी भक्ति सख्य-भाव की है, और इन्होंने उनके जीवन को अपने अन्तश्चक्षुओं द्वारा जिस विशद और सौन्दर्य से देखा, वैसा ससार के साहित्य में दुर्लभ है। वात्सल्य-रस और विरह-वेदना में तो सूर को कमाल हासिल है। बाल्यकाल और यौवनकाल के जीवन की रमणीयता को उन्होंने नाना मनोरम परिस्थितियों के विशद चित्रण द्वारा दिखाया है। शृङ्गार के प्रत्येक क्षेत्र का वर्णन हमें उनके मुक्तक गीतों में दीख पड़ता है। बालगोपाल कृष्ण के बाल्य-चित्रण और प्रेमरस में

विभोर विरहिणी गोपियों के उपालम्भ अन्यत्र दुर्लभ हैं। एक तो यूँ ही व्रजभाषा संस्कृत के पश्चात् सर्वाधिक कोमल है और फिर सूर-जैसे रसिक की अनुभूति का जीवन-स्पर्श पाकर वह और भी मृदुल हो गई है। जैसी तन्मयता, सरसता और अचल सात्त्विक भक्ति हमें सूर में मिलती है, वह और में तो नहीं दीख पड़ती।

'सूरसागर' इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। सूरसागर में श्रीमद्भागवत का हिन्दी गीतों में स्वतंत्र भावानुवाद किया गया है। इस अनुवाद का वल्लभाचार्य जी ने आदेश दिया था। पहिले नौ स्कन्धों में चलता-फिरता वर्णन कर दिया गया है। किन्तु दशम स्कन्ध में सूर की प्रतिभा के निदर्शन विस्तार से होते हैं। उसमें भगवान् कृष्ण की बाल-लीला, रूपमाधुरी, मुरली-महिमा, संभोग और विप्रलम्भ शृङ्गार, विनय तथा भ्रमरगीत बड़े विस्तृत रूप मे कहे गये हैं। मुक्तक काव्य होने से अनेक स्थानों पर पुनरुक्ति है, क्योंकि एक ही भाव को अनेक स्थानों पर अनेक प्रकार से कहने से उसके अनेक पद बन गये हैं।

आपका जन्म १५४० में रुणकता में हुआ। पारसोली में १६२० में गोलोक-वास हुआ।

विनय, बाललीला, भ्रमरगीत

सार और आलोचना

आपने विनय-सम्बन्धी कविता-पदों में भगवान् से शर्त बाँधी है कि शायद आप मेरे-जैसे पतितों के सरदार को पार न कर सकें। कवि ने कितने निराले ढंग से अपना उद्धार चाहा है। यहाँ हरि से विमुख व्यक्तियों का साथ छोड़ने का उपदेश भी मिलता है। 'हे माता! मेरी चोटी कब बढ़ेगी, कितने दिन मुझे दूध पीते हो गये, पर यह उतनी ही छोटी है' इत्यादि कविताओं में बाल-स्वभाव का सुन्दर चित्रण किया गया है। भ्रमरगीत में गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम-चित्रण कितना स्वाभाविक है कि वे निर्गुण का ध्यान नहीं करना चाहतीं। गोपियाँ उपालम्भ-रूप में कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम को प्रकट करती हैं।

वात्सल्य-रस तथा विप्रलम्भ शृंगार के वर्णन करने में कवि ने जिस अलौकिक प्रतिभा का निदर्शन किया है उसी ने उन्हें हिन्दी-साहित्याकाश का सूर्य बना दिया।

विनय

नाथ! सकौ तो मोहि उधारौ।
पतितन में विख्यात पतित हौं, पावन नाम तुम्हारौ।
बड़े पतित पासगहु नाहीं अजामिल कौन बिचारौ।
भाजे नरक नाम सुनि मेरौ जम दीन्हौ हठि तारौ।
छुद्र पतित तुम तारि रमापति अब न करौ जिय गारौ।
'सूर' पतित को ठौर नहीं तौ बहत बिरद कत भारौ॥

शब्दार्थ—उधारौ = उद्धार करो। पतित = पापी। पावन = पवित्र। पासग = तराजू का वजन ठीक करने के लिए कोई छोटा-मोटा पत्थर

आदि जो डंडी के साथ बाँध दिया जाता है या जिस पलड़े का वजन कम होता है उधर धर दिया जाता है उसे पासंग कहते हैं। अजामिल= यह एक पापी ब्राह्मण था, इसने जन्म भर भगवान् का नाम नहीं लिया। इसके पुत्र का नाम नारायण था, अन्त समय नारायण कहते-कहते इसके प्राण निकल गये, अतः मृत्यु के समय 'नारायण' नाम के लेने से इसका उद्धार हो गया और वह वैकुण्ठ चला गया। भाजे=भाग जाता है। जम=यमराज। तारौ=ताला। छुद्र=छोटे। रमापति=लक्ष्मी के पति विष्णु या कृष्ण। जिय=हृदय में। विरद=यश, उपाधि। भारो= भारी। विख्यात=प्रसिद्ध। कल=सुन्दर।

भावार्थ—सूरदास भगवान् श्रीकृष्ण से अपने उद्धार के लिए प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे नाथ! यदि आप मेरा उद्धार कर सकते हैं तो अवश्य कर दीजिए। मैं पापियों में प्रसिद्ध पापी हूँ। और आपका तो नाम ही 'पतितपावन' पापियों को पवित्र करने वाला है। मैं इतना बड़ा पापी हूँ कि बड़े-बड़े पापी भी मेरे पासंग के बराबर भी नहीं हैं। बेचारा अजामिल भी मेरे सामने क्या है, नरक भी मेरा नाम सुन कर भाग जाता है। यमराज ने बड़ी दृढ़ता से नरक के द्वारों पर ताले लगा लिये हैं ताकि कहीं मेरे जैसा बड़ा पापी नरक में न पहुँच जाय। हे लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु! अब तक आपने छोटे-छोटे पापियों का उद्धार किया है मेरे जैसे किसी बड़े पापी का उद्धार नहीं किया। इसलिए आप अपने हृदय में यह अभिमान मत करो कि मैं बहुत बड़ा पतित-पावन हूँ। हे भगवन्! अब मुझ पापी सूरदास को भी अपनी शरण में ले लीजिए, नहीं तो आपका 'पतित-पावन' का जो बड़ा सुन्दर यश है वह नष्ट हो जायगा।

इस प्रकार भक्त व्यंग्यवचनों के द्वारा अपने प्रिय प्रभु से उद्धार की प्रार्थना करता है कि यदि अनुनय-विनय से नहीं तो खरी-खरी सुनकर मेरा उद्धार कर दीजिए।

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूंगेहि मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै।
परम स्वादु सब ही जू निरन्तर अमित तोस उपजावै।
मन बानी को अगम अगोचर सो जाने जो पावै।
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु निरालम्ब मन चकृत धावै।
सब बिधि अगम बिचारहि तातें 'सूर' सगुन लीला पद गावै॥

शब्दार्थ—अविगत=निराकार ईश्वर। गति=अवस्था, दशा। अन्तरगत=हृदय में। परम सुस्वादु=बहुत सुन्दर स्वाद वाला। निरन्तर=लगातार। अमित=बहुत-सा, अनन्त। तोस=सन्तोष। उपजावै=उत्पन्न करता है। अगम=पहुँच से परे। अगोचर=इन्द्रियों की पहुँच से परे। जुगति=युक्ति, ईश्वर को प्राप्त करने का तरीका। निरालम्ब=बिना सहारे के। चकृत=हैरान। धावे=दौड़ता है। तातें=इसलिए।

भावार्थ—सूरदास निर्गुण ब्रह्म का निरूपण न कर सगुण ब्रह्म (श्रीकृष्ण) के गुण क्यों गाते हैं—इस प्रश्न का उत्तर देते हुए इस पद में निर्गुण का खण्डन तथा सगुण का मण्डन किया गया है। अविगत अर्थात् निराकार ईश्वर की गति कुछ समझ में नहीं आती। यदि किसी को उस निर्गुण का साक्षात्कार हो भी जाय तो वह उसका वर्णन नहीं कर सकता प्रत्युत गूँगे के गुड़ की भांति अपने मन में प्रसन्न हो सकता है। माना कि वह निराकार प्रभु परम आनन्द-स्वरूप है और उसके ध्यान में रस भी खूब आता है तथा उससे अनन्त सन्तोष भी प्राप्त होता है, फिर भी वह मन और वाणी की पहुँच से परे है जो उसको पा लेता है वह जान सकता है। क्योंकि न तो उसका कोई स्वरूप ही है न कुछ आकार ही, न कोई गुण है न जाति ही। अतः मन उस निराकार प्रभु का ध्यान लगाते समय निराधार होकर चकित हो इधर-उधर

भटकता रहता है। पर उस निराकार के स्वरूप का ध्यान नहीं कर पाता, इसलिए निराकार प्रभु को सब प्रकार से अगम्य—अप्राप्य जान कर सूरदास तो साकार प्रभु के गीत या गुण गाया करता है।

छाँड़ि मन हरि-विमुखन को संग।
जाके सङ्ग कुबुद्धी उपजै परत भजन में भंग।
कहा भयो पय पान कराए विष नहिं तजत भुजंग।
काम क्रोध मद लोभ मोह में निसदिन रहत उमंग।
कागहिं कहा कपूर खवाए, स्वान न्हवाये गंग।
खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषन अंग॥
पाहन पतित बान नहिं भेदत रीतो करत निषंग।
'सूरदास' खल कारी कामरि चढ़ै न दूजो रंग॥

शब्दार्थ—हरिबिमुख=भगवान् के विरोधी। कुबुद्धि=बुरी बुद्धि भंग=विघ्न। पय=दूध। पान कराये=पिलाने से। विष=ज़हर। भुजंग=साँप। निस-दिन=रात-दिन। काग=कौआ। स्वान=कुत्ता। खर=गधा। अरगजा=एक सुगन्धित पदार्थ। मरकट=बन्दर। भूषण=गहना। पाहन=पत्थर। पतित=गिरा हुआ। रीती=खाली। निषंग=तरकस। खल=दुष्ट।

भावार्थ—सूरदास जी अपने मन को बुरे लोगों की संगति से बचने की प्रेरणा करते हुए कहते हैं कि हे मन, तू भगवान् के विरोधियों का साथ छोड़ दे : क्योंकि उनके साथ में रहने से बुरी बुद्धि उत्पन्न होती है और भक्ति में बाधा होती है विघ्न पड़ते हैं। साँप को दूध पिलाने से कोई लाभ नहीं होता, क्योंकि वह अपना विष नहीं छोड़ता। हरिविमुख लोग रात-दिन काम, क्रोध मद लोभ और मोह में मग्न रहते हैं। कौए को कपूर खिलाने से क्या, वह सफेद तो होगा ही नहीं, और कुत्ते को गंगा-स्नान कराया जावे तो भी वह पवित्र नहीं हो सकता। गधे पर

अरगजा आदि सुगन्धित पदार्थो का लेप करने से क्या लाभ ? वह तो फिर भी धूल मे ही लेटेगा। इसी प्रकार बन्दर के अगों पर आभूषण पहना देने से क्या। जिस प्रकार पत्थर पर मारा गया बाण उसे वेध नहीं सकता प्रत्युत स्वय तरकस ही खाली हो जाता है, उसी प्रकार दुष्ट को कितना ही अच्छा उपदेश क्यों न दो वह कभी सुधरेगा नहीं, क्योंकि दुष्ट और काले कम्बल पर दूसरा रग नही चढ सकता।

भाव यह कि दुर्जन बडे हठी होते हैं, उन्हे आप कितने ही अच्छे ढग से भली बात समझायें पर वे वैसे ही आप की बात न मानेंगे जैसे काले कम्बल को चाहे जिस लाल, पीले या अन्य किसी रग में डुबोइए वह काला का काला ही रहेगा। अत दुष्टों से वाद-विवाद या बहस में समय नष्ट करने की अपेक्षा अपने काम से काम रखना चाहिए।

तुम कब मो सों पतित उधार्यौ।
काहे कौं हरि विरद बुलावत बिन मसकत को तार्यौ।
गीध, व्याध, गज, गौतम की तिय, उन को कौन निहोरौ।
गनिका तरी आपनी करनी, नाम भयौ प्रभु तोरौ।
अजामील तौ विप्र तिहारौ, हुतौ पुरातन दास।
नैकु चूक तैं यह गति कीनी, पुनि वैकुण्ठ निवास।
पतित जानि तुम सब जन तारे, रह्यौ न कोऊ खोट।
तौ जानौं जो मोंहि तारिहौ, 'सूर' कूर कवि ढोट।

पतित पावन हरि विरद तुम्हारौ कौने नाम धर्यौ ?
हौं तो दीन, दुखित, अति दुरबल, द्वारै रटत पर्यौ।
चारि पदारथ दिए सुदामा तन्दुल भेंट धर्यौ।
द्रुपदसुता की तुम पत राखी, अम्बर दान कर्यौ।
सदीपनसुत तुम प्रभु दीने, विद्यापाठ कर्यौ।
बेर 'सूर' की निठुर भये प्रभु, मेटौ कछु न सर्यौ ॥

शब्दार्थ—विरद=यश, उपाधि। मसकत=मशक्कत, परिश्रम। गीध=जटायु (जिस ने सीता हरण करते हुए रावण से युद्ध करते हुए अपने प्राण त्याग दिये)। व्याध=शिकारी। कहते हैं कि वाल्मीकि पहले व्याध थे। गज=हाथी (एक बार किसी हाथी को पानी पीने के लिए तालाब में जाने पर किसी मगरमच्छ ने पकड लिया तब हाथी ने भगवान् का स्मरण किया। भगवान् ने तत्काल दौड़ कर उसे मगरमच्छ के फन्दे से बचा लिया)। गौतम की तिय=गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या (जो ऋषि के शाप से शिला बन गई थी और जिस का उद्धार भगवान् राम ने किया)। निहोरौ=अहसान। गणिका=वेश्या (कहते हैं एक वेश्या बड़ी पापिन थी। वह अपने तोते को पढ़ाने के लिये राम नाम लिया करती थी, उसी से उसका उद्धार हो गया)। विप्र=ब्राह्मण। पुरातन=पुराना। नेकु=जरा-सी। पुनि=फिर। खोट=बुरा या बुराई। कूर=झूठा। पतितपावन=पापियों को पवित्र करने वाला। हौं=मैं। दुरबल=कमज़ोर। द्वारै=दरवाजे पर। रटत=पुकारता है। चारि पदारथ=धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—ये चारों पदार्थ। तन्दुल=चावल। द्रुपदसुता=द्रुपद राजा की पुत्री द्रौपदी। पत=लाज। अम्बर=वस्त्र। सदीपनसुत=श्रीकृष्ण के गुरु का नाम सदीपन था। उनके पुत्र मर गये थे जिन्हें श्रीकृष्ण ने स्वर्ग से लाकर वापस दे दिया। विद्यापाठ=विद्या की पढ़ाई। निठुर=कठोर।

भावार्थ—सूरदास जी अपने उद्धार के लिए भगवान से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे भगवन्, तुमने मेरे जैसे बड़े पापी का भला कब उद्धार किया है! बिना परिश्रम के कभी किसी का उद्धार नहीं हुआ। फिर तुम व्यर्थ ही में अपने आप को 'पतित-पावन' क्यों कहलाते फिरते हो। गीध जटायु, व्याध वाल्मीकि, गज और गौतम की स्त्री अहल्या का उद्धार हुआ, इन्में भला आपका क्या अहसान है। पापी गणिका का भी उसकी अपनी करनी से ही उद्धार हुआ था, पर नाम मुफ्त ही में

तुम्हारा हो गया कि तुमने गणिका का उद्धार किया। पापी ब्राह्मण अजामिल तो तुम्हारा पुराना सेवक था, उससे थोड़ी-सी भूल हो गई उसी के कारण उसकी वैसी दशा हुई, और अन्त में उसे वैकुण्ठ वास प्राप्त हो गया। तुमने तो उन सबको पतित या पापी समझ कर ही उनका उद्धार किया था पर वास्तव में इनमें से कोई भी पापी न था। मैं तो तब जानूँ कि वास्तव में ही आप पतितों का उद्धार करने वाले हैं, जब झूठे और निकृष्ट कवि मुझ सूरदास का आप उद्धार कर दें।

हे हरि, न जाने किसने तुम्हारा नाम 'पतित-पावन' धर दिया है, क्योंकि मैं तो अत्यन्त दीन-दु:खी और दुर्बल होकर तुम्हारे द्वार पर पड़ा पुकार रहा हूँ। (पर तुम मेरा उद्धार नहीं करते तो 'पतित-पावन' कैसे हो) माना, कि तुमने सुदामा को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों पदार्थ दे दिये, पर उसने तो तुम्हें चावल भेंट किये थे। तुमने द्रौपदी को वस्त्र देकर उसकी लाज बचा ली, सदीपन गुरु से तुमने विद्या पढ़ी थी, इसलिए उसके मरे हुए पुत्रों को तुमने वापस ला दिया। सूरदास जी कहते हैं कि हे भगवन्! तुम मेरी बारी इतने कठोर क्यों हो गये हो, जो मेरा कुछ भी कार्य नहीं करते। यह भी अपने प्रभु के प्रति भक्त का मधुर व्यग्य-वचन है।

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै।

जैसे उडि जहाज को पच्छी फिरि जहाज पर आवै।
कमलनयन को छाँड़ि महातम और देव को ध्यावै।
परम गंग को छाँड़ि पियासो दुर्मति कूप खनावै।
जिन मधुकर अम्बुज-रस चाख्यौ क्यों करील फल खावै।
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै॥

शब्दार्थ—अनत=अन्यत्र, दूसरे स्थान पर। कमलनयन=कमल के समान नेत्रों वाले भगवान् श्रीकृष्ण। ध्यावै=ध्यान करे। छाँड़ि= छोड़कर। दुर्मति=खोटी बुद्धि वाला। कूप=कूआँ। खनावै=खुदाते

हैं। मधुकर=भौंरा। अम्बुज=कमल। करील=एक काँटेदार झाड़ी। कामधेनु=मनचाही वस्तु देने वाली गौ। छेरी=बकरी।

भावार्थ—सूरदास जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण को छोड़कर मेरा मन और किसी दूसरे स्थान में भला कैसे सुख पा सकता है। जिस प्रकार जहाज़ के पक्षी के लिए एकमात्र आधार जहाज ही होता है (वह इधर-उधर चारों ओर उड़कर अन्त में उसी जहाज पर जा बैठता है, क्योंकि समुद्र में इधर-उधर अन्य कोई उसके लिए आश्रय-स्थान नहीं होता, अतः उसे बार-बार उसी जहाज़ की शरण लेनी पड़ती है) वैसे ही मेरा मन भी इधर-उधर घूमकर अन्त में श्रीकृष्ण की शरण में ही आ जाता है। श्रीकृष्ण के माहात्म्य को छोड़कर और दूसरे देवता का कौन ध्यान करे। यदि कोई दूसरे देवता का ध्यान करता है तो वह मानो ऐसा कार्य करता है जैसे कि कोई मूर्ख प्यासा परम-पवित्र गंगा को छोड़कर कुआँ खुदवा रहा है। भला जिस भ्रमर ने कमल का रस चख लिया हो वह भौंरा कँटीली करील की झाड़ियों के रूखे फलों को क्यों खायेगा। सूरदास जी कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण रूपी कामधेनु को छोड़कर बकरी को कौन दुहेगा। भाव यह कि श्रीकृष्ण को छोड़कर दूसरे किसी देवता की उपासना करना ऐसे ही व्यर्थ है जैसे कामधेनु को छोड़कर बकरी को दुहना।

प्रभु मोरे अवगुण चित न धरो।
समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो।
इक नदिया इक नार कहावत मैलोहि नीर भरो।
जब दोनों मिल एक बरन भये सुरसरि नाम परो॥
इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो।
पारस गुन अवगुन नहिं चितवै कंचन करत खरो।
यह माया भ्रम-जाल कहावै 'सूरदास' सगरो।
अबकी बार मोहि पार उतारो नहिं पन जात टरो॥

शब्दार्थ—अवगुन=दोष । समदरसी=भले और बुरे को समान भाव से देखने वाले । तिहारो=तेरा । नीर=पानी । नदिया=नदी । बरन=रंग । सुरसरि=गंगा । बधिक=कसाई, वध करने वाला । **पारस**=एक मणि जिसको छूने से लोहा सोना हो जाता है । कंचन=सोना । **सगरो**=सब । **पन**=प्रण ।

भावार्थ—हे प्रभो, आप मेरे अवगुण या बुराइयों की ओर ध्यान न दीजिए । आपका तो नाम समदर्शी अर्थात् सब को समान भाव से देखने वाला है । आप अपनी (पतितों को पावन करने की) प्रतिज्ञा को पूरा कीजिए । एक नदी है और दूसरा गंदे पानी से भरा हुआ नाला है, पर जब दोनों ही गंगा में जा मिलते हैं तो उनका रूप रंग एक जैसा हो जाता है और उनका नाम भी गंगा पड़ जाता है । इसी प्रकार एक तो पूजा का पवित्र लोहा है और दूसरा कसाई के घर में पड़ा हुआ (छुरी आदि का अपवित्र) लोहा । पर (लोहे को सोना बना देने वाली) पारस मणि के हृदय में यह दुविधा नहीं होती कि यह अपवित्र लोहा है इसे सोना न बनाऊँ, और पवित्र लोहे को सोना बना दूँ । वह तो दोनों को ही खरा सोना बना देता है । सूरदास जी कहते हैं कि यह माया तो भ्रम-जाल ही है । हे भगवन् ! आप अब की बार मेरा उद्धार कर दीजिए अन्यथा आपका 'पतित-पावन' का प्रण टल जायगा ।

भाव यह है कि हे भगवन् ! आप मेरे दोषों को देखते हुए कृपा कर उद्धार कर दीजिए, क्योंकि आप 'समदर्शी' और 'पतितपावन' हैं ।

काया हरि के काम न आई ।
भाव भक्ति जहँ हरियश सुनयो तहाँ जात अलसाई ।
लोभातुर ह्वै काम मनोरथ तहाँ सुनत उठि धाई ।
चरन कमल सुन्दर जहँ हरि को क्योंहू न जात नवाई ।
जब लगि श्याम अंग नहिं परसत आँखें जोग रमाई ।
'सूरदास' भगवत भजन बिनु विषय परम विष खाई ॥

शब्दार्थ—काया=शरीर। हरियश=भगवान् का यश। अलसाई=आलस्य करता है। लोभातुर=लोभ से व्याकुल। मनोरथ=इच्छाएँ। उठि धाई=उठकर, दौड़कर। नवाई=झुकता, नमस्कार करता। विष=जहर।

भावार्थ—मेरा यह शरीर भगवान् के कुछ काम नहीं आया। जहाँ भक्ति-भाव और भगवान् की कथा कानों में पडे वहाँ जाते हुए तो यह मन अलसाता है। जहाँ लोभ-लालच-काम क्रोध और अनेक प्रकार की इच्छाएँ अपना डेरा जमाये रहती हैं, वहाँ यह दौड-दौड़कर पहुँचता है। श्रीकृष्ण के सुन्दर चरण-कमलों मे जाकर कभी किसी भी प्रकार प्रणाम नहीं करता। जब तक भगवान् श्रीकृष्ण के चरण आदि अंगो का स्पर्श नहीं हो जाता तब तक योग की साधना कर लेना आदि सब कुछ व्यर्थ है। सूरदास कहते हैं कि हे मन! तू भगवान् के भजन के बिना विषय-वासना रूपी भयंकर विष को खा रहा है।

सबै दिन गए विषय के हेत।
तीनोंपन ऐसे ही बीते केस भए सिर सेत।
आँखिन अंध श्रवन नहिं सुनियत थाके चरन समेत।
गंगाजल तजि पियत कूपजल हरि तजि पूजत प्रेत।
राम नाम बिन क्यों छूटोगे चन्द्र गहे ज्यों केत।
'सूरदास' कछु खर्च न लागत राम नाम मुख लेत॥

शब्दार्थ—हेत=लिए। तीनोंपन=बचपन, जवानी और बुढ़ापा। सेत=सफेद। श्रवन=कान। कूपजल=कुएँ का पानी। प्रेत=भूत-प्रेत। केत=केतु नामक ग्रह जो चन्द्रमा को ग्रसता है।

भावार्थ—सब दिन विषय-वासनाओं के लिए ही बीत गये। बचपन, जवानी और बुढ़ापा ये तीनों अवस्थाएँ यूँ ही निकल गईं, यहाँ तक कि बाल सब सफेद हो गये। आँखे अंधी हो गईं, कानों से कुछ सुनाई नहीं

देता, और पैरों के साथ दूसरे सब अंग भी थक गये। जो लोग भगवान् को छोड़कर भूत-प्रेतों की पूजा करते हैं, व मानो गंगाजल को छोड़कर कूएँ का पानी पीते हैं। जिस प्रकार राहु केतु चन्द्रमा को ग्रस लेते हैं वैसे ही मनुष्य को ये विषय-विकार ग्रस लेते हैं। सूरदास जी कहते हैं कि भगवान् के भजन के बिना मनुष्य इनसे कैसे छूट सकता है। मुख से राम नाम लेते हुए हे मन! तेरा कुछ भी तो मोल नहीं लगता।

बाल-लीला

कान्हा चलत पग द्वै द्वै धरनी।
जो मन मे अभिलाष करत ही सो देखत नँदघरनी।
रुनुक झुनुक नूपुर बाजत पग यह अति है मनहरनी।
बैठ जात पुनि उठत तुरत ही सो छवि जाय न बरनी।
ब्रज जुवती सब देखि थकित भई सुन्दरता की सरनी।
चिरजीवौ जसुदा को नंदन 'सूरदास' को तरनी॥

शब्दार्थ—कान्हा=श्रीकृष्ण। धरनी=पृथ्वी। अभिलाष=इच्छा। नँदघरनी=नंद की स्त्री, यशोदा। नूपुर=झाँझर, पायल। मनहरनी=मन को हरने वाली। छवि=शोभा। युवती=स्त्री। थकित भईं=मोहित हो गईं। सरनी=सीमा। तरनी=उद्धार करने वाले।

भावार्थ—बालक श्रीकृष्ण के पैरों चलना सीखने की अवस्था का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि—अब कृष्ण पृथ्वी पर एक-दो पाँव चलने लग पड़े हैं। जिस बात की नन्द रानी के मन में इच्छा थी (कि कृष्ण पैर-पैर चलने लगे) वह आँखों से देख रही है। कृष्ण के पैरों में झाँझरें बज रही हैं। उस शोभा का वर्णन नहीं किया जा सकता। सुन्दरता के भण्डार श्रीकृष्ण को देख कर सब ब्रजयुवतियाँ अपने आप को भूल गईं। सूरदास जी कहते हैं कि मेरे लिये संसार-सागर से पार उतारने वाली नाव के समान वह यशोदा का लाल जुग-जुग जीये।

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहि दूध पिवत भई यह अजहूँ है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी।
काढत गुहत न्हवावत ओंछत नागिनि-सी भुइ लोटी।
काचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी।
'सूर' स्याम चिरजीउ दोउ भैया हरि हलधर की जोटी॥

शब्दार्थ—किती बार=कितनी देर। बेनी=चोटी। गुहत=गूँथते हुए। नागिनि=सापिन। भुइ=पृथ्वी। हलधर=बलदेव। जोटी=जोड़ी।

भावार्थ—श्रीकृष्ण जब दूध पीने में आना-कानी करते हैं तो माता यशोदा उन्हें यह कह कर दूध पिला देती हैं कि दूध पी लेगा तो तेरी चोटी बड़ी हो जायगी। इस पर श्रीकृष्ण कहते हैं कि—हे माता! मेरी चोटी अब कब बढ़ेगी। मुझे दूध पीते तो कितने ही दिन बीत गये, पर यह तो अब भी छोटी ही है। तू तो कहती थी कि मेरी चोटी भी बलदेव की चोटी की तरह लम्बी और मोटी हो जायगी और काढ़ते, गूँथते, नहाते व पोंछते हुए नागिन की भांति पृथ्वी पर लोटने लगेगी। तू तो बार-बार पच-पच कर मुझे कच्चा दूध पिलाती है, मक्खन, रोटी तो कभी देती ही नहीं। इस प्रकार की बातें करते हुए श्रीकृष्ण की शोभा को देख कर सूरदास जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण और बलदेव की जोड़ी युगों तक जीवित रहे।

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीनो तोहिं जसुमति कब जायो।
कहा कहौं एहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जातु।
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तातु।

गोरे नद जसोदा गोरी तुम कत स्याम सरीर।
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलबीर।
तू मोही को मारन सीखी दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन को मुख रिस समेत लखि जसुमति सुनि सुनि रीझै।
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई जनमत ही को धूत।
'सूर' स्याम मोहि गोधन की सौं हौं माता तू पूत॥

शब्दार्थ—दाऊ=बलदेव। जसुमति=यशोदा। कहा=क्या। एहि=इसी। रिस=क्रोध। हौं=मैं। पुनि पुनि=बार बार। तातु=पिता। कत=क्यों। स्याम=साँवला। सिखई देत=सिखा देते हैं। बलभद्र=बलदेव। चबाई=चुगलखोर। धूत=धूर्त, चालाक। गोधन=गौ रूपी धन।

भावार्थ—बलदेव श्रीकृष्ण को सदा चिढाया करता है कि तू तो मोल लिया हुआ है। उसकी शिकायत करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे माता! बलदेव ने मुझे बहुत चिढाया। मुझे कहता है कि तू तो मोल लिया हुआ है, तू यशोदा के कब उत्पन्न हुआ था। क्या कहूँ इसी क्रोध के मारे मैं खेलने भी नहीं जाता। मुझे बार-बार पूछता है कि तेरे माता-पिता कौन हैं? नन्द और यशोदा तो गोरे हैं, तू काला कलूटा कैसे है। सब ग्वाल-बाल भी चुटकी बजा कर हँसते हैं और बलदेव उनको सिखा देता है। तू भी तो मुझे ही मारना सीखी है, बलदेव पर तो कभी खीजती भी नहीं। इस प्रकार कृष्ण के क्रोध भरे मुख को देखकर यशोदा बार-बार प्रसन्न होती है और कहती है कि बलदेव तो जन्म से ही चालाक और इधर की उधर लगाने वाला है। मुझे गोधन की सौगन्ध है कि मैं तेरी माता हूँ और तू मेरा पुत्र है।

मैया मेरी मैं नहिं माखन खायो।
भोर भई गैयन के पाछे मधुवन मोहिं पठायो।
चार पहर बंसीवट भटक्यो साँझ परे घर आयो।

मैं बालक बँहियन को छोटो छीको किहि विध पायो।
ग्वाल बाल सब बैर परे हैं बरबस मुख लपटायो।
तू जननी मन की अति भोरी इनके कहे पतियायो।
जिय तेरे कछु भेद उपज हैं जान परायो जायो।
यह ले अपनी लकुटि कमरिया बहुतहि नाच नचायो।
'सूरदास' तब बिहँसि जसोदा लै उर कंठ लगायो॥

शब्दार्थ—भोर=प्रातःकाल। पठायो=भेजा। पहर=तीन घण्टे का समय। बँहियन=बाँह। किहि विध=किस प्रकार। जननी=माता। पतियायो=विश्वास किया। लकुटि=छड़ी। बिहँसि=हँस कर। उर=हृदय।

भावार्थ—श्रीकृष्ण को ग्वाल बालों के साथ मक्खन चुरा कर खाते हुए पकड़ लिया गया। यशोदा जब उन्हें डाँटने लगी तो अपनी सफाई पेश करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि ऐ मेरी माता! मैंने मक्खन नहीं खाया। प्रातःकाल होते ही तो तूने मुझे गौओं के पीछे मधुवन भेज दिया था। चार पहर तक वंशी वट के पास भटकता रहा, सन्ध्या होने पर घर आया। भला तू ही सोच कि मैं छोटी-छोटी बाँहों वाला बच्चा छींके को कैसे पा सकता था। ये ग्वाल बाल तो सब मेरे शत्रु हो रहे हैं। इसलिए इन्होंने जबरदस्ती मेरा मुख मक्खन से लपेट दिया है। और हे माता! तू भी तो बहुत ही भोली है जो इनके कहने पर विश्वास कर लेती है। मुझे पराया जानकर अब तेरे हृदय में भी मेरे प्रति दुर्भाव-सा उत्पन्न हो गया दीखता है। ले अपनी लाठी और कमली सम्भाल, अब तक तूने मुझे बहुत नाच नचाये। इस पर श्रीकृष्ण की बातों से प्रसन्न होकर यशोदा ने हँस कर कृष्ण को गले लगा लिया।

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुन चलत रेनु तन मंडित मुख में लेप किये।
चारु कपोल लोल लोचन छवि गोरोचन को तिलक दिये।
लट लटकत मानो मत्त मधुप गन माधुरी मधुर पिये।
कठुला के वज्र केहरिनख राजत हैं सखि रुचिर हिये।
धन्य 'सूर' एकौ पल यह सुख कहा भयौ सत कल्प जिये॥

शब्दार्थ—कर=हाथ। नवनीत=मक्खन। रेनु=धूल। तन=शरीर। मंडित=शोभित। चारु=सुन्दर। कपोल=गाल। लोल=चंचल। लोचन=नेत्र। छवि=शोभा। गोरोचन=एक पीले रंग का पदार्थ। मत्त=मस्त। मधुप=भौंरा। गण=समूह। माधुरी=शोभा, मधुरता। कठुला=गले में पहना जाने वाला एक प्रकार का जेवर। वज्र=हीरा। केहरिनख=शेर का नाखून। राजत=शोभित। रुचिर=सुन्दर। हिये=हृदय। सत=सो। कल्प=एक बार की सृष्टि की स्थिति का समय।

भावार्थ—सूरदास जी शिशु कृष्ण के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि श्रीकृष्ण हाथ में मक्खन लिये हुए अत्यन्त शोभित हो रहे हैं। वे घुटनों के बल रेंग रहे हैं। शरीर पर धूल लिपटी हुई है और मुँह पर मक्खन लिपटा हुआ है, उनके गाल बड़े सुन्दर हैं। नेत्रों की लाल-लाल शोभा बड़ी मनोहर है, और सिर पर गोरोचन का तिलक लगा हुआ है। बालों की लटें ऐसे बिखर रही हैं मानो मधुर सौन्दर्य के रस पिये हुए मस्त भौंरे मँडरा रहे हों। हे सखी! इनके सुन्दर हृदय पर कठुले में पिरोया हुआ हीरा और शेर का नाखून बड़ा ही सुशोभित हो रहा है। वे लोग धन्य हैं, जिन्होंने एक पल के लिए भी श्रीकृष्ण की इस अनुपम शोभा को देख लिया है। इसके विपरीत जिन्होंने इस शोभा को नहीं देखा वे चाहे सैकड़ों कल्पों तक जीते रहें, तब भी क्या लाभ है।

यशोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोई कछु गावै।
मेरे लाल को आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै।
तू काहे न वेगि सी आवै तो को कान्ह बुलावै।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावैं।
सोवत जानि मौन ह्वै रही कर-कर सैन बतावै।
इहि अतर अकुलाइ उठे हरि यशुमति मधुरै गावै।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुर्लभ सो नन्दभामिनि पावै॥

शब्दार्थ—वेगि = शीघ्र। अधर = ओठ या होठ। मौन ह्वै रही = चुप हो रही। कर कर = हाथ के। सैन = इशारा। इहि अन्तर = इतने में ही। अकुलाय उठे = व्याकुल हो उठे। यशुमति = यशोदा। अमर = देवता। भामिनि = स्त्री। नन्दभामिनि = नन्द की स्त्री यशोदा।

भावार्थ—यशोदा श्रीकृष्ण को पालने में झुला रही है। वह उनसे दुलार करती है, पालने को हिलाती है और तन्मय होकर जो चाहे गाने लगती है, गाती हुई कहती है कि। मेरे लाल की नींद ! तू मेरे लाल की आँखों मे आजा। उसे आकर तू सुलाती क्यों नहीं। तू जल्दी ही क्यों नहीं आ जाती, तुझे श्रीकृष्ण बुला रहा है। यह सुन कर श्रीकृष्ण कभी अपनी पलकें बन्द कर लेते हैं, कभी ओठ फड़काने लगते हैं। माता यशोदा उन्हें सोया हुआ जान कर गाते-गाते चुप हो जाती है, और दूसरों को कोई बात बतानी होती है तो हाथ के इशारों से बताती है ताकि श्रीकृष्ण जाग न जायें। श्रीकृष्ण इतने ही में व्याकुल हो उठते हैं तब यशोदा फिर कुछ मधुर ध्वनि से गाने लगती है। सूरदास कहते हैं कि यह सुख तो देवता और मुनियों को भी दुर्लभ है, जिसको नद की स्त्री यशोदा अनायास ही प्राप्त कर रही है।

लालन हौं वारी तेरे या मुख ऊपर।
माई मेरिहि डीठि न लागै तातैं मसि-बिन्दा दियो भ्रू पर।
सर्वसु मैं पहिले ही दीन्हीं नान्हीं नान्हीं दंतुली दू पर।
अब कहौं करौं निछावरि 'सूर' यशोमति अपने लालन ऊपर॥

शब्दार्थ—डीठि=दृष्टि, नजर। मसि=स्याही। भ्रू=भौंह। सर्वसु=सर्वस्व, सब कुछ। दंतुली=छोटे दाँत। दू=दो।

भावार्थ—यशोदा कहती है कि हे लाल, मैं तेरे मुख (की सुन्दरता) पर बलिहारी हूँ। हे सखी! कहीं मेरे लाल को मेरी अपनी ही नजर न लग जाय, इसलिए मैंने इसके भौंहों के बीच मे काली बिन्दी लगा दी है। मैंने अपना सर्वस्व तो पहले ही उसके दो नन्हे छोटे-छोटे दाँतों पर न्योछावर कर दिया है। अब ऐसी कौन-सी वस्तु रह गई है जो अपने लाल पर न्योछावर कर दूँ?

गहे अँगुरिया तात की नंद चलन सिखावत।
अरबराइ गिरि परत हैं कर टेकि उठावत॥
बार बार बकि स्याम सौं कछु बोल बकावत।
दुहुँधा दोउ दंतुली भई अति मुख छवि पावत।
कबहुँ कान्ह कर छाँडि नंद पग द्वै करि धावत॥
कबहुँ धरणि पर बैठि कै मन महँ कछु गावत।
कबहुँ उलटि चलै धाम को घुटरुन करि धावत॥
'सूर' स्याम मुख देखि महर मन हर्ष बढावत।

शब्दार्थ—गहे=पकड़े हुए। अंगुरिया=अंगुली। तात=प्रिय, यहाँ यह शब्द पुत्र के लिए प्रयुक्त हुआ है। अरबराइ=घबरा कर। कर=हाथ। टेकि=पकड़ कर। दुहुँधा=ऊपर नीचे दोनो ओर। धावत=दौड़ते है। धरणि=पृथ्वी। धाम=घर। महर=नंद बाबा।

भावार्थ—नंद बाबा अपने लाड़ले लाल की उंगली पकड़े हुए

उसे चलना सिखा रहे हैं। श्रीकृष्ण जब कभी चलते-चलते घबरा कर गिर पड़ते हैं तो उन्हें नंद बाबा पकड़ कर उठा लेते हैं और बार-बार बोल कर वे श्रीकृष्ण को कुछ बोलना सिखाते हैं। मुख में ऊपर और नीचे दोनों ओर दो-दो छोटे-छोटे निकले हुए दाँत बड़ी शोभा पा रहे हैं। श्रीकृष्ण कभी नंद का हाथ छोड़ कर दो-चार पाँव दौड़ते हैं, कभी पृथ्वी पर बैठ कर मन में कुछ गाते हैं और कभी लोट कर घर की ओर घुटनों के बल रेंगने लगते हैं। सूरदास कहते हैं कि नंद बाबा श्रीकृष्ण के मुख को देख-देख कर मन में प्रसन्न होते हैं।

चन्द्र खिलौना लैहौं मैय्या मेरी, चन्द्र खिलौनो लैहौं।
धौरी को पयपान न करिहौं, बेनी सिर न गुथैहौं।
मोतिन माल न धरिहौं उर पर झगुली कंठ न लैहौं।
जैहौं लोट अभी धरनी पर तेरी गोद न ऐहौं।
लाल कहैहौं नंद बबा को तेरो सुत न कहैहौं।
कान लाय कछु कहत जसोदा दाउहिं नाहिं सुनैहौं।
चंदा हू ते अति सुन्दर तोहिं नवल दुलहिया ब्यैहौं।
तेरी सौंह मेरी सुन मैय्या हौं अब ही ब्याहन जैहौं।
'सूरदास' सब सखा बराती नूतन मंगल गैहौं॥

शब्दार्थ—धौरी = 'धौरी' नाम वाली सफेद गौ। पय=दूध। पान=पीना। उर=हृदय। सुत=पुत्र। दुलहिया = दुलहिन। नूतन=नये। गैहौं=गाऊँगी।

भावार्थ—बालकृष्ण चन्द्रमा को लेने के लिए हठ करते हुए कहते हैं कि हे माँ! मैं तो चाँद का खिलौना लेऊँगा। (और यदि तू वह न ला देगी तो) मैं धौरी गाय का दूध न पीऊँगा और सिर पर चोटी भी न गुथाऊँगा। गले में मोतियों की माला न पहनूँगा और न शरीर पर झग्गा या कुरता ही पहनूँगा। जमीन पर लेट जाऊँगा और तेरी गोद

में नहीं आऊँगा। मैं नंद बाबा का बेटा कहलाऊँगा तेरा नहीं, तब यशोदा उनके कान में कुछ कहती है (कि इधर आ, तुझे एक बात बताऊँ)कहीं बलदेव न सुन ले। कान मे कहती है कि चाँद से भी अत्यन्त सुन्दर नई दुलहिन से तेरा विवाह कर दूँगी। तब श्रीकृष्ण कहते हैं कि माँ तेरी सौगन्ध है तू मेरी बात सुन, मैं अभी ब्याहने चला जाता हूँ। सूरदास जी कहते हैं कि सब सखा बराती बन जायेंगे, और नये-नये आनन्द-बधाई के गीत गायेंगे।

भ्रमरगीत

उर मे माखनचोर गड़े।
अब कैसेहुँ निकसत नहिं ऊधो, तिरछे ह्वै जु अड़े।
जदपि अहीर जसोदा-नन्दन, तदपि न जात छँडे।
वहाँ बने जदुबंस महाकुल, हमहिं न लगत बड़े।
को वसुदेव, देवकी है को, ना जानैं औ' बूझैं।
'सूर' स्यामसुन्दर विन देखे, और न कोऊ सूझैं॥

शब्दार्थ—उर=हृदय। निकसत=निकलते। अहीर=ग्वाला। तदपि=तो भी।

भावार्थ—हमारे हृदय में माखनचोर समाये हुए हैं, वे इस प्रकार तिरछे होकर अड़ गये हैं कि अब किसी भी प्रकार निकल नहीं सकते। यद्यपि वे यशोदा के लाल अहीर हैं, तो भी हम उन्हें छोड़ नहीं सकतीं। मथुरा में वे यदुवंश के कुलीन बन गये हैं तो भी हमें वे बड़े नहीं लगते। हम नहीं जानतीं कि वसुदेव और देवकी कौन हैं, किन्तु कृष्ण को देखे बिना हमें तो और कोई सूझता ही नहीं, अच्छा ही नहीं लगता।

निरगुन कौन देस को वासी ।
मधुकर कहि समुझाइ सौंह दै बूझति साँच न हाँसी ।
को है जनक जननि को कहियत, को नारी को दासी ।
कैसो बरन भेष है कैसो, केहि रस मैं अभिलासी ।
पावैगो पुनि कियौ आपुनौ जो रे कहैगो गाँसी ।
सुनत कौन ह्वै रह्यो ठगौ सौ 'सूर' सबै मति नासी ॥

शब्दार्थ—निरगुन=निर्गुण । मधुकर=भौंरा । अभिलासी= चाहने वाला । पुनि = फिर । गाँसी=गाठ लगा कर, कपट से । मति= अक्ल ।

भावार्थ—हे उद्धव ! तुम्हारा वह निर्गुण ब्रह्म किस देश का निवासी है ? हम तुम्हें सौगन्ध दिला कर कहती हैं कि हमें समझा कर बताओ, हम सचमुच तुम से पूछ रही हैं, हँसी नहीं कर रहीं । उस निराकार ब्रह्म के माता-पिता तथा दासी और पत्नी कौन हैं, उसका रूप और वेष कैसा है तथा वह किस रस का रसिक है । यदि तूने हमारे साथ कोई छल-कपट की बात की तो तू अपने किये का फल पायेगा । अतः सब बातों के सच-सच उत्तर देना । उद्धव यह सुन कर ठगे हुए की भाँति चुप हो रहे, उनकी सारी बुद्धि नष्ट हो गई ।

ऊधो ! मन नाहीं दस बीस ।
एक हुतो सो गयो स्याम सँग, को आराधै स ?
भइ अति सिथिल सबै माधव बिनु, जथा देह बिनु सीस ।
स्वासा अटकि रहि आसा लगि, जीवहिं कोटि बरीस
तुम तौ सखा स्यामसुन्दर के, सकल जोग के ईस ।
'सूरदास' रसिकन की बतियाँ, पुरवौ मन जगदीस ॥

शब्दार्थ—हुतो= था । आराधै =आराधना करे । सिथिल = ढीली, शिथिल । जथा= यथा, जैसे । बरीस= वर्ष । पुरवौ =पूरी करो ।

भावार्थ—हमारे मन कोई दस-बीस तो है नहीं. तुम तो कहते हो कि हम निराकार ईश्वर की आराधना करें पर मन किसका लावें, क्योंकि हमारा अपना एक मन था सो वह तो कृष्ण के साथ चला गया। अतः अब तुम्हारे 'ईश' की यहाँ कौन आराधना करे ? हम सब तो कृष्ण के बिना वैसे ही शिथिल हो गई हैं जैसे सिर के बिना शरीर। दर्शनों की आशा के कारण ही श्वास अभी तक टिके हुए हैं और इस आशा के कारण ही हम अभी करोड़ों वर्ष जीती रह जायेंगी, तुम तो श्यामसुन्दर के मित्र हो और सभी योग-साधनों के स्वामी हो (किन्तु यह योग हमारे बस का नहीं)। सूरदास कहते हैं कि हे भगवन् ! उन रसिक गोपियों की बातों से मेरे मन को भी भर दो।

हमसों कहत कौन की बातें।
सुनि ऊधो ! हम समुझत नाहीं फिर पूछती हैं तातें।
को नृप भयो कंस किन मार्‌यो को बसुद्यो सुत आहि ?
यहाँ हमारे परम मनोहर जीवतु हैं मुख चाहि।
दिन प्रति जात सहज गोचारन गोप सखा लै संग।
बासरगत रजनीमुख आवत करत नयन-गति पंग।
को व्यापक पूरन अविनासी, को विधि वेद अपार ?
'सूर' वृथा बकवाद करत हौ या ब्रज नन्दकुमार ॥

शब्दार्थ—ऊधो=उद्धव। तातें=इसलिए। नृप=राजा। बसुद्यो=वसुदेव। सुत=पुत्र। आहि=है। चाहि=देखकर। बासरगत=दिन में गया हुआ। रजनीमुख=सन्ध्या। पंग=पंगु, बिना पैरों का लूला आदमी जो चल न सके। व्यापक=हर जगह फैला हुआ। अबिनासी=कभी नष्ट न होने वाला।

भावार्थ—उद्धव ने जब गोपियों से श्रीकृष्ण का प्रेम छोड़ कर निर्गुण ब्रह्म की उपासना के लिए कहा तो गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव ! तुम हमें किस की बातें कह रहे हो, क्योंकि तुम्हारी बातें हम समझ

नहीं पाई, इसलिए फिर से पूछ रही हैं। मथुरा मे जाकर राजा कौन बना, किसने कस को मारा, और कौन वसुदेव का पुत्र है। वे परम मनोहर श्रीकृष्ण तो यहीं पर हमारे प्राणाधार बने हुए हैं। वे प्रतिदिन गोप सखाओं को लेकर गौएँ चराने जाया करते हैं। दिन में जाकर सायकाल को हमारी आँखो की गति को पगु बनाते हुए आया करते हैं (हमारी आँखें सायकाल को उन्हें आता देख कर उन्हीं के मुख को देख कर अटक जाती हैं, इसलिए कहा है कि हमारी आँखों को पगु बनाते हैं)। वह सर्वव्यापक पूर्ण अविनाशी ईश्वर कौन है, और वह अनन्त, अभेद्य ईश्वर भी कौन है। तुम तो व्यर्थ ही बकवाद करते हो। तुम जो कहते हो कि वह परब्रह्म श्रीकृष्ण से भिन्न कोई दूसरा है। वास्तव में तो वह ईश्वर नदकुमार है जो इस ब्रज ही में हैं।

अँखियाँ हरि-दरसन की भूखीं।
कैसे रहैं रूप रस राची ये बतियाँ सुनी रूखीं।
अवधि गनत इकटक मग जोवत तव एती नहिं झूखीं।
अब इन जोग-सँदेसन ऊधो अति अकुलानी दूखीं।
बारक वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पिवत पतूखी।
'सूर' सिकत हठि नाव चलाओ ये सरिता है सूखी॥

शब्दार्थ—रूप-रस-राची=रूप रस में लगी हुई। अवधि=(श्रीकृष्ण के आने की) निश्चित तिथि। मग=मार्ग। जोवत=देखते हुए। झूखीं=दु:खी हुईं। अकुलानी=व्याकुल हो गई। बारक=एक बार। पय=दूध। पतूखी=दोना। सिकत=रेत। सरिता=नदी।

भावार्थ—गोपियाँ कहती हैं कि हे उद्धव जी! हमारी आँखें तो श्रीकृष्ण के लिए ललचाई हुई हैं। श्रीकृष्ण के रूप के दर्शन और रस में लगी हुई ये आँखे तुम्हारे योग की रूखी बातें सुन कर कैसे रह सकती हैं। श्रीकृष्ण के आने की तिथि की प्रतीक्षा करते हुए और निरन्तर मार्ग

देखते हुए भी ये इतनी दु:खी नहीं हुई थीं, पर हे उद्धव! अब तुम्हारे इन योग के संदेशों से बहुत व्याकुल और दु:खी होगई हैं। तुम हमें एक बार श्रीकृष्ण का वह मुख फिर लाकर दिखा दो, जो दौने में दूध पिया करता था। तुम यहाँ पर अपनी योग की नाव न चलाओ क्योंकि ये सूखी रेतीली नदी है। जैसे सूखी नदी में नाव नहीं चल सकती वैसे ही तुम्हारी योग की बातों का भी हम पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता।

ऊधो! तुम अपनौ जतन करौ।
हित की कहत कुहित की लागै, किन बेकाज ररौ॥
जाय करौ उपचार आपनौ, हम जो कहत हैं जी की।
कछु कहत कछुवै कहि डारत, धुन देखियत नहिं नीकी।
साधु होय तेहि उत्तर दीजै तुमसौं मानी हारी।
याही तैं तुम्हैं नँदनंदन जू यहाँ पठाए टारी।
मथुरा वेगि गहौ इन पाँयन, उपज्यौ है तन रोग।
'सूर' सुवैद वेगि किन ढूँढौ भए अर्द्धजल जोग॥

शब्दार्थ—जतन=उपाय। हित की=भले की। बेकाज=व्यर्थ। ररौ=लड़ाई करे, बहस करे। उपचार=इलाज। नीकी=अच्छी। पठाए=भेजे। गहौ=पकड़ लो। उपज्यौ=उत्पन्न हुआ। सुवैद=अच्छा वैद्य। अर्द्ध-जल=मरते हुए व्यक्ति को नदी में जो स्नान कराया जाता है, उसे 'अर्धजल' या 'अधजली' कहते हैं।

भावार्थ—गोपियाँ योग का उपदेश देने वाले उद्धव से कहती हैं कि हे उद्धव जी! तुम हमें तो उपदेश बाद में देना, पहले अपना उपाय कर लो। तुम्हें तो हित की कहते हुए भी बात बुरी लगती है तुम व्यर्थ ही में हम से उलझ रहे हो। जाओ और अपना इलाज करो, हम तो हृदय की सच्ची बात कहती हैं। तुम कहना तो कुछ चाहते हो और कह कुछ डालते हो, तुम्हारी यह स्थिति कुछ अच्छी नहीं दिखाई देती। कोई

समझदार सज्जन हो तो उसे उत्तर भी दें। हमने तो बाबा, तुम से हार मान ली, तुम ऐसी ही उल्टी-सीधी बातें वहाँ श्रीकृष्ण के पास भी करते होगे। इसीलिए मानो उन्होंने अपने पास से टाल कर तुम्हे हमारे यहाँ भेज दिया दीखता है। तुम्हें कुछ शरीर का रोग लग गया प्रतीत होता है इसलिए शीघ्र इन्ही पाँवो से मथुरा जा पहुँचो और वहाँ जाकर कोई अच्छा-सा वैद्य ढूँढ लो, क्योंकि हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अर्द्धजल (अतिम समय के गगास्नान) के योग्य होगये हो। भाव यह कि तुम्हें तो अपनी देह की सुध-बुध भी नहीं रही दीखती है, जैसे सन्निपात का रोगी अपने अन्तिम समय में जो मुँह में आये बड़बड़ाने लगता है वैसे ही तुम भी निर्गुण ब्रह्म की उपासना की उल्टी-सीधी बाते कर रहे हो। इस से ज्ञान होता है कि तुम्हें ऐसा भयंकर रोग हो गया है, उसका इलाज मथुरा जाकर श्रीकृष्ण से अभी करवा लो।

मीरावाई

परिचय

जन्म संवत् १५५५ मृत्यु संवत् १६२०

मीराबाई का जन्म कुडकी गाँव (जोधपुर राज्य) में सं० १५५५ में हुआ था। "एक बार उनके घर कोई साधु आकर ठहरा और उसके पास गिरिधर की सुन्दर मूर्ति को देख मीराबाई उसकी ओर आकृष्ट हो गईं और उसे लेने के लिए मचलने लगीं। साधु ने उस समय वह मूर्ति उन्हें न दी परन्तु पीछे उसे यह स्वप्न आया—'मूर्ति को मीरा के हाथ में सौंपने में ही तुम्हारा कल्याण है' और उसने वापिस लौट कर मीरा को वह मूर्ति सौंप दी। मीरा माता से एक बार यह मज़ाक में पूछ बैठीं कि मेरा वर कौन है? तो माता ने उत्तर में हँसकर उक्त मूर्ति की ओर संकेत किया और मीरा को तभी से 'श्री गिरिधर नागर' से लगन हो गई।"—ऐसी दंत-कथा प्रसिद्ध है।

वे भगवद्भक्ति में सदा निरत रहा करतीं और साधु-संतों के पहुँचने पर, लोकलज्जा का परित्याग कर वे उनका आदर-सत्कार बड़ी भक्ति से करतीं। भगवद्दर्शन के समय वे बहुधा बाहर के मन्दिरों में चली जातीं और प्रेमावेश में आकर पैरों में घुँघरू बाँध, हाथों में करताल बजा-बजा कर भगवान् के सामने गाने और नाचने लगतीं। ये बातें घर वालों को पसन्द न थीं, अतः घर वालों से दुःखी होकर इन्होंने घर छोड़ दिया और ब्रज-धाम की शरण ली।

कहा जाता है कि इन्होंने महाकवि तुलसीदास से अपने दुःखों के निवारण के बारे में उपाय पूछा था, जिसके उत्तर में तुलसीदास जी ने लिखा—

जाके प्रिय न राम वैदेही।
तजिय कोटि गरल सम ताही जद्यपि परम सनेही ॥
(विनयपत्रिका)

मीरा की भक्ति 'मधुर रस की उपासना' है जिसमें भक्त परमेश्वर को अपने पति या सर्वस्व रूप में देखता है। नारी होने के कारण उनकी साधना में जैसी अनन्यता या आत्मसमर्पण है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इनके पदों में विरह का अपना महत्त्व है। यद्यपि मीरा ने—

सूली ऊपर सेज हमारी, सोवण किस विध होय।
गगन मडल पै सेज पिया की, किस विध मिलना होय ॥

जैसे प्रतीकों को कविता में रखा है, फिर भी उनकी कविता में रहस्यवाद की झलक नहीं है। मीराबाई के जीवन, आदर्श व काव्य सभी सदा स्वच्छन्द रहे और इनके काव्य में एक निरालापन है। इनकी मृत्यु १६२० में बतलाई जाती है।

पद

सार और आलोचना

आपकी कविताओं मे साँवरी मूर्ति पर आध्यात्मिक तथा शारीरिक प्रेम और भक्ति की झलक मिलती है। लोक-लाज को खोकर कृष्ण को अपना पति मान लिया है। यह रात दिन कृष्ण के साथ खेलने में सुख का अनुभव करती हैं। अपने-आपको कृष्ण के अर्पण कर दिया है। कृष्ण का क्षण-भर का वियोग भी इनके लिए असह्य है।

आपकी कविता मे भक्ति की वास्तविक परिभाषा के चिह्न मिलते हैं। प्रेमिका प्रत्येक कष्ट सह सकती है, परन्तु प्रेमी का वियोग उसके लिए असह्य है। प्रेमिका प्रेमी के दोषों पर ध्यान न देकर उसके गुणों पर सदा मुग्ध रहकर प्रेमी में लीन होना चाहती है। कवयित्री ने अनुभूति द्वारा इस भाव को कविता में स्पष्ट रूप से दिखला दिया है।

बसो मोरे नैनन मे नन्दलाल ॥ टेक ॥

मोहनी मूरती साँवरी सूरति, नैणा बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजन्ती माल।
छुद्रघंटिका कटि-तट सोभित नूपुर सबद रसाल।
'मीराँ' प्रभु संतन सुखदाई, भक्तबछल गोपाल ॥१॥

शब्दार्थ—नैनन में=आँखों में। मोहनी मूरती=मन को मोहित कर देने वाला स्वरूप। बिसाल=बड़े-बड़े। अधर=ओठ। सुधारस=अमृत। राजति=शोभित होता है। उर=हृदय। छुद्रघंटिका=घुँघरू, करधनी। कटितट=कमर। नूपुर=झाँझा, पायल। रसाल=सुन्दर। भक्तबछल=भक्तवत्सल, भक्तों के प्रिय। गोपाल=गौओं के पालक।

भावार्थ—मीरा कहती है कि वह नन्दलाल मेरी आँखों में बस जाय। उसका स्वरूप अत्यन्त मनमोहक है और बादल के समान श्याम है। नेत्र अत्यन्त विशाल–बड़े-बड़े हैं। उसके अमृत रस से भरे हुए ओठों पर वंशी सुशोभित हो रही है और हृदय पर वैजयन्ती माला शोभा दे रही है। कमर में करधनी या तगाड़ी की तथा पावों में पायलों की मधुर ध्वनि हो रही है। मीरा कहती है कि वे मेरे प्रभु संतों को सुख देने वाले तथा भक्तों के वत्सल और गौओं के पालक हैं।

हरि मोरे जीवन प्राण अधार ॥ टेक ॥
और आसिरो नाहिं तुम बिन, तीनूँ लोक मँझार।
आप बिना मोहि कछु न सुहावै, निरख्यौ सब संसार।
'मीराँ' कहै मैं दास रावरी, दीज्यो मति बिसार ॥२॥

शब्दार्थ—आधार = सहारा। आसिरो = आश्रय, सहारा। मँझार = मध्य में। निरख्यौ = देख लिया। रावरी = आपकी। बिसार = भूलना।

भावार्थ—भगवान् ही मेरे जीवन और प्राणों का आधार हैं। हे भगवन्, आपके बिना मेरा तीनों लोकों में और कोई सहारा नहीं है। मैंने सारा संसार देख लिया पर आपके बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। मीरा कहती है कि मैं आपकी दासी हूँ। हे भगवन्, आप मुझे मत भुला देना।

श्री गिरधर आगे नाचूँगी ॥ टेक ॥
नाचि नाचि पिव रसिक रिझाऊँ, प्रेमी जन कूँ नाचूँगी।
प्रेम गीत का बाँधि घूँघरू सुरत की कछनी काछूँगी।
लोक-लाज कुल की मरजादा, या मे एक न राखूँगी।
पिव के पलँगा जा पौढूँगी, 'मीराँ' हरि रंग राचूँगी ॥३॥

शब्दार्थ—पिव = प्रिय। रिझाऊँ = प्रसन्न करूँ। सुरत = ईश्वर का ध्यान। मरजादा = मर्यादा। पौढूँगी = सोऊँगी।

भावार्थ—मीरा कहती है कि मैं भगवान् श्रीकृष्ण के आगे नाचूँगी। मैं नाच-नाच कर अपने रसिक प्रियतम श्रीकृष्ण को प्रसन्न करूँगी और प्रेमी-जनों के आगे प्रार्थना करूँगी। प्रेम के गीत के घुँघरू बाँध कर भगवान् के ध्यान की कछनी पहन लूँगी। मैं लोक-लाज और कुल की मर्यादा में से एक को भी नहीं रहने दूँगी। अपने प्रियतम प्रभु के पलग पर जा सोऊँगी, और भगवान् के रंग में रँग जाऊँगी। भाव यह है कि जो लोक-लाज प्रभु-प्रेम में बाधक होती है, मैं उसकी कुछ पर्वाह नहीं करूँगी।

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई ॥ टेक ॥
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।
छाँडि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई।
संतन ढिग बैठि बैठि, लोक-लाज खोई।
अँसुवन जल सींचि सींचि, प्रेम-बेलि बोई।
अब तो बेल फैल गई, आणंद फल होई।
भगत देखि राजी हुई, जगत देखि रोई।
दासी 'मीरां' लाल गिरधर, तारो अब मोहीं ॥४॥

शब्दार्थ—कुलकानि=कुल की लाज मर्यादा। ढिग=पास। आणँद=आनन्द, राजी, प्रसन्न। अँसुवन=आँसू।

भावार्थ—मीरा कहती है कि मेरा तो गिरिधर गोपाल, जिनके सिर पर मोर मुकुट सोभित होता है, वही एक मात्र पति है और दूसरा कोई नहीं है। मैंने सन्तों के पास बैठ-बैठ कर कुल की मर्यादा और लोक-लाज सब कुछ छोड़ दी है। मेरा कोई क्या कर लेगा। मैंने आँसुओं के जल से सींच-सींच कर प्रभु-प्रेम की बेल बोई है। अब वह बेल खूब फैल गई है और उसमें आनन्दरूपी फल लगने लगे हैं। मैं भक्तों को देख कर तो प्रसन्न होती हूँ और संसारी जीवों को देख कर रो पड़ती हूँ—बहुत दुखी

होती हूँ। हे गिरिधर लाल, आपकी दासी मीरा प्रार्थना करती है कि अब मेरा उद्धार कर दीजिए।

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ ॥ टेक ॥
गिरधर म्हाँरो साँचो प्रीतम, देखत रूप रुझाऊँ।
रैण पडे तब ही घर आऊँ, भोर भये उठि जाऊँ।
रैण दिना वाके संग खेलूँ, ज्यूँ त्यूँ वाहि रिझाऊँ।
जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उणकी प्रीति पुराणी, उण बिन पल न रहाऊँ।
जहाँ बैठावे तितहीं बैठूँ, बेचे तो बिक जाऊँ।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर, वार वार बलि जाऊँ ॥५॥

शब्दार्थ—म्हारो = मेरा। रुझाऊँ = प्रसन्न करूँ। रैण = रात्रि। भोर = प्रात काल।

भावार्थ—मीरा कहती है कि मैं तो श्रीकृष्ण के घर जाऊँगी। श्रीकृष्ण ही मेरे सच्चे प्रियतम है। मैं उनके रूप को देख कर तन्मय हो जाती हूँ। रात्रि होते ही मैं उनके घर जाती हूँ और प्रात काल होते ही चली आती हूँ। रात दिन मैं उनके साथ खेलती हूँ और जिस किसी भी प्रकार मै उन्ही को प्रसन्न करती हूँ। वे जो पहनाते हैं मैं वही पहनती हूँ और जो देते हैं खाती हूँ। मेरा और उनका पुराना प्रेम है, मैं उनके बिना पल भर भी नही रह सकती। वे जहाँ बैठाते हैं वही बैठती हूँ और यदि बेच भी दे, तो बिक जाने को भी तैयार हूँ। मीरा अपने स्वामी गिरिधर नागर पर वार-बार बलिहारी जाती है।

माई री मैं तो लियो गोविन्दो मोल । टेक ॥
कोई कहै छानै कोई कहै चौडे, लियो री बजंता ढोल।
कोई कहै मुँहघो, कोई कहै सुँहघो, लियो री तराजू तोल।
कोई कहै कारो, कोई कहै गोरो, लियो री अमोलक मोल।

याही कूँ सब लोग जाणत हैं, लियो री आँखी खोल।
'मीराँ' कूँ प्रभु दरसण दीजौ, पूरब जन्म को कौल ॥६॥

शब्दार्थ—गोयिन्दो = भगवान् श्रीकृष्ण। छाने = चुरके, छिप कर। मुहँघो = महँगा। सुहँघो = सस्ता। अमोलक = अमूल्य। कौल = प्रतिज्ञा।

भावार्थ—मीरा कहती है कि मैंने श्रीकृष्ण को मोल ले लिया है। कोई कहता है कि मैंने उसे छिप कर मोल लिया है तो कोई कहता है कि सबके सामने लिया है, पर मैंने तो उसे ढोल बजा कर—सारे संसार में ढिंढोरा पीट कर लिया है। कोई कहता है कि यह सौदा महँगा है और कोई कहता है कि सौदा सस्ता रहा, पर मैंने तो पूरी तरह काटे पर तोल कर लिया है। कोई कहता है कि वह काला है और कोई कहता है कि वह गोरा है, पर मैं तो यह जानती हूँ कि मैंने तो एक अमूल्य पदार्थ प्राप्त कर लिया है। इसको सारा संसार जानता है और मैंने अच्छी तरह आँखें खोल कर—खूब सोच-समझ कर उसे मोल लिया है। हे प्रभु, अब मुझे आप अवश्य दर्शन दे दीजिए क्योंकि आपका और मेरा पूर्वजन्म का वायदा है कि आप मुझे अवश्य दर्शन देंगे।

मैं गिरधर रंगराती, सैयाँ मैं० ॥ टेक ॥

पँच रंग चोला पहिर सखी मैं, झिरमिट खेलन जाती।
ओह झिरमिट माँ मिल्यो साँवरो, खोल मिली तन गाती।
जिन का पिया परदेस बसत है, वे नहिं हैं रँगराती।
मेरा पिया मेरे हिये बसत है, ना कहुँ आती जाती।
चन्दा जायगा सूरिज जायगा, जायगा धरणि अकासी।
पवन पाणी दोनूँ जायगे, अटल रहै अविनासी।
सुरत निरत का दिवला सँजोले, मनसा की करले बाती।
प्रेम हटी का तेल मँगाले, जगे रहा दिन ते राती।
सतगुर मिलया सांसा भाग्या, सैन बताई साँची।
ना घर तेरा, ना घर मेरा, गावै 'मीराँ' दासी ॥७॥

शब्दार्थ—रंगराती=रंग में मस्त। साँवरो=श्याम, श्रीकृष्ण। सैया=सखियो। पँचरंग=पाँच या विविध रंगों का बना। चोला=ढीला-ढाला फकीरों जैसा कुर्ता। झिरमिट=झाड़ियों का समूह। ओह माँ=उसी में, उसी अवसर पर। गाती=शरीर व गले से बँधी हुई चादर। हिये=हृदय में ही। धरणी=पृथ्वी। अकासी=आकाश। पवन=हवा। अविनासी=कभी नष्ट न होने वाला ईश्वर। सुरत=परमात्मा का स्मरण, ध्यान। निरत=विषय-वासनाओं से विरक्ति। दिवला=दीया। सँजोलो=जला लो। मनसा=मन। सासा=संशय, संदेह। भाग्या=भाग गये। सैन=संकेत, रहस्य।

भावार्थ—हे सखियो, मैं तो प्रियतम गिरिधर के रंग में तन्मय हो रही हूँ। हे सखियो, मैं पचरंगा चोला पहन कर झुरमुट-झाड़ियो के समूह या कुञ्जों में खेलने जाती हूँ। उन झुरमुटों में मुझे साँवले श्रीकृष्ण मिल गये। मैं उन्हें अपने शरीर की गाती खोलकर मिली—अर्थात् उन्हीं में तन्मय हो गई। जिनके प्रियतम परदेश में रहते हैं, वे वास्तव में प्रिय के रंग में रँगी हुई नहीं हैं। मेरा तो प्रियतम मेरे हृदय में रहता है। इसलिए मैं उससे दूर कहीं नहीं आती जाती। चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी, आकाश, जल, वायु आदि सभी नष्ट हो जायेंगे। पर वह अविनाशी परम प्रियतम प्रभु सदा बना रहेगा। हे मन! तू भगवान् का स्मरण ध्यान और विषय-वासनाओं से विरक्ति का दिया जला ले और मन की बत्ती जला ले। हरि के प्रेम का उसमें तेल डाल ले ताकि वह दिन-रात जलता रहे। मुझे जब सद्गुरु मिल गये तो मेरे सब संदेह दूर होगये, उन्होंने मुझे सच्चा रहस्य बता दिया। अपने प्रभु की दासी मीरा यह कहती है कि यह घर न तेरा न मेरा है, संसार में सदा कोई नहीं बना रहेगा, सबको एक दिन इसे छोड़ना ही पड़ेगा।

कोई कछू कहै मन लागा ॥ टेक ॥
ऐसी प्रीति लगी मनमोहन ज्यूं सोना में सोहागा।
जनम जनम का सोया मनुवाँ, सतगुर सब्द सुण लागा।
मात पिता सुत कुटुम कबीला, टूट गयो ज्यों तागा।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर, भाग हमारा जागा ॥८॥

शब्दार्थ—कछु = कुछ भी। मनुआ = मन। कुटुम = परिवार।

भावार्थ—मीरा कहती है कि कोई चाहे कुछ भी कहता रहे, मेरा तो मन अपने प्रिय में लग गया है। मेरा मनमोहन श्रीकृष्ण से ऐसा प्रेम हो गया और मैं उसके साथ इस प्रकार एकाकार होगई जैसे सोने में सोहागे का मेल हो जाता है। मेरा मन जन्म-जन्मान्तरों से सोया हुआ था, अज्ञान में पड़ा हुआ था। सद्गुरु के शब्दों को सुनकर उनके ज्ञानोपदेश से वह मेरा मन जग गया है। उसे ज्ञान प्राप्त हो गया है। वास्तविक ज्ञान के प्राप्त हो जाने पर अब माता-पिता, कुटुम्ब और परिवार वालों से मेरा सब प्रकार का नाता टूट गया है। मीरा कहती है कि मेरे तो गिरिधर गोपाल ही स्वामी हैं। अब मेरे भाग्य जाग गये हैं।

तेरो कोई नहिं रोकणहार, मगन होई मीराँ चली ॥ टेक ॥
लाज सरम कुल की मरजादा, सिर तैं दूरि करी।
मान अपमान दोऊ धर पटके, निकसी हूँ ग्यान गली।
ऊंची अटरिया लाल किंवड़िया, निरगुण सेज बिछी।
पंचरंगी झालर सुभ सोहै, फूलन फूल कली।
बाजूबन्द कडूला सोहै, सिन्दूर माँग भरी।
सुमिरन थाल हाथ में लीन्हों, सोभा अधक खरी।
सेज सुखमणा 'मीराँ' सोहै, सुभ है आज घरी।
तुम जाओ राणा घर अपणे, मेरी तेरी नाहिं सरी ॥६॥

शब्दार्थ—रोकणहार = रोकने वाला। मगन = तल्लीन (मस्त)।

धर पटके=फेंक दिये। निकसी=निकल गई। अटरिया=अटारी। किंवड़िया=किवाड़। बाजूबन्द=बाँह पर बाधा जाने वाला भूषण। सुखमणा=सुषुम्ना नाम की नाड़ी। सरी=बनी।

भावार्थ—मीरा तो प्रभु के प्रेम में मस्त होकर चल पड़ी, अब मुझे कोई नहीं रोक सकता। लाज, शर्म और कुल की मर्यादा को तो पहले ही सिर से उतार फेंका है। मान-अपमान दोनों को छोड़ दिया गया है। ज्ञान की गली मे निकल आई हूँ। ऊँची अटारी पर लाज के किवाड़ लगाकर उस निर्गुण परम प्रियतम की सेज बिछी हुई है। पचरङ्गी झालर शोभित हो रही है और फूलों की कलियाँ खिल रही हैं। अब मैंने बाजूबन्द और कड़े पहन लिये हैं और माँग में सिंदूर भर लिया है। मैंने भगवान् का स्मरण रूपी थाल हाथ में पकड़ लिया है जिससे मेरी शोभा बहुत अधिक हो गई है। मीरा सुषुम्ना नाड़ी की सेज पर सो रही है अर्थात् समाधि में लीन है। अत. आज बड़ी शुभ घड़ी है। हे राणा, तुम अपने घर जाओ, तुम्हारी और मेरी नहीं बनपाई।

पग घुँघरु बाँध मीरा नाची, रे ॥ टेक ॥
मैं तो मेरे नारायण की, आपहिं हो गई दासी, रे।
लोग कहै मीरा भई बावरी, न्यात कहैं कुलनासी, रे।
विष का प्याला राणाजी भेज्या, पीवत मीराँ हाँसी, रे।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर, सहज मिले अविनासी, रे ॥१०॥

शब्दार्थ—बावरी=पगली। न्यात=जाति वाले। कुलनासी=कुल का नाश करने वाली। विष=जहर। सहज=सरलता से।

भावार्थ—मीरा अपने पाँवों में घुँघरू बाँधकर नाच रही है। वह कहती है कि मैं तो अपने प्रभु की दासी बन गई हूँ। लोग कहते हैं--मीरा पगली हो गई, और जाति वाले कहते हैं कि इसने तो अपने कुल को नष्ट कर दिया। (मीरा कहती है कि) राणाजी ने मुझे मारने के लिए

ज़हर का प्याला भेजा है पर मैं तो उसे हँसते-हँसते पी गई, मुझे तो वे मेरे अविनाशी परम प्रियतम गिरिधर लाल अनायास ही मिल गये।

'मीराँ' मगन भई हरि के गुण गाय ॥ टेक ॥
साँप पिटारा राणा भेज्यो, मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो गई अमर अँचाय।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीराँ सुलाय।
'मीराँ' के प्रभु सदा सहाई, राखे विघन हटाय।
भजन भाव मे मस्त डोलती, गिरधर पे वलि जाय॥११॥

शब्दार्थ—अँचाय = पीकर।

भावार्थ—मीरा तो हरि के गुण गाकर मस्त हो गई (मीरा कहती है कि) राणा जी ने मुझे मारने के लिए पिटारी में साँप रख कर भेजा, और कहा कि इसे मीरा के हाथ में जाकर दे देना। मैं जब नहा धोकर उसे देखने लगी तो मुझे साँप के स्थान पर शालिग्रामजी मिले। राणा ने जहर का प्याला भेजा, भगवान् ने उसे अमृत बना दिया। मै नहा धोकर जब उसे पीने लगी तो उसे पीकर अमर होगई। राणा ने मेरे लिए शूलों की शैया भेजी और कहा कि मीरा को इस पर सुला देना। मीरा के तो भगवान् सदा सहायक हैं। उन्होंने मेरे विघ्नों को हटा दिया। मीरा तो भजन-भाव में मस्त होकर घूमती है और गिरिधर लाल पर बलि हारी जाती है।

मैं जाण्यों नहीं प्रभु को, मिलण कैसे होइ री ॥ टेक ॥
आये मेरे सजना फिर गये अँगना, मैं अभागण रही सोइ री।
फाडूँगी चीर, करूँ गल कथा, रहूँगी बैरागन होइ री।
चुरिया फोरूँ माँग बखेरूँ, कजरा मैं डारूँ धोइ री।

निसबासर मोहि विरह सतावै, कल न परत मोइ री।
'मीराँ' के प्रभु हरि अविनासी, मिलि बिछुरो मति कोइ री ॥१२॥

शब्दार्थ—सजना = प्रियतम, प्रभु। अँगना = आँगन। चीर = वस्त्र। कथा = गुदड़ी। निसबासर = रात-दिन। कल = चैन।

भावार्थ—मीरा कहती है कि मुझे अभी तक यह मालूम नहीं कि प्रभु से मिलना कैसे होता है। मेरे साजन मेरे घर के आँगन में आकर लौट गये। पर मैं अभागिन सोई पड़ी रह गई। अब मैं उनके विरह में अपने वस्त्र फाड़ डालूँगी। गले में गुदड़ी पहन लूँगी और वैरागिन हो रहूँगी। चूड़ियों को फोड़ डालूँगी, माँग की रोली को बिखेर दूँगी। काजल को धो डालूँगी। रात-दिन मुझे अपने प्रियतम का विरह सताता है और एक पलभर भी चैन नहीं पड़ती। मीरा कहती है कि उस अविनाशी प्रभु से मिलकर कोई भी न बिछुड़े।

जोगी मत जा, मत जा, पाँई परूँ मैं तेरी चेरी हौं ॥ टेक ॥
प्रेम भगति को पैंड़ो ही न्यारो, हमकूँ गैल बता जा।
अगर चन्दण की चिता बणाऊँ, अपने हाथ जला जा।
जल बल भई भस्म की ढेरी, अपणे अंग लगा जा।
'मीराँ' कहै प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिला जा ॥१३॥

शब्दार्थ—पैंडो = मार्ग। गैल = मार्ग। भस्म = राख।

भावार्थ—मीरा अपने प्रियतम को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे मेरे योगी! तू मुझ से बिछुड़ कर मत जा, मत जा। मैं तेरे पैरों पड़ती हूँ, मैं तेरी दासी हूँ। प्रेम और भक्ति का मार्ग निराला ही है। तू मुझे वह निराला मार्ग बता जा। मैं तेरे विरह में अपने आपको जला देने के लिए अगर और चन्दन की चिता बनाती हूँ। तू अपने हाथों से उसे जला जा। मैं जल-बल कर राख की ढेरी बन गई, तू उस राख को ही अपने अङ्गों

पर लगा ले। मीरा कहती है कि हे गिरिधर नागर प्रभु! तू मेरी आत्मा की ज्योति को अपनी ज्योति में मिला दे।

ऐसी लगन लगाइ कहाँ तू जासी ॥ टेक ॥
तुम देखे बिन कलि न परति है, तलफि तलफि जिव जासी।
तेरे खातिर जोगण हूँगी, करवत लूँगी कासी।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल की दासी ॥१४॥

शब्दार्थ—जासी=जायगा। कलि=चैन। तलफि=तड़फ कर। जिव=प्राण। करवत=आरा। करवत लूँगी कासी=पुराने समय में मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा से लोग काशी में जाकर आरे से अपने शरीर को चिरवा कर मर जाते थे, इसको 'काशी में करवत लेना' कहते हैं।

भावार्थ—मीरा अपने प्रियतम को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे प्रियतम! मेरे हृदय में ऐसी लगन लगाकर अब तुम कहाँ जा रहे हो! तुम्हें देखे बिना मुझे चैन नहीं पड़ता। तुम्हारे बिना तड़प-तड़प कर मेरे प्राण निकल जायेंगे। मैं तुम्हारे लिए जोगिन बन जाऊँगी और काशी में जाकर करवत ले लूँगी अर्थात् आरे से अपने शरीर को चिरवा लूँगी। मीरा कहती है कि मैं तो अपने प्रभु गिरिधर नागर के चरण-कमलों की दासी हूँ।

देखो सहियाँ हरि मन काठो कियो ॥ टेक ॥
आवत कह गयो अजूँ न आयो, करि करि वचन गयो।
खान-पान सुध-बुध सब बिसरी, कैसे करि मैं जियो।
वचन तुम्हारे तुम ही बिसारे, मन मेरो हर लियो।
'मीरां' कहे प्रभु गिरधर नागर तुम बिन फटत हियो ॥१५॥

शब्दार्थ—सहियाँ=सखियाँ। काठो कियो=काठ के समान कठोर बना लिया। अजूँ=आज भी। बिसरी=भूल गई।

भावार्थ—हे सखियो, देखो भगवान ने अपना मन कैसा कठोर बना लिया। वे आने के लिए कह गये, बार-बार प्रतिज्ञा, कर गये पर अभी तक

आये नहीं। मैंने (उनके विरह में) खान-पान और यहाँ तक कि अपने शरीर की सुध-बुध भी भुला दी। अब भला मैं कैसे जीवित रह सकती हूँ। हे भगवन्, आपने पहले तो मेरा मन हर लिया और अब अपने वचनों को—वायदों को—स्वय ही भूल गये। मीरा कहती है कि हे गिरिधर नागर प्रभु! अब आपके बिना मेरा हृदय फटता जा रहा है।

हरि तुम हरो जन की भीर ॥ टेक ॥
द्रोपता की लाज राखी, तुम तुरत बाढ्यौ चीर।
भक्त कारण रूप नरहरि, धर्यौ आप सरीर।
हिरणाकुश मारि लीन्हा, धर्यो नाहिन धीर।
बूडतौ गजराज राख्यौ, कियो बाहिर नीर।
दासी 'मीराँ' लाल गिरधर, चरण कँवल पै सीर ॥१६॥

शब्दार्थ—जन=भक्त। द्रोपता=द्रौपदी। चीर=वस्त्र। हिरणाकुश=हिरण्यकश्यप राक्षस। नाहिन=नहीं। बूढ़तौ=डूबता। गजराज=ऐरावत हाथी। नीर=पानी। सीर=शान्ति।

भावार्थ—हे भगवन्! तुम अपनी इस भक्त मीरा के दु:खों को दूर कर दो। आपने द्रौपदी के वस्त्रों को बढाकर उसकी लाज बचा ली थी। आपने अपने भक्त प्रह्लाद की रक्षा करने के लिए नरसिंह रूप धारण किया था। हिरण्यकश्यप को तत्काल मार डाला, इस कार्य में आपने कुछ भी देर नहीं लगाई। डूबते हुए हाथी को बचाकर उसे पानी से बाहर कर दिया। मीरा कहती है कि मैं तो गिरिधर लाल की दासी हूँ। मुझे तो उनके चरण-कमलों में ही शान्ति प्राप्त हो सकती है।

रमइया बिनि रह्योइ न जाइ ॥ टेक ॥
खान पान मोहिं फीको सो लागै, नैणा रहे मुरझाइ।
बार बार मैं अरज करत हूँ, रैण गई दिन जाइ।
'मीराँ' कहे हरि तुम मिलियाँ बिनि, तरस तरस तन जाइ ॥१७॥

शब्दार्थ—रमइया=राम। नैणा=नेत्र। रैण=रात्रि।

भावार्थ—मैं तो भगवान् के बिना रह नहीं सकती। उनके बिना मुझे खाना-पीना सब कुछ फीका लगता है। आँखें भी उदास या मुर्झाई-सी रहती हैं। मैं बार-बार प्रार्थना करती हूँ। मेरे इसी प्रकार दिन-रात बीतते जा रहे हैं। हे भगवन्! तुम्हारे मिले बिना मेरे प्राण तुम्हारे दर्शनों के लिए तरसते हुए निकल रहे हैं।

> हे री मैं तो दरद दिवाणी होइ, दरद न जाणै मेरो कोई ॥टेक॥
> घाइल की गति घाइल जाणै, कि जिण लाई होइ।
> जौहरी की गति जौहरी जाणै, कि जिन जौहर होइ।
> सूलि ऊपरि सेझ हमारी, सोवणा किस विध होइ।
> गगन मँडल पै सेझ पिया की, किस विध मिलणा होइ।
> दरद की मारी बन बन डोलूँ, बैद मिल्या नहिं कोइ।
> 'मीराँ' की प्रभु पीर मिटेगी, जब बैद साँवलिया होइ ॥१८॥

शब्दार्थ—दिवाणी=पागल। लाई होई=लगी हो। किस विध=किस प्रकार। गगन मँडल=मस्तिष्क में ब्रह्मरन्ध्र नामक स्थान है जहाँ पर योगी लोग ब्रह्म का ध्यान लगाते हैं। समाधि अवस्था में अपने प्राणों को ब्रह्मरन्ध्र में लीन कर लेते हैं।

भावार्थ—हे सखियो, मैं तो अपने प्रभु के वियोग के दुःख से पागल हो रही हूँ, पर मेरे उस दुःख को कोई भी नहीं जानता। बात तो यह है कि घायल की दशा को घायल ही जानता है या वह जानता है जिसे उसकी लगन लग गई हो। इसी प्रकार जौहरी के महत्त्व को जौहरी ही समझ सकता है या वह समझ सकता है जिसमें जौहर-परीक्षण की शक्ति हो। मीरा कहती है कि मेरी तो शय्या [illegible] [illegible]

अर्थात् ब्रह्मरन्ध्र में है। वह ब्रह्मरन्ध्र में रहता है तो मैं उसे किस प्रकार मिल सकती हूँ। विरह-वेदना से व्याकुल होकर मैं वन-वन में भटकती फिरती हूँ, पर मेरी उस पीड़ा को हटाने वाला कोई वैद्य नहीं मिला। मेरी पीड़ा तो तभी मिट सकती है जब कि श्रीकृष्ण रूपी वैद्य मुझे मिल जाये।

पतियाँ मैं कैसे लिखूँ, लिखही न जाइ ॥ टेक ॥
कलम धरत मेरो कर कंपत, हिरदौ रहो घर्राई।
बात कहूँ मोहिं बात न आवै, नैन रहै झर्राई।
किस विध चरण कमल मैं गहिहौं, सबहि अग थर्राई।
'मीराँ' कहै प्रभु गिरधर नागर, सबहिं दुख बिसराई ॥१६॥

शब्दार्थ—पतियाँ=पत्र। कर=हाथ। घर्राई=धड़कने लगता है। झर्राई=झड़ी लगी हुई है। गहिहौं=पकड़ूँगी। थर्राई=थर-थर काँपते हैं।

भावार्थ—मीरा कहती है कि मैं अपने प्रियतम को पत्र कैसे लिखूँ लिखा ही नहीं जाता, क्योंकि कलम पकड़ते हुए मेरा हाथ काँपने लगता है और हृदय भर आता है या हृदय धड़कने लगता है। कोई बात करते हुए मेरे मुँह से कोई शब्द नहीं निकलता और आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी रहती है। (मैं यह सोचती हूँ कि जब प्रभु मिल जायेंगे तो) मैं उनके चरण-कमलों को कैसे पकड़ पाऊँगी, क्योंकि मेरे तो सभी अग थर-थर काँप रहे हैं। मीरा कहती है कि गिरिधर नागर प्रभु सब दु.खों को दूर कर देंगे।

रे पपइया प्यारे कब को वैर चितार्यो ॥ टेक ॥
मैं सूती छी अपने भवन मे, पिय पिय करत पुकार्यो।
दाध्या ऊपर लूण लगायौ, हिवडो करवत सार्यो।
उठि बैठो वा वृच्छ की डाली. बोल बोल कंठ सार्यो।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर, हरिचरणाँ चित धार्यौ ॥२०॥

शब्दार्थ—चितारयो=याद किया। सूती=सोई हुई। दाघ्या=जला हुआ। करवत=आरी। सारयो=चलाई। भवन=महल, घर।

भावार्थ—वर्षा ऋतु में पपीहे की ध्वनि को सुनकर प्रिय-विरह के ताप से दुखी मीरा का दुःख और भी बढ जाता है, अत वह उसे उलाहने देती हुई कहती है कि तूने न जाने कौन-सा मुझसे अपना वैर निकाला है। मैं अपने घर में सो रही थी कि तूने 'पी-पी' की पुकार लगानी शुरू कर दी। उससे मुझे अपने प्रिय का स्मरण और भी विशेष रूप से हो आया और मेरा दु ख बढ गया। इस प्रकार तूने जले पर नमक छिड़क दिया अथवा मेरे शरीर पर मानो आरा ही चला दिया। तू इस वृक्ष की शाखा से उड़कर दूर चला जा, क्यों बोल-बोलकर गला बैठा रहा है। मीरा ने तो अपने प्रभु गिरिधर नागर श्रीकृष्ण के चरणों में चित्त लगा लिया है।

प्यारे दरसण दीज्यो आप, तुम विन रह्यो न जाय॥ टेक॥
जल विन कँवल चंद विन रजनी, ऐसे तुम देख्यों विन सजनी।
व्याकुल व्याकुल फिरूँ रैण दिन, विरह कलेजो खाय।
दिवस न भूख नींद नहिं रैणा, मुखसूँ कथत न आवै बैणा।
कहा कहूँ कुछ कहत न आवै, मिल कर तपत बुझाय।
क्यूँ तरसावो अन्तरजामी, आय मिलो किरपा कर स्वामी।
'मीरां' दासी जनम जनम की, परी तुम्हारे पाय॥२१॥

शब्दार्थ—रजनी=रात्रि। रैन=रात्रि। दिवस=दिन। बैणा=वचन। अन्तरजामी=अन्तर्यामी, हृदय में रहने वाला।

भावार्थ—मीरा अपने प्रभु को सम्बोधित करती हुई कहती है कि हे प्रभु! आप मुझे आकर दर्शन दे दीजिए, मैं आपके बिना रह नहीं सकती. जिस प्रकार पानी के बिना कमल की और रात्रि के बिना चन्द्रमा की दुर्दशा हो जाती है वैसे ही हे प्रियतम! तुम्हें देखे बिना मेरी भी दशा

बुरी दशा हो रही है। तुम्हारे बिना मैं दिन-रात व्याकुल-सी हुई इधर-उधर भटकती रहती हूँ और विरह का दुःख मेरे हृदय को खाये जा रहा है। न दिन में भूख ही लगती है और न रात में नींद ही आती है। यहाँ तक कि मुख से शब्द भी नहीं निकलते। मैं अपनी दु ख की अवस्था का कहाँ तक वर्णन करूँ, कुछ कह नहीं सकती। हे भगवन्, अब तो आप ही मिलकर मेरे ताप को शान्त कर दीजिए। हे अन्तर्यामी स्वामी! आप तो मेरे हृदय की दशा को जानते हैं फिर भी क्यों तरसा रहे हैं। अब तो कृपा करके दर्शन दे ही दीजिए। मीरा आपकी जन्म-जन्मान्तरों की दासी है। वह आपके चरणों में गिरती और यही प्रार्थना करती है।

कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत ॥ टेक ॥
आसण मार अडिग होय बैठा, याही भजन की रीत।
मैं तो जाणूँ जोगी संग चलेगा, छोड़ गया अधबीच।
आत न दीसे जात न दीसे, जोगी किसका मीत।
'मीराँ' कहे प्रभु गिरधर नागर, चरणन आवे चीत ॥२२॥

शब्दार्थ—रमता राम = किसी एक स्थान पर सीमित न रहने वाले, सर्वत्र रमण करने वाले। अतीत = सब से परे। अडिग = स्थिर। मीत = मित्र। चीत = चित्त।

भावार्थ—हे मन, तू उस सब से परे रहने वाले निर्लिप्त रमते राम का कब स्मरण करेगा। आसन लगा कर स्थिर होकर योगी समाधि में बैठ जाता है, वास्तव में भजन की यही रीति है। मैं तो यह समझती थी कि वह परम प्रियतम योगी सदा मेरे साथ ही चलेगा पर वह तो मुझे इस ससार रूपी मार्ग में अधबीच में ही छोड़ गया है। उस योगी का तो न आते पता लगता है और न जाते ही कुछ पता मिल पाता है। यह कोई जान ही नहीं सकता कि वह कब आया और कब चला गया। ऐसे योगी भला किसके मित्र हैं। मीरा कहती है कि मैंने तो अपने प्रभु गिरिधर

नागर के चरणों में चित्त लगा लिया है।

दरस बिन दूखन लागे नैन ॥ टेक ॥
जब ते तुम बिछुरे प्रभु मोरे, कबहुँ न पायो चैन।
सबद सुणत मेरी छतियाँ काँपै, मीठे मीठे बैन ॥
विरह कथा कासूँ कहूँ सजनी, वह नई करवत ऐन।
कल न परत पल हरि मग जोवत, भई छमासी रैण।
'मीराँ' के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटण सुख देण ॥२३॥

शब्दार्थ—दरस=दर्शन। कासूँ=किस से। करवत=आरी। ऐन=बिल्कुल। कल=चैन। मग=मार्ग। जोवत=देखते। मगजोवत=प्रतीक्षा करते हैं। छमासी=छः महीने की।

भावार्थ—हे प्रभु, आपके दर्शनों के बिना तो (रोते २) आँखें भी दुखने लग पड़ी। हे मेरे प्रभु! जबसे मैं तुमसे बिछुड़ी हूँ मुझे कभी चैन नहीं पड़ी। आपके मधुर वचनों का स्मरण आने से मेरा हृदय धड़कने लगता है। हे सखी, मैं अपने विरह-वेदना की कथा किस से कहूँ, क्योंकि यह विरह की पीड़ा तो सचमुच एक नई आरी ही है। भगवान् की प्रतीक्षा करते हुए मुझे चैन नहीं पड़ती। मेरे लिए तो एक रात भी छः महीने लम्बी हो गई। मीरा कहती है कि हे मेरे दुःख मिटाने वाले और सुख देने वाले प्रियतम! आप मुझे कब मिलेंगे?

तूँ नागर नन्दकुमार, तोसों लाग्यो नेहरा ॥ टेक ॥
मुरली तेरी मन हर्यौ, बिसर्यौ गृह ब्यौहार।
जब तें स्रवननि धुनि परि, गृह अँगना न सुहाइ।
पारधि ज्यूँ चूकै नहीं, मृगी बेधि दई आइ।
पानी पीर न जाणई, मीन तलफि मरि जाइ।
रसिक मधुप के मरम को, नहिं समुझत कँवल सुभाइ।

दीपक को जु दया नहीं, उड़ि-उड़ि मरत पतंग।
'मीराँ' प्रभु गिरधर मिले, (जैसे) पाणी मिल गयो रग ।।२४।।

शब्दार्थ—नेहरा=प्रेम । गृह=घर । व्यौहार=काम-काज । स्रवननि=कानों में । धुनि=शब्द । अँगना=आँगन । पारधि=शिकारी । मृगी=हिरणी । मीन=मछली । तलफि=तड़प कर । मधुप=भौंरा ।

भावार्थ—हे नागर नन्दकुमार ! मेरा तुमसे प्रेम हो गया है । तुम्हारी वंशी ने मेरा मन हर लिया है । इसलिए मेरे घर के काम-काज भी सब छूट गये हैं । जब से तुम्हारी धुन मेरे कानों में पड़ी है, मुझे घर और आँगन में कुछ भी अच्छा नहीं लगता । जिस प्रकार शिकारी अपने लक्ष्य से कभी नहीं चूकता और वह हिरणियों को वेध ही देता है वैसे ही तुम्हारा ध्यान मुझे पकड़ लेता है । मछली तो पानी के विरह में तड़प-तड़प कर मर जाती है, पर पानी उसकी पीड़ा को नहीं पहचान पाता । *कमल भी रसिक भौंरे के हृदय के भावों को स्वभाव से ही नहीं* समझ सकता । पतंगे उस दीपक पर गिर-गिरकर मरा करें पर उसे दया नहीं आती । मीरा कहती है कि मैं तो अपने प्रभु में वैसे ही मिल जाऊँगी जैसे पानी में रग मिल जाता है ।

म्हाँरो जनम मरन को साथी, थाँने नहिं विसरूँ दिन राती ।।टेक।।
तुम देख्या बिन कल न परत है, जानत मेरी छाती ।
ऊँची चढ़चढ़ पंथ निहारूँ रोय रोय अखियाँ राती ।
यो ससार सकल जग झूँठो, झूँठा कुलरा न्याती ।
दोउ कर जोड्याँ अरज करत हूँ, सुण लीज्यो मेरी बाती ।
यो मन मेरो बडो हरायो, ज्यूँ मदमातो हाथी ।
सतगुरु हस्त धर्यो सिर ऊपर, आँकुस दे समझाती ।
पल पल तेरा रूप निहारूँ, निरख निरख सुख पाती ।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर, हरिचरणाँ चित राती ।।२५।।

शब्दार्थ—म्हाँरो=मेरा। थाँने=तुम्हें या आपको। विसरूँ=भूलूँ। पंथ=मार्ग। निहारूँ=देखूँ। कुलरा=कुल वाले। न्याति=जाति वाले। हस्त=हाथ। राती=लीन, अनुरक्त, लगा हुआ।

भावार्थ—मीरा कहती है कि हे मेरे जन्म-मरण के साथी प्रभु! मैं आपको दिन-रात कभी भी नहीं भूल सकती। यह मेरा हृदय जानता है कि आपको देखे बिना मुझे कभी चैन नहीं पड़ता। मैं ऊपर चढ़-चढ़कर आपकी राह देखती हूँ। मेरा रोम-रोम आपके विरह में इतना दुखी हो गया है कि मेरी आँखें रो-रोकर लाल हो गई हैं। यह सारा संसार झूठा है। कुल और जाति वाले भी झूठे हैं। मैं दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूँ कि हे मेरे प्रभु, मेरी बात सुन लीजिए। मेरा यह मन मदमस्त हाथी के समान बिगड़ रहा है पर गुरुदेव ने अपना हाथ मेरे सिर पर रखा है इसलिए मैं इसे अंकुश मार-मारकर समझा लेती हूँ। मैं पल-पल में तेरा ही रूप देखती हूँ और देख-देखकर सुखी होती हूँ। मीरा कहती है कि मेरा चित्त तो हरि चरणों में ही लीन हो रहा है।

> कबहूँ मिलोगे मोहि आई, रे तू जोगिया॥ टेक॥
> तेरे कारण जोग लियो है, घरि-घरि अलख जगाई।
> दिवस न भूख रैण नहिं निंदरा, तुम बिन कछु न सुहाई।
> 'मीरां' के प्रभु हरि अविनासी, मिलि करि तपति बुझाई॥२६॥

शब्दार्थ—घरि-घरि=घर-घर। अलख जगाई=ईश्वर को खोजती फिरती हैं। दिवस=दिन। निंदरा=नींद। अविनासी=कभी नष्ट न होने वाले, नित्य।

भावार्थ—हे मेरे जोगी प्रियतम! अब आप मुझे कब आकर मिलेंगे। तुम्हारे लिए मैंने भी जोग ले लिया है और घर-घर अलख जगाती फिरती हूँ। मुझे तुम्हारे बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता यहाँ तक कि दिन में भूख और रात को नींद भी नहीं आती। मीरा कहती है कि उस

अविनाशी प्रभु से मिलकर ही मेरे विरह का ताप शान्त हो सकता है।

गोविन्द कबहुँ मिलै पिया मोरा ॥ टेक ॥
चरण कँवल कूँ हँसि हँसि देखूँ राखूँ नैणाँ नेरा ॥
निरखण कूँ मोहिं चाव घणेरो, कब देखूँ मुख तेरा ॥
व्याकुल प्राण धरत नहिं धीरज, मिलि हूँ मीत सवेरा।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर, ताप तपन बहु तेरा ॥२७॥

शब्दार्थ—नेरा = निकट। सवेरा = शीघ्र। मीत = मित्र। बहुतेरा = बहुत।

भावार्थ—वह मेरा प्रियतम गोविन्द न जाने कब मिलेगा। जब वह मुझे मिल जायेगा तो मैं उसके चरण-कमलों को हँस-हँसकर देखूँगी और सदा उसे अपनी आँखों के पास ही रखूँगी। मुझे तुम्हारे दर्शनों का बड़ा चाव है। मैं तुम्हारे मुख-कमल के कब दर्शन कर पाऊँगी। मेरे व्याकुल प्राण अब धीरज नहीं रखते हैं, मेरे प्रियतम! अब आप मुझे शीघ्र आ मिलिए, क्योंकि अब तक मैंने आपके विरह में बहुत-से सन्ताप सह लिये हैं।

रसखान

परिचय

१७ मृत्यु संवत् १६६०

रु कामरिया पर, राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
नवौं निधि को सुख, नंद की गाय चराय बिसारौं॥
'रसखान' कबौ इन आँखिन तैं, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूँ कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं॥

—की कामना करने वाले अनन्य कृष्णभक्त कवि रसखान दिल्ली के मुसलमान पठान सरदार थे। ये शाही खानदान से सम्बन्धित थे। आपका लौकिक प्रेम पहले आध्यात्मिकता में बदल गया। ये पीछे गोस्वामी विट्ठलदास जी के कृपापात्र शिष्य और भक्त बन गये। इनकी सम्पूर्ण कविता कृष्णपरक है।

भाषा अत्यन्त सरल, सरस और सादगी से भरी है, शब्दाडम्बर यहां नाममात्र को भी नहीं मिलता। इनके सवैयों में प्रेम अपनी पराकाष्ठा तक पहुँचा हुआ है और लौकिक प्रेम के पीछे आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यंजना है। इनके प्रेम-सम्बन्धी कवित्त-सवैयों को देख इनको 'रसखान' पुकारने लगे, इनका असली नाम तो लोग भूल ही गये। अन्य कवियों ने गीत लिखे हैं या दोहे, परन्तु इन्होंने कवित्त-सवैयों में ही अपनी रचना की है। इनकी रचना यद्यपि स्वल्प है परन्तु अनुप्रासमयी है। मनोहारी भाषा में प्रेम और भक्ति का सजीव चित्र खींचने में रसखान की कौन बराबरी कर सकता है। जितनी अनन्य-मनस्कता इनके काव्य में है वह अनेक हिन्दू कवियों में भी नहीं है।

तभी तो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखा था—"इन मुसलमान कविन पर कोटिक हिन्दुन वारिये"।

इनकी दो रचनाएँ अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं—(१) सुजान-रसखान, (२) प्रेम-वाटिका। सुजान-रसखान में १२० पद्य सवैया, घनाक्षरी छन्दों में हैं तथा कुछ एक दोहे-सोरठे भी हैं। प्रेमवाटिका में ५२ दोहे हैं। आपका जन्म १६१७ और मृत्यु १६६० में बतलाई जाती है।

सवैये

सार और आलोचना

आपने अपनी कविता में कृष्ण के प्रति केवल जीवन पर्यन्त ही प्रेम को सीमित नहीं रखा, प्रत्युत आपने यह भी बतलाया है कि अगले जन्म में चाहे जो कुछ बनूँ किन्तु कृष्ण या कृष्ण से सम्बन्धित वस्तु में मेरा प्रेम बना रहे। कृष्ण की प्राप्ति वेदों के स्वाध्याय तथा पुराणों के पढ़ने से नहीं होती प्रत्युत "मेरे भक्त जहाँ गाते हैं, हे नारद ! मैं वहीं रहता हूँ।" इस उक्ति के आधार पर सब स्थानों पर ढूँढने पर और कहीं न मिलने पर राधा (प्रेमिका) के पैर दबाते हुए कृष्ण को अंकित करके 'भक्त के वश में हैं भगवान्' वाली उक्ति को चरितार्थ कर दिखाया। आपकी कविता का सार है कि कृष्ण अपने भक्तों के पास रहते हैं।

आपके सवैये हिन्दी-साहित्य के रत्न-भण्डार समझे जाते हैं। कृष्ण के प्रति प्रेमभावना का सजग एवं आकर्षक चित्र जैसा रसखान का है, वैसा अन्य कवि का मिलना कठिन है। आपने सोने के महलों को, जहाँ कृष्ण विहार करते थे, करील-कुञ्जों पर न्योछावर कर दिया। आपकी कविता में प्रेम, भक्ति तथा श्रद्धा की निर्मल त्रिवेणी बह रही है।

मानुस हौं तो वही रसखानि, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बसि मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धर्यौ कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं, नित कालिंदी-कूल कदम्ब की डारन॥१॥

शब्दार्थ—मानुस = मनुष्य। हौं = मैं। ग्वारन = गोप, ग्वाला। नित = प्रतिदिन। धेनु = गाय। मँझारन = बीच। पाहन = पत्थर। गिरि = पर्वत। कर = हाथ। छत्र = छाता। पुरंदर = इन्द्र। खग = पक्षी। कालिंदी =

यमुना। कूल = किनारा। कदम्ब = एक वृक्ष। बसेरो = निवास।

भावार्थ—रसखान प्रभु से प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि हे प्रभो! यदि मैं अगले जन्म में मनुष्य ही बनूँ तो उसी गोकुल गाँव का ग्वाला बनूँ। यदि पशु बनना पड़े तो मेरा क्या वश है, किन्तु इतना अवश्य चाहता हूँ कि फिर नित्य नन्द बाबा की गौओं में चरा करूँ। यदि पत्थर बनूँ तो उसी गोवर्धन पर्वत का जिस को भगवान् श्रीकृष्ण ने इन्द्र के कारण छत्र बना कर हाथ पर धारण किया था। यदि पक्षी बनूँ तो यमुना-तट के कदम्ब वृक्ष की शाखाओं पर अपना बसेरा बनाऊँ और इस प्रकार प्रत्येक अवस्था में हे श्रीकृष्ण, आपका सम्पर्क प्राप्त करता रहूँ।

भाव यह कि रसखान मनुष्य, पशु, पक्षी और यहाँ तक कि पत्थर बन कर भी प्रसन्न हैं यदि उनको प्रत्येक अवस्था में रहते हुए भी श्रीकृष्ण के दर्शन होते रहें। कितना उच्च है यह श्रीकृष्ण-प्रेम।

सुनिये सबकी कहिये न कछू, रहिये इमि या भव-बागर में।
करिये व्रत नेम सचाई लिए, जिनतें तरिए भव-सागर में॥
मिलिये सबसों दुरभाव बिना, रहिए सतसंग उजागर में।
'रसखानि' गुबिन्दहिं यों भजिए जिमि नागरि को चित गागर में॥२॥

शब्दार्थ—कछू = कुछ। इमि = इस प्रकार। भव = संसार। बागर = बाजार। व्रत = उपवास। दुरभाव = बुरा भाव। उजागर = उज्ज्वल। जिमि = जिस प्रकार। नागरि = चतुर नारी। चित = मन।

भावार्थ—इस संसार रूपी घास फूस की टट्टी या बाजार में इस प्रकार रहना चाहिए कि सब की सुने और कहे किसी से भी कुछ नहीं। सत्य के साथ ऐसे व्रत नियम करते रहें जिससे संसार-सागर से पार हो जायें। सब से सद्भावना के साथ मिलें और निर्मल सत्संग में रहें और इस प्रकार सावधान होकर साधना करे जैसे कि पनिहारिन का चित्त सब काम करते हुए भी अपने सिर पर रखी हुई गागर में ही लगा

रहता है। भाव यह है कि जिस प्रकार पनिहारिन अपने सिर पर पानी का भरा हुआ घड़ा रख कर लाती है, वह अपने दोनों हाथ भी घड़े से छोड़ देती है, मार्ग में चलते हुए दूसरी सखियों से बातें भी करती जाती है, यह सब कुछ काम करते हुए भी उसका ध्यान अपने सिर पर रखी हुई गागर ही में लगा रहता है कि कहीं सिर पर से गागर न गिर जाय उसी प्रकार मनुष्य को भी सब कुछ काम करते हुए भी अपना ध्यान सदा भगवान् ही में लगाये रखना चाहिए।

या लकुटी अरु कामरिया पर, राज तिहूँ पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि, नवौ निधि को सुख, नंद की गाय चराय बिसारौं॥
'रसखानि' कबौं इन आँखिन तें, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूँ कलधौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं॥२॥

शब्दार्थ—लकुटी=सोटी, छड़ी। कामरिया=कमली। तिहूँ=तीनों। तजि डारौं=छोड़ दूँ। आठहुँ=आठों प्रकार की। नवौं निधि=नौ प्रकार की निधियाँ। तैं=से। तड़ाग=तालाब। कोटिनहूँ=करोड़ों। धाम=घर। कलधौत=सोना।

भावार्थ—रसखान कहते हैं कि मैं श्रीकृष्ण की इस छड़ी और कमली पर तीनों लोकों का राज्य न्योछावर कर सकता हूँ, और नन्द बाबा की गौएँ चरा कर आठों सिद्धियों तथा नौ निधियों का सुख त्याग सकता हूँ। यदि मुझे कभी इन आँखों से ब्रज के बाग, तालाब और बावली आदि सुन्दर स्थान देखने का सुअवसर प्राप्त हो जाय तो उन करील की कुंजों पर करोड़ों सोने के महलों को न्योछावर कर सकता हूँ। भाव यह कि श्रीकृष्ण के दर्शनों के सम्मुख कवि को बड़ी से बड़ी सम्पत्ति भी तुच्छ प्रतीत होती है।

सेस, सुरेस, दिनेस, गनेस, प्रजेस, धनेस, महेस मनाओ।
कोऊ भवानी भजौ मन की, सब आस सबै बिधि जाय पुराओ॥

कोऊ रमा भजि लेहु महाधन, कोऊ कहूँ मनवांछित पाओ।
पै 'रसखानि' वही मेरो साधन, और त्रिलोक रहौ कि नसाओ ॥४॥

शब्दार्थ—सेस = शेषनाग । सुरेस = इन्द्र । दिनेस = सूर्य । गनेस = गनपति । धनेस = कुबेर । महेस = शकर । भवानी = दुर्गा । विधि = ढग, प्रकार । पुराओ = पूर्ण करो । रमा = कमला । मनवाछित = मनचाहा । साधन = उपाय । त्रिलोक = तीन लोक । नसाओ = नष्ट हो जाय ।

भावार्थ—कोई चाहे तो शेषनाग, इन्द्र, सूर्य, गणेश, ब्रह्मा, कुबेर या शिवजी को मनावे अथवा भगवती पार्वती की उपासना कर मनचाहा फल पावे । कोई लक्ष्मी की उपासना कर बड़ी भारी सम्पत्ति भी क्यों न पा ले और दूसरे कहीं से किसी अन्य देवता से मनचाही वस्तु प्राप्त कर लें, किन्तु रसखान कहते हैं—मेरा साधन तो वही श्रीकृष्ण है, चाहे तीनों लोक रहें या नष्ट हो जायें । भाव यह है कि रसखान को श्रीकृष्ण के अतिरिक्त ससार की बड़ी से बड़ी वस्तु तुच्छ प्रतीत होती है ।

सेस, गनेस महेस, दिनेस, सुरेसहु, जाहि निरन्तर गावैं ।
जाहि अनादि अनत अखड, अछेद अभेद सुबेद बतावैं ॥
नारद से सुक ब्यास रटैं, पचिहारे तऊ पर पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ॥५॥

शब्दार्थ—सेस = शेषनाग । गनेस = गणपति । महेस = शिव । दिनेस = सूर्य । सुरेसहुँ = इन्द्र । निरतर = लगातार । अनादि = जिसका आरम्भ न हो । अनत = अपार । अखड = जिसके टुकड़े न हों । अछेद = जिसे काटा न सके । अभेद = जिसे तोड़ा न जा सके । सुबेद = वेद । सुक = शुकदेव । तऊ = तो भी । अहीर = ग्वालिन । छोहरियाँ = लड़कियाँ । छछिया = चुल्लू ।

भावार्थ—शेषनाग, गणेश, शिव, सूर्य और इन्द्र भी जिसका निरन्तर गुणगान किया करते हैं और जिसे वेद अनादि, अनन्त, अखण्ड,

अछेद्य और अभेद्य कहते हैं। नारद, व्यास और शुकदेव आदि ऋषि मुनि जिसके गुण गाते-गाते हार कर थक गये, फिर भी जिसका कहीं पार नहीं पाया गया। रसखान कवि कहते हैं कि उसी परब्रह्म को ग्वाल-बालिकाएँ केवल चुल्लू भर छाछ के लिए कई प्रकार के नाच नचाती हैं। भाव यह है परब्रह्म श्रीकृष्ण प्रेम के वश में होकर चुल्लू भर छाछ के लिए कई प्रकार के नाच नाच रहा है। वन में गोएँ चराते हुए श्रीकृष्ण ग्वाल-बालिकाओं से जब छाछ माँगते और कहते हैं कि थोड़ी-सी छाछ पिला दो तो वे कहती हैं कि पहले नाच कर दिखा। इस पर श्रीकृष्ण नाचते हैं। भक्ति की यही महिमा है कि जिस परब्रह्म का बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को भी दर्शन नहीं होता वही नाच नाच रहा है।

ब्रह्म मैं ढूँढ्यो पुरातन गानन, वेद रिचा सुनी चौगुने चायन।
देख्यौ सुन्यौ न कहूँ कबहूँ, वह कैसे सरूप औ' कैसे सुभायन॥
टेरत टेरत हारि पर्यौ, 'रसखानि' बतायो न लोग लुगायन।
देख्यौ दुरो वह कुञ्ज कुटीर में, बैठो पलोटत राधिका-पायन॥६॥

शब्दार्थ—ब्रह्म=ईश्वर। पुरातन=पुराण। रिचा=ऋचा (वेदमन्त्र)। चायन=चाव। सरूप=रूप। सुभायन=स्वभाव। टेरत टेरत=बुलाते २। लुगायन=स्त्रिया। दुरो=छिपा। पलोटत=दबाते। पायन=पाद।

भावार्थ—ब्रह्म को पुराणों की कथाओं में ढूँढा और वेद-मन्त्रों को चौगुने चाव से सुना किन्तु कहीं भी देखा-सुना नहीं कि वह परब्रह्म कैसे स्वरूप और कैसे स्वभाव का है। रसखान कहते हैं कि मैं उसे बुलाते पुकारते और ढूँढते हुए हार गया पर कोई स्त्री-पुरुष बता न सका, अन्त में मैंने देखा कि वह कुंज-कुटीर में छिपा हुआ बैठा राधिका के पैर दबा रहा है। भाव यह कि परिपूर्ण परब्रह्म श्रीकृष्ण प्रेम के वश में होकर अपनी ही शक्ति-स्वरूपिणी राधा के पाद दबाते हैं—उनके वश में हो रहा है।

मोरपखा सिर ऊपर राखि हौं, गुञ्ज की मार गरे पहिरौंगी।
ओढ़ि पिताम्वर लै लकुटी, वन गोधन ग्वारन संग फिरौंगी॥
आवतो वोहि मेरो 'रसखानि' सो तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की अधरान धरी अधरा न धरौंगी॥७॥

शब्दार्थ—मोरपखा=मोर के पख। पहिरौंगी=पहनूँगी। ओढ़ि=पहनकर। पितांबर=पीला वस्त्र, दुपट्टा। लकुटी=छड़ी। गोधन=गाय। वाहि=वही। स्वाग=लीला। मुरलीधर=श्रीकृष्ण। अधरान=होठ। धरी=रखी हुई।

भावार्थ—राधिका कहती है कि हे सखी, तेरे कहने से मैं श्रीकृष्ण का सारा स्वाँग करूँगी, जैसे कि सिर पर मोर का पख व गले में रत्तियों की माला व पीताम्बर पहनकर हाथ में छड़ी लेकर गौओं के साथ बन में गाती फिरूँगी। वह श्रीकृष्ण मेरे प्रिय हैं। अत यह सब कुछ तो मैं कर लूँगी, पर उस मुरलीधर—श्रीकृष्ण के ओठों पर रखी हुई, उसकी जूठी वशी को अपने ओठों पर नहीं रखूँगी। यहाँ पर वशी के प्रति श्री-राधिका की ईर्ष्या दर्शनीय है।

धूल भरे अति सोभित स्याम जू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना, पग पैंजनियाँ कटि पीरी कछोटी॥
वा छवि को 'रसखानि' विलोकत, वारत काम कलानिधि कोटी।
काग के भाग बडे सजनी, हरि हाथ सौं लै गयो माखन रोटी॥८॥

शब्दार्थ—सोभित=शोभित। तैसी=वैसी। अँगना=आँगन। पग=चरण। कटि=कमर। पीरी=पीली। कछोटी=कच्छा। वा=उस। छवि=सौन्दर्य। विलोकत=देखते। वारत=न्योछावर करता है। काम=कामदेव। कोटी=करोड़ों।

भावार्थ—भगवान् कृष्ण धूल में लिपटे हुए अत्यन्त शोभित हो रहे हैं, उनके सिर पर चोटी भी वैसी शोभा दे रही है, पैरों में झाँझर

और कमर में पीली कछनी धारण किये हुए वे आँगन में खेलते फिरते हैं। रसखान कहते हैं कि उस शोभा को देखकर करोड़ों कामदेव और चन्द्रमा भी अपने आपको उन पर न्योछावर कर देते हैं। हे सखि! उस कौए का अहोभाग्य है जो भगवान् के हाथ से माखन-रोटी छीन कर ले गया। भाव यह कि बालक श्रीकृष्ण आँगन में हाथ में माखन रोटी लिये हुए खाते और खेलते फिर रहे थे कि इतने में एक कौआ आया और श्रीकृष्ण के हाथ से रोटी छीनकर ले गया। इस पर कवि कहता है कि उस कौए के भी बड़े भाग्य हैं जिसको परब्रह्म श्रीकृष्ण के हाथ की रोटी मिल गई।

कान ठगौरी करी हरि आजु, बजाइ के बाँसुरिया रस भीनी।
तान सुनी जिनहिं, तिनहिं, तब ही तिन लाज बिदा करि दीनी॥
घूमैं घरी घरी नन्द के द्वार, नवीनी कहा कहूँ बाल प्रवीनी।
या ब्रजमण्डल में 'रसखानि' सु कौन भटू जो लटू नहिं कीनी॥६॥

शब्दार्थ—ठगौरी=जादू। रसभीनी=रस भरी। जिनहिं=जिन्होंने। तिनहिं=उन्होंने। तिन=उन। घरी-घरी=बारम्बार। प्रवीनी=चतुर। भटू=सखी। लटू=लट्टू। लट्टू करना=वश में करना।

भावार्थ—श्रीकृष्ण ने आज रस-भरी वंशी बजाकर जाने कैसा जादू कर दिया है। जिन्होंने इसकी तान सुन ली तभी उन सब ने लाज को विदा कर दिया। क्या कहूँ, सब नई विवाहिता और चतुर गोपियाँ बार बार नन्द के द्वार पर घूम रही हैं। इस ब्रज में ऐसी कौन सखी है जो इस पर मुग्ध न हो गई हो। भाव यह है कि श्रीकृष्ण की वंशी की ध्वनि को सुनकर सब उन पर मोहित हो गईं और बार-बार उसे सुनने के लिए श्रीकृष्ण के घर के चक्कर काटती हैं।

मेरे सुभाय चितैबे को माइ री, लाल निहारि कै बंसी बजाई।
वा दिन तें मोहि लागी ठगौरी सी, लोग कहैं कोउ बावरी आई॥
यौं 'रसखानि' घिर्यौ सगरौ ब्रज, जानत वे कि मेरो हियराई।
जो कोउ चाहै भलौ अपनौ तौ, सनेह न काहू सौं कीजियो माई॥१०॥

शब्दार्थ—सुभाय=स्वभाव। चितैवे=देखना। माई=सखी। निहारि कै=देखकर। वा=उस। ठगोरी=जादू। घिर्‌यो=इकठा हो गया। हियराई=हृदय ही।

भावार्थ—एक सखी, दूसरी से कहती है कि हे सखी, मेरा तो स्वभाव ही किसी वस्तु को देखने का है इसलिए मैंने अपने स्वभाव से ज्यों ही श्रीकृष्ण की ओर देखा कि उन्होने भी मेरी ओर देखकर वंशी बजाई। उसी दिन से मुझ पर कुछ ऐसा जादू-सा हो गया कि लोग मुझे देखते ही कहते हैं कि पगली आ गई। इस प्रकार सारा व्रज मुझे पगली कहकर मेरे चारों ओर इकठा हो जाता है। क्या मैं वास्तव में पगली हूँ ? इस बात को या तो वे (श्रीकृष्ण) ही जानते हैं या मैं ही जानती हूँ। पर मैं तो इतना ही कहना चाहती हूँ कि यदि कोई अपना भला चाहता है तो हे भाई, कोई किसी से कभी प्रेम न करे।

दानी भये नये माँगत दान, सुनै जु पै कस तो बन्धन जैहो।
रोकत हो वन में 'रसखानि', पसारत हाथ घनो दुख पैहो॥
छूटे घरा बछरादिक गोधन, जो धन है सो सबै धन दैहो।
जैहै जो भूषन काहू सखी को, मोल छला के लला न बिकैहो॥११॥

शब्दार्थ—दानी=दाणी, चुङ्गी लेने वाला। दान=डाण, चुङ्गी का टैक्स। बन्धन जैहो=बाँधे जाओगे। घनो=बहुत। पैहो=पाओगे। बछरादिक=बछड़े आदि। गोधन=गोरूपी धन। छला=छल्ला, साधारण अँगूठी। भूषण=गहना।

भावार्थ—दूध, दही, मक्खन बेचने जाती हुई गोपियों को श्रीकृष्ण मार्ग में ही रोक कर उनसे डाण या चुङ्गी के रूप में दही मक्खन आदि माँगते हैं और उन्हे मार्ग में रोक कर खड़े हो जाते हैं, इस पर गोपियाँ कहती हैं कि आये कहाँ के नये दाणी या चुङ्गी लेने वाले, तुम चुङ्गी लेने वाले बन कर हम से दही मक्खन आदि के रूप में नये-नये टैक्स आदि

माँगते हो, पर यदि यहाँ के राजा कंस को पता लग गया कि कोई एक नकली चुङ्गी लेने वाला लोगों से चुङ्गी माँगता फिरता है, तो वह तुम्हें पकड़ कर बंधन में डाल देगा—कैद कर लेगा। तुम बन में हमें रोक रहे हो पर चुङ्गी के लिए हाथ फैलाते हुए तुम्हें बहुत दुःख उठाना पड़ेगा। तुम्हारे घर-बार गाय-बछड़े आदि सब छूट जायेंगे, तुम्हारे पास जो भी धन है वह सब देना पड़ेगा। हे लाल! तुमने चुंगी लेने के लिए यदि हमारे साथ कोई जबरदस्ती की, और हम ने छेड़-छाड़ की और उस छेड़-छाड़ के कारण कहीं हमारा कोई गहना टूट-टाट गया तब तो तुम एक छल्ले के मोल भी नहीं बिक पाओगे (तुम्हें यहाँ कोई नहीं पूछेगा और तुम्हारी ऐसी दशा होगी कि सदा याद रखोगे)।

काहू सो माई कहा कहिये, सहिये जू सोई 'रसखानि' सहावैं।
नेम कहा जब प्रेम कियो तब, नाचिये सोई जो नाच नचावैं॥
चाहत हैं हम और नहीं सखी, क्यों हूँ कहूँ प्रिय देखन पावैं।
चेरिया सों जु गोपाल रँच्यौ तो, चलौ री सबै मिलि चेरि कहावैं॥१२॥

शब्दार्थ—रसखानि=श्रीकृष्ण या ईश्वर। नेम=कुल आदि के नियम। चेरिया=दासी। रँच्यौ=बनाया।

भावार्थ—हे सखी, किसी से क्या कहें, वह श्रीकृष्ण या भगवान् जो सहावे वही सहना पड़ता है। जब प्रेम ही कर लिया तो अब कुल के नियमों की क्या परवाह. अब तो वह प्रियतम श्रीकृष्ण जो नाच नचावे वही नाचना है। हे सखी. हम और कुछ नहीं चाहती, हम तो केवल इतना ही चाहती हैं कि किसी न किसी प्रकार वह श्रीकृष्ण हमें दीखते रहें। भगवान् ने यदि दासी को अपनी दासी बना लिया तो चलो सब मिल कर उनकी दासी ही कहलावें।

दोहे

सार और आलोचना

आपकी कविताओं का सार है कि मनुष्य व्यवहारनिपुण कैसे बन सकता है। लक्ष्मी चंचल है, किसी के पास नहीं टिकती—इस बात का सच्चा चित्र चित्रित कर दिखाया है। प्रेम से तो मनुष्य परमात्मा को भी वश में कर लेता है, मनुष्य को वश में करने की तो बात ही क्या है इत्यादि विचार मानव को व्यवहारनिपुण बना देते हैं। कृष्ण-प्रेम की भी झलक आपकी कविता में मिलती है।

आपके दोहे सुभाषित तथा सूक्तियों का अच्छा काम देते हैं। ये दोहे नैतिक तथा उपदेशपरक हैं।

अच्युत-चरन तरंगिनी, सिव-सिर मालति माल।
हरि न बनाओ सुर-सरी, कीजो इंदव-भाल ॥१॥

शब्दार्थ—अच्युत = विष्णु। तरंगिनी = नदी। मालति = चमेली। हरि = विष्णु। इंदव-भाल = शिवजी।

भावार्थ—रहीम गंगा से प्रार्थना करते हैं कि हे विष्णु के चरणों से उत्पन्न होने वाली तरंगिणी (नदी), शिवजी के सिर पर चमेली की माला की तरह सुशोभित होने वाली गंगे! तुम मुझे विष्णु रूप नहीं प्रत्युत शिव रूप बनाना। भाव यह है कि गंगा में स्नान कर मनुष्य शिव और विष्णु का स्वरूप बन जाता है अत. कवि विष्णु रूप नहीं बनना चाहता क्योंकि गंगा विष्णु के चरणों से निकली है। वह विष्णु बन कर गंगा को अपने पैरों में नहीं, अपितु शिव रूप बन कर सिर पर धारण करना चाहता है।

सब कोऊ सब सों करैं, राम जुहारु सलाम।
हित अनहित तब जानिये, जा दिन अटके काम ॥२॥

शब्दार्थ—राम-जुहारु=जय रामजी की, नमस्कार आदि । हित=प्रेमी । अनहित=शत्रु ।

भावार्थ—सुख के दिनों में सभी कोई सब से 'जय रामजी की' या 'नमस्कार' आदि करते हैं, किन्तु हितैषी मित्र या शत्रु की परीक्षा तो तभी होती है, जब कि कोई किसी से काम पड़ जाय। भाव यह कि हमारा किसी से कोई काम अटक गया है यदि वह उसे पूरा कर देता है तब तो ज्ञात होता है कि यह हमारा मित्र है अन्यथा क्या पता लगे कि कौन मित्र है ?

अमरबेलि बिन मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
'रहिमन' ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिये काहि ॥३॥

शब्दार्थ—अमरबेलि=अमर बेल नामक एक बेल जिसकी पीली-पीली तिनके के समान शाखाएँ वृक्षों और झाड़ियों पर छाई रहती हैं। मूल=जड़ ।

भावार्थ—जो भगवान् बिना जड़ की अमरबेल को भी पालते-पोसते हैं, उन भगवान् को छोड़ कर दूसरे किसको ढूँढता फिरता है। भाव यह कि उस प्रभु का ही भजन करना चाहिए क्योंकि वह जो चाहे कर सकता है इसलिए उसी की शरण ढूँढनी चाहिए। भगवान् सभी का रक्षक है, उसे छोड़ कर दूसरे किसी मनुष्य का सहारा क्यों ढूँढा जाय।

अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बड़ेन के जोर।
ज्यों ससि के संयोग तें, पचवत आगि चकोर ॥४॥

शब्दार्थ—अनुचित=बुरा । उचित=ठीक । लघु=छोटे । ससि=चन्द्रमा । संयोग=सम्बन्ध । पचवत=पचा जाता है । आगि=आग ।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि छोटे आदमी भी बड़ों के बल पर अनुचित या उचित सभी तरह के काम कर लेते हैं, जैसे कि चन्द्रमा के

मित्र होने के कारण चकोर आग को भी खाकर पचा जाता है। भाव यह है कि बड़े आदमियों के नाम पर छोटे आदमी भी जो चाहे कर लेते हैं।

नोट—चकोर अगारे चुगता है यह 'कवि-समय-ख्याति' है। वास्तव मे चकोर अगारे नही चुगता।

जो 'रहीम' करिबो हुतो, ब्रज को यही हवाल।
तौ नाहक कर पर धर्‌यौ, गोवर्धन गोपाल ॥५॥

शब्दार्थ—करिबो हुतौ=करना था। हवाल=दशा। नाहक=व्यर्थ में। कर=हाथ। धर्‌यौ=धारण किया। गोवर्धन=गोवर्धन नामक मथुरा के पास का एक पर्वत।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि हे भगवन् श्रीकृष्ण! यदि आपने ब्रजभूमि की ऐसी बुरी दशा कर देनी थी तो उस समय जब इन्द्र अपने कोप से इसे बहाने लगा था उस समय अपने हाथ पर गोवर्धन पर्वत धारण कर उस वर्षा से इसकी रक्षा ही क्यों की। भाव यह कि कवि ब्रज दुर्दशा को देख कर अत्यन्त दु:खी होकर कहता है कि हे भगवन्! आपने अपनी ब्रजभूमि की यह कैसी दुर्दशा कर दी है। इससे तो यही अच्छा था कि इसे जब इन्द्र भयकर वर्षा के द्वारा बहा देना चाहता था तभी आप बह जाने देते, जिससे इसे आज ऐसे दुःख के दिन तो न देखने पड़ते।

अब 'रहीम' मुसकिल परी गाढ़े दोऊ काम।
साँचे को तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम ॥६॥

शब्दार्थ—गाढ़े=कठिन। दोऊ=दोनों। जग=ससार।

भावार्थ—रहीम जी झूठ बोलना चाहते नहीं और सदा सत्य बोलने से भी आजकल काम नहीं चलता फिर काम कैसे चले, इसी भाव को व्यक्त करते हुए रहीम जी कहते हैं कि अब हमारे सामने बड़ी कठिनाई उपस्थित हो गई है कि दोनों ही काम बड़े कठिन हैं। क्योंकि यदि सदा सर्वदा सत्य को अपनाये रहते हैं तो ससार मे निर्वाह नहीं होता,

और यदि झूठ बोलते हैं तो भगवान् नहीं मिलते !

ये 'रहीम' घर घर फिरैं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़ि दो, अब रहीम वे नाहिं ॥७॥

शब्दार्थ—मधुकरी=भीख माँग कर लाई हुई रोटी। यारी=मित्रता।

भावार्थ—जब सम्राट् जहाँगीर ने रहीम जी की सारी सम्पत्ति जब्त कर ली और वे दुःख से दिन काटने लगे उस समय का वर्णन करते हुए रहीम जी कहते हैं—अब तो मैं स्वयं ही लोगों के घरों पर रोटी माँग कर अपना निर्वाह करता हूँ। अब मैं पहले जैसा सम्पन्न नहीं रहा। अतः हे मित्रो, अब आप लोग मुझ से मित्रता का नाता मत रखिए; क्योंकि अब मैं आप लोगों की आशा पूरी करने में असमर्थ हूँ।

आप न काहू काम के, डार पात फल मूर।
औरन को रोकत फिरैं, 'रहिमन' कूर बबूर ॥८॥

शब्दार्थ—पात=पत्ता। मूर=जड़। कूर=दुष्ट। बबूर=बबूल या कीकर का वृक्ष।

भावार्थ—रहीम जी बबूल के वृक्ष के रूप में दुष्टों की प्रकृति का वर्णन करते हुए कहते हैं—यह दुष्ट बबूल के वृक्ष अपनी शाखा (पत्ते) या फल किसी के भी स्वयं तो किसी काम के हैं नहीं, किन्तु अपने पास से निकलने वाले दूसरे प्राणियों को भी (उनके कपड़ों में उलझ कर) रोकते फिरते हैं। दुष्टों का ऐसा ही स्वभाव होता है। अतः यह कि दुष्ट स्वयं तो कुछ कार्य करता नहीं और दूसरों के काम को भी विघ्न डाल कर रोक देता है।

कमला थिर न 'रहीम' कहि, यह जानत सब कोई।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चंचला होई ॥९॥

शब्दार्थ—कमला=लक्ष्मी। थिर=थिर, एक स्थान पर टिकने वाली। पुरुष पुरातन=पुराण पुरुष विष्णु या पुराना बुड्ढा आदमी। बधू =बहू। चंचला=चचल।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि इस बात को सभी जानते हैं कि लक्ष्मी कभी एक स्थान पर टिक कर नहीं रहती। बात तो यह है कि यह पुराण पुरुष (सब से बूढे) भगवान् विष्णु की पत्नी है फिर भला चचल क्यों न होगी। बूढों की स्त्रिया प्राय चचल होती हैं। अत. लक्ष्मी का चचल होना स्वाभाविक ही है। इस दोहे में लक्ष्मी के चचल होने का बड़ा ही सुन्दर कारण बताया गया है। भाव यह कि धन कभी एक के पास नही ठहरता।

छोटे काम बडे करें, तो न बड़ाई होई।
ज्यों 'रहीम' हनुमंत कहॅ, गिरधर कहे न कोई ॥१०॥

शब्दार्थ—गिरधर=पर्वत को धारण करने वाला।

भावार्थ—बड़ों की ही सब बड़ाई करते है, छोटों को कोई नहीं पूछता, इस भाव को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि यदि छोटे आदमी बड़ा काम कर भी लें तो भी उन्हें कोई बड़ा नहीं कहता, जैसे कि हनुमान् को कोई भी गिरिधर (पर्वत को उठाने वाला) नही कहता परन्तु कृष्ण को सभी कहते हैं। भाव यह कि हनुमान् जी द्रोणाचल पर्वत को उठा कर ठेठ लका ले गये और श्रीकृष्ण गोवर्धन पर्वत को उठा कर खड़े ही रहे फिर भी क्योंकि श्रीकृष्ण बहुत बड़े थे अतः उन्हें ही सब गिरिधर कहते हैं, हनुमान् को नहीं।

अमी पियावत मान बिन, 'रहिमन' मोहिं न सुहाइ।
प्रेम सहित मरिबो भलो, जो विष देइ बुलाइ ॥११॥

शब्दार्थ—अमी=अमृत। विष=जहर। मरियो=मरना।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं यदि कोई मुझे निरादर से अमृत भी

पिलाये तो भी मुझे अच्छा नहीं लगता। विपरीत इसके, सम्मान के साथ विष भी दे दे तो वह मरना भी अच्छा है। भाव यह कि मनुष्य को अपमान से जीने की अपेक्षा सम्मानपूर्वक मृत्यु को श्रेष्ठ समझना चाहिए।

'रहिमन' मनहिं लगाय के, देखि लेहु किन कोय।
नर को बस करिबो कहा, नारायण बस होय ॥१२॥

शब्दार्थ—किन=क्यों नहीं। कोय=कोई। नर=मनुष्य। बस करिबो=वश में करना। नारायण=भगवान्।

भावार्थ—रहीम कहते हैं कि कोई मन लगा कर काम करके तो देखे, यदि वह मन व लगन से प्रयत्न करेगा तो किसी मनुष्य की तो बात ही क्या, भगवान भी उसके वश में हो जायेंगे। भाव यह कि मन लगा कर कार्य करने से सब काम बन जाते हैं।

होइ न जाकी छाँह ढिग, फल 'रहीम' अति दूर।
बाढ़ेउ सो बिन काज ही, जैसे तार खजूर ॥१३॥

शब्दार्थ—ढिग=पास में। अति=बहुत। बाढ़ेउ=बढ़े भी। तार=ऊँचो।

भावार्थ—जिनकी छाया भी पास में नहीं है और फल भी बहुत दूर लगते हैं ऐसे ऊँचे खजूर के वृक्ष के समान यदि कोई मनुष्य बड़ा भी हो जाय, तो भी किस काम का। भाव यह है कि मनुष्य के उच्च होने और बढ़ने से तब लाभ है जब वे दूसरों को लाभ पहुँचा सकें, यदि कोई दूसरों को लाभ नहीं पहुँचा सकता तो उसका बढ़ना खजूर वृक्ष के समान ही व्यर्थ है।

दीन सबन को लखत हैं, दीनहिं लखै न कोय।
जो 'रहीम' दीनहिं लखै, दीनबन्धु सम होय ॥१४॥

शब्दार्थ—दीन=गरीब। लखत है=देखता है। लखै=देखे। दीनबन्धु=दीनों के बन्धु, भगवान्।

भावार्थ—दीन हीन दुःखी मनुष्य तो सभी की ओर आशाभरी दृष्टि से देखता है, किन्तु उसकी ओर कोई नहीं देखता। रहीम कहते हैं कि दीन-हीन की सुध लेने वाला पुरुष तो दीनबन्धु (भगवान्) के समान हो जाता है। भाव यह कि मनुष्य को सदा दीन-दुखियों की सहायता करनी चाहिए।

अमृत ऐसे बचन में 'रहिमन' रिस की गाँस।
मानहु मिसरी में मिली, निरस बाँस की फाँस ॥१५॥

शब्दार्थ—रिस=क्रोध। गाँस=गाँठ। नीरस=खुश्क, रसहीन।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि अमृत के समान मधुर वचनों में क्रोध का थोड़ा सा भी अंश वैसा ही बुरा लगता है जैसा कि मिश्री के कूजे में खुश्क बाँस की फाँस बुरी लगती है। जिस प्रकार मिश्री के कूजे में लगे हुए बाँस के तिनके को लोग निकाल कर फेंक देते हैं वैसे ही मधुर वचनों में से क्रोध को भी निकाल कर दूर कर देना चाहिए। बातें करते हुए कभी क्रोध न करना चाहिए।

तब ही लग जीबो भलो, दीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचै 'रहीम' ॥१६॥

शब्दार्थ—जीबो=जीना। दीबो=दान देना। धीम=धीमा। मद=कम। रुचै=अच्छा लगता है।

भावार्थ—रहीम कहते हैं कि इस संसार में जीवन तो तभी तक अच्छा है जब तक दान देने में कोई कमी न आये, क्योंकि बिना दान दिये संसार में जीवित रहना तो हमें अच्छा नहीं लगता। भाव यह कि मनुष्य को सदा दान देते रहना चाहिए।

जब लगि वित्त न आपने, तब लगि मित्त न कोय।
'रहिमन' अम्बुज अम्बु बिन, रवि ताकर रिपु होय॥१७॥

शब्दार्थ—वित्त = धन। मित्त = मित्र। अम्बुज = कमल। अम्बु = पानी। रवि = सूर्य। ताकर = उसका। रिपु = शत्रु।

भावार्थ—मनुष्य के पास जब तक अपना धन-बल नहीं होता तब तक उसका कोई मित्र नहीं बनता। जैसे जल से बाहर निकले हुए कमल का सूर्य भी शत्रु हो जाता है। भाव यह कि पैसा सबसे बड़ी चीज है। उसके बिना किसी का कुछ काम नहीं बनता।

जो 'रहीम' ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय।
प्यादे से फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय॥१८॥

शब्दार्थ—ओछो = छोटे आदमी। अति ही = बहुत ही। इतराय = इतराते हैं। प्यादा = शतरंज की सबसे छोटी गोट। फरजी = शतरंज की एक बड़ी गोट।

भावार्थ—यदि नीच व्यक्ति को कोई उच्च पद प्राप्त हो जाय तो वह बहुत ही अधिक अभिमान से भर जाता है। जैसे कि शतरंज का प्यादा यदि फरजी बन जाए तो वह अपने सीधे ही खानों में चलने के नियम को छोड़कर टेढ़े घरों में भी चलने लग जाता है।

'रहिमन' ब्याह बियाधि है, सकहु तो जाहु बचाय।
पायन बेड़ी परत है, ढोल बजाय-बजाय॥१९॥

शब्दार्थ—बियाधि = व्याधि रोग।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि विवाह एक प्रकार का रोग है। [illegible] तुम इससे बच सकते हो तो बच जाओ। ढोल बजा-बजा कर विवाह के [illegible] में तुम्हारे पैरों में बन्धन की बेड़ियाँ पहनाई जा रही हैं। भाव यह कि [illegible] पड़ने पर मनुष्य संसार के सभी झगड़ों में उलझ जाता है।

छमा बड़ेन को चाहिए, छोटेन को उतपात।
का 'रहीम' को घटि गयो, जो भृगु मारी लात ॥२०॥

शब्दार्थ—छमा = क्षमा। बड़ेन को = बड़ों को। उतपात = शरारत। घटि गयो = कम हो गया। भृगु = एक ऋषि जिन्होंने सोये हुए भगवान् विष्णु को लात मार कर जगाया था।

भावार्थ—छोटे आदमी भले ही शरारतें किया करें पर बड़े आदमियों को चाहिए कि वे उन्हें क्षमा कर दें। जैसे कि भृगु ऋषि ने भगवान् विष्णु को लात भी मार दी तब भी उनका क्या बिगड़ गया। (पुराणों में कथा है कि एक बार भृगु ऋषि भगवान् विष्णु के दर्शन करने गये। वे सोये पड़े थे जब जगाने पर भी न जागे तो उन्होंने विष्णु को लात मार कर जगा दिया। इस पर भगवान् ने ऋषि के पाँव पकड़ लिये और कहा कि कहीं आपके पैरों में चोट तो नहीं लगी। इस प्रकार भगवान् ने क्रोध करने की अपेक्षा सहन शीलता ही दिखाई।) भाव यह कि बड़े आदमियों को सदा क्षमाशील होना चाहिए।

'रहिमन' अँसुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारौ गेह ते, कस न भेद कहि देइ ॥२१॥

शब्दार्थ—अँसुआ = आँसू। नयन = आँख। ढरि = निकल कर, ढल कर। प्रगट करेइ = प्रकट करते हैं। जाहि = जिसे। गेह = घर। भेद = रहस्य। कस = क्यों, कैसे।

भावार्थ—रहीम कहते है कि आँखों से आँसू बाहर निकल कर हृदय के दुख को प्रकट कर देते हैं। बात तो यह है कि जिसे घर से निकालोगे वह तुम्हारे अन्दर क भेद को क्यों नहीं बतायेगा, अवश्य बतायेगा ही। भाव यह कि अपने आदमी को घर से नहीं निकालना चाहिए नहीं तो वह तुम्हें हानि पहुँचायेगा ही।

चारा प्यारा जगत में, छाला हित कर लेइ।
ज्यों 'रहीम' आटा लगे, त्यों मृदंग सुर देइ ॥२२॥

शब्दार्थ—चारा=भोजन। छाला=सूखा चमड़ा। हित कर=प्रेम से। मृदंग=एक प्रकार का ढोलक के समान बाजा।

भावार्थ—संसार में सबको भोजन प्रिय होता है। यहाँ तक कि मृदंग का सूखा चमड़ा भी भोजन को बड़े प्यार से ग्रहण करता है, क्योंकि मृदंग और तबले आदि के चमड़े पर जब आटा लगाते हैं तो बहुत जोर-जोर से बजने लगता है। इसलिए सिद्ध होता है कि संसार में भोजन ही सबको प्रिय है।

'रहिमन' विद्या बुद्धि नहिं, नहीं धरम जस दान।
जनम वृथा भू पर धरेउ, पशु बिन पूँछ बिसान ॥२३॥

शब्दार्थ—भू=पृथ्वी। धरेउ=धारण किया। बिसान=विषाण, सींग।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि जिन लोगों में विद्या नहीं है; धर्म, यश और दान भी नहीं है, उन्होंने इस पृथ्वी पर व्यर्थ ही जन्म धारण किया हुआ है। वास्तव में तो वे मनुष्य रूप में बिना पूँछ और बिना सींगों के पशु ही हैं।

खीरा सिर ते काटिये, मलिये लोन लगाइ।
'रहिमन' करुए मुखन को, चहियत यही सजाइ ॥२४॥

शब्दार्थ—करुवे=कड़वे। सजाइ=सजा, दण्ड।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि खीरे को सिर से काट कर नमक लगाकर मला जाता है। कड़वे मुख वालों को वास्तव में यही सजा होनी चाहिए।

खीरा मुँह पर से कड़ुवा होता है। उसके कड़ुवेपन को दूर करने के

लिए उसे मुँह पर से काट कर नमक लगा कर मलते हैं। इसी आधार पर रहीम जी ने कहा है कि जो लोग कटु वचन बोलते हैं वास्तव में उनको ऐसा ही कठोर दण्ड मिलना चाहिए। इसलिए लोगों को चाहिए कि कभी किसी को कड़ुवी बात न कहें।

'रहिमन' मन महाराज के, दृग सों नाहिं दिवान।
देखि जाहि रीझै नयन, मन तेहि हाथ बिकान॥२५॥

शब्दार्थ—मन महाराज = मन रूपी राजा। दृग = आँखें। दिवान = मन्त्री। रीझै = प्रसन्न हो जावें। बिकान = बिक जाता है।

भावार्थ—इस मन रूपी महाराजा के नेत्रों से बढ़कर कोई भी मन्त्री नहीं है, क्योंकि यह नेत्र रूपी मन्त्री जिसको देख कर प्रसन्न हो जाते हैं, मन महाराज भी उसी के वश में हो जाते हैं। भाव यह है कि आँखें जिस सुन्दर रूप को देख कर प्रसन्न होती हैं, मन भी उसी पर मोहित हो जाता है, इसी लिए मन को महाराजा और आँखों को उसका सब से बड़ा मन्त्री बताया गया है।

यों 'रहीम' सुख होत है, उपकारी के संग।
बाँटन वारे के लगै ज्यों मेंहदी को रंग॥२६॥

शब्दार्थ—उपकारी = उपकार करने वाला। संग = साथ। बाँटन-वारे = बाटने वाले।

भावार्थ—अच्छे आदमियों के साथ रहने में बड़े भारी लाभ होते हैं, इस भाव को बताते हुए रहीम जी कहते हैं कि उपकारी पुरुषों के साथ रहने पर उसी प्रकार अनायास ही सुख मिल जाता है जैसे मेंहदी बाँटने वाले के हाथ में भी अपने आप ही रंग लग जाता है। भाव यह है कि सज्जन पुरुष चाहे हमें लाभ पहुँचाये या न पहुँचाये अपने आप लाभ हो जाता है।

माह मास कर भिनुसरा, मीन सुखी नहिं सौर।
ज्यों 'रहीम' जग ना जियइ, बिछुरे आपन ठौर ॥२७॥

शब्दार्थ—माह=माघ। मास=महीना। कर=का। भिनुसरा=प्रातःकाल। मीन=मछली। सौर=धूप। जियइ=जीते रहते हैं। ठौर=स्थान।

भावार्थ—माघ मास के प्रातःकाल का भयंकर ठंडा समय है। ऐसे समय में प्रत्येक प्राणी चाहता है कि उस समय धूप में बैठ कर ठंड को दूर कर ले। फिर भी मछली तो धूप में रह कर सुखी नहीं रह सकती। रहीम जी कहते हैं—बात यह है कि कोई भी मनुष्य अपने स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान में जाकर सुखी नहीं रह सकता। भाव यह है कि मनुष्य अपने स्थान पर सुख प्राप्त करता और शोभा देता है। मातृ-भूमि से बढ़-कर और कोई स्थान नहीं हो सकता।

'रहिमन' गली है साँकरी, दूजौ ना ठहराहिं।
आपु अहै तो हरि नहीं, हरि तो आपन नाहिं ॥२८॥

शब्दार्थ—साँकरी=तंग। दूजौ=दूसरा। ठहराहिं=ठहरता है। अहै=है। आपु=आपा, अहंकार।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि प्रेम की गली बड़ी साँकरी या तंग है। इसमें दो व्यक्ति एक साथ नहीं ठहर सकते। क्योंकि मनुष्य का जब तक आपा या अहंकार रहता है तब तक उसके हृदय में भगवान् का निवास नहीं हो सकता। और जब भगवान् का निवास हो जाता है तो मन का आपा या अहंकार मिट जाता है, वह प्रभुमय ही हो जाता है। [illegible] [illegible] [illegible]

'रहिमन' बहु भेषज करत, व्याधि न छाँडति साथ।
खग मृग बसत अरोग वन, हरि अनाथ के नाथ ॥२६॥

शब्दार्थ—बहु=बहुत। भेषज=औषधि। व्याधि=रोग। छाँडति=छोड़ती। खग=पक्षी। मृग=हरिण। बसत=रहते हैं। अरोग=नीरोग। अनाथ=जिसका कोई रक्षक न हो।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि लोग यद्यपि बहुत-सी औषधियाँ करते हैं फिर भी रोग उनका पीछा नहीं छोड़ते। इसके विपरीत पक्षी हरिण आदि जीव जगल में भी सदा नीरोग ही रहते हैं, उनकी कभी कोई किसी प्रकार की चिकित्सा नहीं करता, फिर भी उन्हे कोई रोग नहीं सताता। बात तो यह है कि भगवान् अनाथों के भी नाथ हैं, जिसका कोई रक्षक नहीं उसका रक्षक भगवान् ही है। भाव यह है कि जिसका प्रभु रक्षक है उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता और जिसके प्रभु ही प्रतिकूल हैं उसकी कोई रक्षा नहीं कर सकता।

कदली सीप भुजग मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई गुन दीन ॥३०॥

शब्दार्थ—कदली=केला। भुजग=साँप। स्वाति=सत्ताइस नक्षत्रों में से एक नक्षत्र जिसमें वर्षा की बूँद यदि सीप में गिर जाय तो मोती बन जाती है, केले में गिर जाय तो कपूर बन जाता है और साँप के मुख में गिर जाय तो विष बन जाता है।

भावार्थ—स्वाति नक्षत्र का एक ही जल केले में कपूर, सीप में मोती और साँप के मुँह में विष हो जाता है। इस प्रकार वह तीन गुणों वाला हो जाता है। अतः जैसी सगति में बैठोगे वैसे ही गुण आ जायेंगे। भाव यह कि मनुष्य पर सगति का प्रभाव सब से अधिक पड़ता है। मनुष्य को बुरी सगति में नहीं बैठना चाहिए।

रहा नहीं और खर्च ज्यों का त्यों बढता जा रहा है। साथ ही सम्राट् (जहाँगीर) भी हम से असन्तुष्ट हो रहे हैं, ऐसी स्थिति में हमारी दशा थोड़े जल में मछली की सी हो रही है। अत. अब तो हमारा जीवन अत्यन्त कठिन हो गया है। इस दोहे में कवि ने अपनी दु.खी दशा का बड़ा ही सच्चा और करुण चित्र अंकित किया है।

काम कछू आवै नहिं, मोल 'रहीम' न लेइ।
बाजू टूटे बाज को, साहब चारा देइ ॥३४॥

शब्दार्थ—बाजू = बाँह। साहब = भगवान्। चारा = भोजन।

भावार्थ—जिस बाज की बाँहें या पख टूट गये हों वह किसी के कुछ काम नहीं आ सकता, और न कोई उसे मोल ही ले सकता है। ऐसे बाज को—जिसका कोई भी रक्षक नहीं—भगवान् ही भोजन देता है। भाव यह कि भगवान् ही अशरणों के शरण या रक्षक हैं।

अंजन दीन्हे किरकिरी, सुरमा दियो न जाय।
जिन आँखिन सों हरि लखौ, 'रहिमन' बलि बलि जाय ॥३५॥

शब्दार्थ—अजन = सुरमा। लखौ = देखा। बलि बलि जाय = बलिहारी है।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि जिन आँखों से भगवान् को देख लिया उन आँखों में अन्य कोई नहीं समा सकता। यहाँ तक कि यदि अब अंजन भी लगाता हूँ तो आँखों में अब किरकिरी सी लगती है और सुरमा भी नहीं लगाया जाता। भाव यह है कि जिन आँखों से भगवान् को देख लिया, अब और किसी को उन आँखों से देखने की इच्छा नहीं होती।

कहु 'रहीम' केतिक रही, केती गई बिहाइ।
माया ममता मोह परि, अन्त चले पछिताइ ॥३६॥

शब्दार्थ—केतिक = कितनी। गई बिहाइ = बीत गई।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि कितनी उम्र तो बीत गई, और बाकी कितनी-सी रह गई। भाव यह है कि बहुत आयु तो बीत गई बाकी थोड़ी-सी रह गई। फिर भी माया, ममता और मोह में पड़ कर अन्त में पछताते चले जाओगे। अतः जितनी आयु शेष रह गई है उतने ही समय में प्रभु का भजन कर लो, ताकि अन्त में पछताना न पड़े।

कहि 'रहीम' धन बढ़ि घटै, जात धनिन की बात।
घटै-बढ़ै उनको कहा, घास बेचि जे खात ॥३७॥

शब्दार्थ—जात=यह तो। धनिन=धन वाले। जे=जो।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि यह तो धनियों की बात है कि उनके यहाँ कभी धन बढ़ जाता है कभी घट जाता है। पर जो बेचारे घास बेचकर ही अपना निर्वाह करते हैं उनके यहाँ भला क्या कभी धन घटेगा या बढ़ेगा। वे तो सदा एक से ही रहते हैं। भाव यह कि धनवान् को धन के आने और जाने का दुःख लगा रहता है पर गरीब तो सदा एक-से रहते हैं।

करमहीन 'रहिमन' लखौ, धँसो बड़े घर चोर।
चिन्तत ही बड़ लाभ कों, जागत ह्वैगो भोर ॥३८॥

शब्दार्थ—करमहीन=बुरे भाग्यों वाला। लखौ=देखो। धँसो=घुसा। चिन्तत=सोचते हुए। ह्वैगो=हो गया। भोर=प्रातःकाल।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि देखो एक बुरे भाग्यों वाला चोर एक ऐसे बहुत बड़े घर में जा घुसा जिसमें बहुत से बहुमूल्य रत्नादि पदार्थ भरे पड़े थे। वह यह सोचने लगा कि इनमें से कौन-सी चीज़ उठाऊँ कौन-सी न उठाऊँ। यह सोचते-सोचते ही प्रातःकाल हो गया और वह वहाँ से कुछ भी न उठा सका। भाव यह कि अधिक लोभी मनुष्य को कुछ भी नहीं मिलता।

खैर खून खाँसी खुसी, वैर प्रीति मदपान।
'रहिमन' दाबैं ना दबैं, जानत सकल जहान॥३६॥

शब्दार्थ—खैर = कत्था। खून = किसी की हत्या करना। प्रीति = प्रेम। मदपान = शराब पीना। सकल = सारा। जहान = संसार।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि पान पर लगे हुए कत्थे की लाली, किसी की हत्या, खाँसी, खुशी, किसी के साथ शत्रुता या मित्रता और शराब का पीना ये सातों बातें छिपाये से कभी नहीं छिप सकतीं, इन्हें सारा संसार जान ही जाता है। भाव यह कि दो व्यक्तियों के पारस्परिक प्रेम या शत्रुता अथवा कोई किसी की हत्या कर आये, या शराब पी आये या पान खाया हुआ हो इन सब बातों का लोगों को अपने आप पता लग जाता है। ये बातें कभी नहीं छिप सकतीं।

कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम।
काकी महिमा नहिं घटी, पर-घर गए 'रहीम'॥४०॥

शब्दार्थ—जलधि = समुद्र। धीम = कम, मन्दा। भो = हो गया। काकी = किसकी। महिमा = बड़ाई। पर-घर = दूसरे का घर।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि गंगा अपने से बड़े समुद्र के पास इस आशा से गई होगी कि बड़े आदमी के पास जाने से कुछ लाभ होगा, पर भला उसे समुद्र में मिल कर क्या बड़ाई मिली—कुछ भी तो नहीं मिली। बड़ाई मिलना तो दूर रहा उसका नाम कम या नष्ट हो गया। क्योंकि गंगा जहाँ समुद्र में मिलती है वहाँ उसका नाम 'गंगा-सागर' पड़ जाता है। बात तो यह है कि दूसरे के घर जाने पर किसकी महिमा कम नहीं हो जाती अर्थात् सबकी हो जाती है। चाहे कोई कितना ही बड़ा क्यों न हो यदि वह दूसरे के घर जायगा तो उसका सम्मान कम हो ही जायगा।

'रहिमन' जिह्वा बावरी, कहि गइ सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर गई, जूती खात कपाल॥४१॥

शब्दार्थ—जिह्वा = जीभ। सरग = आकाश। कपाल = सिर।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि जीभ स्वयं तो ऊँची-नीची बातें कह कर मुँह में जा छिपती है, किन्तु उसके कारण जूतियाँ बेचारे सिर को खानी पड़ती हैं। भाव यह कि मनुष्य के मुख से यदि कुछ अनुचित बात निकल जाय तो लोग उसे जूतियों से पीटते हैं। अतः कोई अनुचित बात नहीं कहनी चाहिए।

कहु 'रहीम' कैसे बने, बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग॥४२॥

शब्दार्थ—केर = केला। रस = आनन्द। डोलत = हिलता है।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि केले और बेरी का साथ भला कैसे निभ सकता है क्योंकि काँटेदार बेरी तो अपने आनन्द में मग्न होकर हवा से झूमती है पर उसकी कटीली शाखाओं से उस बेचारे के साथ में उगे हुए केले के कोमल अंग (पत्ते) आदि फट जाते हैं। भाव यह है कि दुष्ट और सज्जन का साथ कभी नहीं निभ सकता। दुष्ट तो अपनी दुष्ट प्रकृति के कारण शरारतें करता है, पर उनसे सज्जन का बड़ा भारी अहित हो जाता है।

कहि 'रहीम' सम्पति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
विपति कसौटी जो कसे, तेई साँचे मीत॥४३॥

शब्दार्थ—सम्पति = धन। सगे = सम्बन्धी। बहु रीत = बहुत प्रकार से। मीत = मित्र।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि सम्पत्ति में तो मनुष्य के कई लोग कई प्रकार से सम्बन्धी बन जाते हैं पर विपत्ति रूपी कसौटी में जो कसे

जाते हैं वे ही सच्चे मित्र हैं। भाव यह है कि जब हमारे पास खूब रुपये-पैसे होते हैं तब दूर-दूर के सम्बन्धी भी हमारे अपने बन जाते हैं और जब दुःख के दिन आते हैं तब अपने सगे-सम्बन्धी भी पराये बन जाते हैं। इसलिए जो विपत्ति के समय में साथ दे वे ही सगे-सम्बन्धी तथा सच्चे मित्र हैं।

जो गरीब पर हित करैं, ते 'रहीम' बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरौ, कृष्ण मिताई जोग ॥४४॥

शब्दार्थ—हित = प्रेम। बापुरौ = बेचारा। मिताई = मित्रता। जोग = योग्य।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि जो लोग गरीबों से प्रेम करते हैं वास्तव में वे ही बड़े लोग हैं। भला बेचारा सुदामा कृष्ण की मित्रता के योग्य कहाँ था, फिर भी भगवान् कृष्ण ने उसे अपना मित्र बना कर अपना बड़प्पन ही दिखाया। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह गरीबों के साथ प्रेम का व्यवहार करे।

जेहि अंतर दीपक दुरो, हन्यो सो ताही गात।
'रहिमन' असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात ॥४५॥

शब्दार्थ—जेहि = जिसके। अन्तर = अन्दर। दुरो = छिपा। हन्यो = मारा। ताहि = उसी के। गात = शरीर। असमय = बुरा समय ह्वै जात = हो जाते हैं।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि जिस आँचल के अन्दर छिप कर दीपक हवा से अपनी रक्षा करता है, वही आँचल दीपक को बुझा भी देता है। बात तो यह है कि जब बुरा समय आता है तो मित्र भी शत्रु हो जाता है।

जैसी परे सो सहि रहै, कहि 'रहीम' यह देह।
धरती ही पर परत सब, सीत घाम अरु मेह ॥४६॥

शब्दार्थ—सीत=ठंड । घाम=धूप ।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि इस शरीर पर जैसी जैसी परिस्थितियाँ आती हैं उन सबको यह सह लेता है । अर्थात् यदि इस शरीर को कष्ट सहने का अभ्यासी बना लिया जाय तो यह धूप वर्षा आदि के कष्ट अनायास सह लेता है । और यदि इस शरीर को सुख और आराम में रहने का अभ्यासी बनाया जाय तो यह कष्ट सहन नहीं कर सकता । भाव यह है कि इस शरीर को जैसा बनाया जाय वैसा ही बन जाता है, जैसे कि ठंड, धूप और वर्षा ये सब पृथ्वी पर ही पड़ते हैं, पृथ्वी इन सब को सह लेती है ।

जो 'रहीम' उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग ।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ॥४७॥

शब्दार्थ—उत्तम प्रकृति=अच्छे स्वभाव वाले । कुसङ्ग=बुरी सगति । विष=जहर । व्यापक=फैलता । भुजंग=साँप ।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि यदि मनुष्य स्वयं अच्छे स्वभाव वाला है तो बुरी संगति से उसका कुछ भी नहीं बिगड़ सकता । जैसे कि चन्दन के वृक्ष पर चाहे साँप भी लिपटे रहते हैं फिर भी उसका वे कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते, उसे जहरीला नहीं बना सकते । भाव यह कि मनुष्य को अपना आचरण ठीक रखना चाहिए, फिर बुरी संगति का उस पर कुछ प्रभाव नहीं होगा ।

जो पुरुषारथ ते कहूँ, सम्पति मिलती 'रहीम' ।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम ॥४८॥

शब्दार्थ—पुरुषारथ=उद्योग । बैराट=विराट् राजा ।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि यदि भाग्य [illegible] न होता और उद्योग से ही धन मिलता होता तो बड़े [illegible] भीमसेन को विराट

जाते है वे ही सच्चे मित्र हैं। भाव यह है कि जब हमारे पास खूब रुपये-पैसे होते हैं तब दूर-दूर के सम्बन्धी भी हमारे अपने बन जाते हैं और जब दुःख के दिन आते हैं तब अपने सगे-सम्बन्धी भी पराये बन जाते हैं। इसलिए जो विपत्ति के समय में साथ दे वे ही सगे-सम्बन्धी तथा सच्चे मित्र है।

जो गरीब पर हित करैं, ते 'रहीम' बड लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग ॥४४॥

शब्दार्थ—हित = प्रेम। बापुरो = बेचारा। मिताई = मित्रता। जोग = योग्य।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि जो लोग गरीबों से प्रेम करते हैं वास्तव में वे ही बड़े लोग हैं। भला बेचारा सुदामा कृष्ण की मित्रता के योग्य कहाँ था, फिर भी भगवान् कृष्ण ने उसे अपना मित्र बना कर अपना बड़प्पन ही दिखाया। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह गरीबो के साथ प्रेम का व्यवहार करे।

जेहि अंतर दीपक दुरो, हन्यो सो ताही गात।
'रहिमन' असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात ॥४५॥

शब्दार्थ—जेहि = जिसके। अन्तर = अन्दर। दुरो = छिपा। हन्यो = मारा। ताहि = उसी के। गात = शरीर। असमय = बुरा समय ह्वै जात = हो जाते हैं।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि जिस आँचल के अन्दर छिप कर दीपक हवा से अपनी रक्षा करता है, वही आँचल दीपक को बुझा भी देता है। बात तो यह है कि जब बुरा समय आता है तो मित्र भी शत्रु हो जाता है।

जैसी परे सो सहि रहै, कहि 'रहीम' यह देह।
धरती ही पर परत सब, सीत घाम अरु मेह ॥४६॥

'रहिमन' रहिबो वाँ भलो, जौलौं सील समूच।
सील ढील जब देखिये, तुरत कीजिए कूच ॥५१॥

शब्दार्थ—वाँ=वहाँ। सील=सुशीलता। समूच=पूरा। कूच=प्रस्थान।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि मनुष्य को वहाँ तब तक ही रहना चाहिए जब तक कि मनुष्य का आदर बना रहे, जब आदर नष्ट हो जाय तो तत्काल वहाँ से प्रस्थान कर देना चाहिए। भाव यह कि जहाँ मनुष्य का आदर न हो तो वहाँ क्षण भर भी नहीं ठहरना चाहिए।

टूटे सुजन मनाइये, जो टूटै सौ बार।
'रहिमन' फिरि फिरि पहरिए, टूटे मुकता हार ॥५२॥

शब्दार्थ—मुकता=मोती।

भावार्थ—सज्जन मित्र से यदि किसी कारणवश मित्रता टूट भी जाय तो भी उसे मना लेना चाहिए। जैसे कि मोतियों का हार चाहे कितनी ही बार टूट जाय, उसे बार-बार पिरो लिया जाता है, उसे फेंक नहीं दिया जाता।

पात पात को सींचिबो, बरी बरी को लौन।
'रहिमन' ऐसी बुद्धि तें, काज सरैगौ कौन ॥५३॥

शब्दार्थ—पात=पत्ता। काज=काम। सरैगौ=बनेगा।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि वृक्ष के एक एक पत्ते के सींचने और एक-एक बड़ी में अलग-अलग नमक डालने से भला कैसे काम चल सकता है। भाव यह कि जहाँ समूह की रक्षा करनी हो, वहाँ अलग-अलग एक-एक व्यक्ति के लिए विचार करने से कैसे काम चल सकता है!

'रहिमन' देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवै सुई, कहा करै तरवारि ॥५४॥

राजा के घर रसोई क्यों बनानी पड़ती !

भाव यह है कि भीम अत्यन्त बलवान् था फिर भी अज्ञातवास के समय उसको विराट् राजा के घर में रसोइये का काम करना पड़ा था। यदि भाग्य कुछ वस्तु न होता और उद्योग से काम चलता होता तो भीम अपने उद्योग से तत्काल राज्य प्राप्त कर लेते और ऐसा छोटा काम कदापि न करते। अत सिद्ध होता है कि उद्योग से भाग्य प्रबल है।

जो 'रहीम' विधि बड़ किए, को कहि दूषन काढ़ि।
चन्द्र दूबरो कूबरो, तऊ नखत तें बाढ़ि ॥४६॥

शब्दार्थ—विधि=विधाता। दूषन=दोष। काढ़ि=निकालना। दूबरो=दुबला। कूबरो=कुबड़ा। नखत=तारे। बाढ़ि=बढ़कर।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि विधाता ने यदि किसी को बड़ा बना दिया तो उसमें भला कोई कैसे दोष निकाल सकता है। जैसे कि—द्वितीया का चन्द्रमा पतला, दुबला और कुबड़ा भी होता है तो भी तारों से तो बढ़कर ही होता है। भाव यह कि चन्द्रमा को विधाता ने बड़ा बना दिया है। अब वह चाहे छोटा-सा और दुबला-पतला भी क्यों न हो उसे तारों से तो श्रेष्ठ ही माना जाता है।

'रहिमन' आटा के लगे, बाजत है दिन रात।
घिउ सक्कर जो खात हैं, तिनके कहा बिसात ॥५०॥

शब्दार्थ—घिउ=घी। बिसात=सामर्थ्य, ताकत।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि तबला आटे के लगने से ही दिन-रात बजता रहता है, जो लोग घी-शक्कर खाते रहते हैं उनकी ताकत तो कहना ही क्या। भाव यह है कि तबले पर आटा लगने से जिस प्रकार उसकी ध्वनि बढ़ जाती है और वह दिन-रात बजता रहता है उसी प्रकार जिस पुरुष को शक्कर और घी खाने को मिलता है उसकी शक्ति भी बढ़ जाती है।

'रहिमन' रहिबो वाँ भलो, जौलों सील समूच।
सील ढील जब देखिये, तुरत कीजिए कूच ॥५१॥

शब्दार्थ—वाँ=वहाँ। सील=सुशीलता। समूच=पूरा। कूच=प्रस्थान।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि मनुष्य को वहाँ तब तक ही रहना चाहिए जब तक कि मनुष्य का आदर बना रहे, जब आदर नष्ट हो जाय तो तत्काल वहाँ से प्रस्थान कर देना चाहिए। भाव यह कि जहाँ मनुष्य का आदर न हो तो वहाँ क्षण भर भी नहीं ठहरना चाहिए।

टूटे सुजन मनाइये, जो टूटे सौ बार।
'रहिमन' फिरि फिरि पहरिए, टूटे मुकता हार ॥५२॥

शब्दार्थ—मुकता=मोती।

भावार्थ—सज्जन मित्र से यदि किसी कारणवश मित्रता टूट भी जाय तो भी उसे मना लेना चाहिए। जैसे कि मोतियों का हार चाहे कितनी ही बार टूट जाय, उसे बार-बार पिरो लिया जाता है, उसे फेंक नहीं दिया जाता।

पात पात को सींचिबो, बरी बरी को लौन।
'रहिमन' ऐसी बुद्धि तें, काज सरैगो कौन ॥५३॥

शब्दार्थ—पात=पत्ता। काज=काम। सरैगो=बनेगा।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि वृक्ष के एक एक पत्ते के सींचने और एक-एक बरी में अलग-अलग नमक डालने से भला कैसे काम चल सकता है। भाव यह कि जहाँ समूह की रक्षा करनी हो, वहाँ अलग-अलग एक-एक व्यक्ति के लिए विचार करने से कैसे काम चल सकता है!

'रहिमन' देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करै तरवारि ॥५४॥

शब्दार्थ—लघु=छोटा। न दीजिए डारि=फेंक न दीजिए। तरवारि=तलवार।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि बड़े आदमियों को देखकर छोटे आदमी को निकाल मत दीजिए, जैसे कि जहाँ सुई की आवश्यकता हो वहाँ भला तलवार क्या काम आयेगी ! भाव यह कि किसी भी व्यक्ति को छोटा समझ कर उसका अपमान नहीं करना चाहिए, क्योंकि छोटे व्यक्तियों के बिना भी बड़े-बड़े काम अटक जाते हैं।

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोइ।
'रहिमन' बिगरे दूध के, मथे न माखन होइ ॥५५॥

शब्दार्थ—किन=क्यों नहीं।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि कोई लाख उपाय क्यों न कर डाले जो बात एक बार बिगड़ जाती है, वह फिर बन नहीं सकती। जैसे कि फटे हुए दूध को मथने से मक्खन नहीं निकल सकता।

'रहिमन' छोटे नरन सों, होत बडो नहिं काम।
मढ़ो दमामो नहिं बनै, सौ चूहे के चाम ॥५६॥

शब्दार्थ—नर=मनुष्य। दमामो=नगारा।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि छोटे आदमियों से कभी बड़ा काम नहीं हो सकता। जैसे कि चाहे सैकड़ों चूहों की खालें इकट्ठी कर लो, फिर भी एक भी नगारा नहीं मढ़ा जा सकता। भाव यह कि बड़े काम बड़े लोगों से ही हो सकते हैं।

'रहिमन' वे नर मर चुके, जे कछु माँगन जाहिं।
उनते पहिले वे मरे, जिन मुख निकसत नाहिं ॥५७॥

शब्दार्थ—निकसत=निकलता है।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि जब कोई मनुष्य किसी से कुछ

मांगने जाता है तो वह उसी समय मर जाता है. पर उससे भी पहले वह मर जाता है, जिसके पास वस्तु के होते हुए भी मुख से 'नहीं' शब्द निकल जाता है। अर्थात् जो मांगने वाले को अपने पास चीज के रहते हुए भी इन्कार कर देता है, उसे मांगने वाले से भी पहले ही मरा हुआ समझो। भाव यह कि मांगना तो बुरा है ही, पर घर में वस्तु के रहते हुए भी आवश्यकता के समय दूसरे को न देना उससे भी बुरा है।

निज कर क्रिया 'रहीम' कहि, सुधि भावी के हाथ।
पाँसे अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥५८॥

शब्दार्थ—निज=अपने। कर=हाथ। क्रिया=कार्य। भावी=होनहार, भाग्य।

भावार्थ—मनुष्य के हाथ में तो कार्य करना ही है उसका फल प्राप्त करना उसके वश में नहीं। फल देना तो भाग्य के हाथ में है। जैसे कि खिलाड़ी के हाथ में पासे तो होते हैं, पर दाव नहीं होता। वह पासे फेंक सकता है, पर यह कभी नहीं हो सकता कि दाव भी अवश्य उसकी इच्छानुसार ही आ जाए। भाव यह कि मनुष्य को कर्म करते रहना चाहिए उसका फल स्वयं प्राप्त हो जायगा।

धूरि धरत निज सीस पै, कहु 'रहीम' केहि काज।
जेहि रज मुनिपतनी तरी, सो ढूँढत गजराज ॥५९॥

शब्दार्थ—सीस=सिर। केहि काज=किसलिए। रज=धूलि। मुनिपतनी=गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या। गजराज=हाथी।

भावार्थ—हाथी का स्वभाव है कि वह अपने [illegible] के लिए अपने सिर पर धूल डालता रहता है. इस प्रकार [illegible], हाथी को अपने सिर [illegible] [illegible] [illegible] देते हुए [illegible] ([illegible]) [illegible]

धूल को ढूँढता फिरता है, जिससे गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या का उद्धार हो गया था। भाव यह कि जिन भगवान् राम के चरणों की धूल से शिला बनी हुई अहल्या का उद्धार हो गया था, यह हाथी उसी धूल को ढूँढ रहा है कि कहीं वह धूल पड़ी हो और मेरे सिर पर भी पड़ जाय, तो मेरा भी उद्धार हो जाय। इसीलिए यह स्थान-स्थान की धूल सूँड में भर-भर कर अपने सिर पर डालता रहता है।

यों 'रहीम' सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि, आँखिन को सुख होत ॥६०॥

शब्दार्थ—निज गोत = अपनी जाति। बड़री = बड़ी-बड़ी। निरखि = देखकर।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि अपनी जाति वालों को बढ़ता देखकर सभी को इस प्रकार प्रसन्नता होती है, जैसे कि किसी सुन्दरी की बड़ी-बड़ी आँखों को देखकर आँखों को अत्यन्त प्रसन्नता होती है। जिसकी बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखें होती हैं, उसे देखकर देखने वाले की आँखें प्रसन्न हो जाती हैं। इसी आधार पर यह दोहा कहा गया है।

पाँच रूप पाण्डव भए, रथवाहक नलराज।
दुरदिन पड़े 'रहीम' कहि, बड़न किए घटि काज ॥६१॥

शब्दार्थ—रथवाहक = रथ चलाने वाले। दुरदिन = बुरे दिन। घटि काज = छोटे काम।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि बुरे दिन आने पर बड़ों-बड़ों को छोटे काम करने पड़ जाते हैं। जैसे कि अज्ञातवास के समय युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव इन पाँचों पाण्डवों को पाँच भिन्न-भिन्न रूपों में छिपकर रहना पड़ा था और महाराज नल को रथवान् बनना पड़ा था। जब पाँचों पाण्डवों और राजा नल जैसे बड़े आदमियों को भी बुरे दिन आने पर ऐसे छोटे काम करने पड़ गये तो दूसरों का तो कहना ही

क्या। उन्हें तो जो भी कुछ करना पड़ जाय, वही धर्म है।

> मान सहित विष खाय के, संभु भये जगदीस।
> बिन आदर अमृत भख्यौ, राहु कटायो सीस॥६२॥

शब्दार्थ—संभु=शम्भु, भगवान् शंकर। विष=ज़हर। जगदीस=जगत् भर के स्वामी। भख्यौ=खा लिया।

भावार्थ—समुद्र-मथन से निकले हुए विष को देवताओं की प्रार्थना पर उनके कल्याण के लिए आदरपूर्वक पीकर भगवान् शंकर तो जगदीश अर्थात् संसार भर के स्वामी बन गये, पर इसके विपरीत राहु ने बिना आदर के अमृत पीकर भी अपना सिर कटवा लिया। भाव यह कि यदि कोई आदरपूर्वक तुच्छ वस्तु भी दे तो बड़े प्रेम से ले लेनी चाहिए। इसके विपरीत यदि बिना आदर के कोई अच्छी वस्तु भी प्राप्त होती हो तो नहीं लेनी चाहिए, क्योंकि उससे मनुष्य का स्वाभिमान नष्ट हो जाता है।

> भलो भयो धर ते छुट्यौ, हँस्यो सीस परि खेत।
> काके काके नवत हम, अधम पेट के हेत॥६३॥

शब्दार्थ—धर=धड़, शरीर का सिर से नीचे का भाग। खेत=युद्ध-क्षेत्र। काके=किसके। अधम=नीच। हेत=लिए।

भावार्थ—युद्ध-भूमि में जब वीरों के सिर तलवार की धार से कट कर गिरते हैं तो वे गिरते ही हँसते हैं—यह एक स्वाभाविक धर्म है। इस पर कल्पना करता हुआ कवि कहता है कि—युद्ध-भूमि में धड़ से अलग कट कर गिरा हुआ सिर मानो अपने मन में यह सोचकर ही प्रसन्न होकर हँसता है कि बहुत अच्छा हुआ जो मैं इस धड़ से अलग हो गया; क्योंकि इस नीच पेट के लिए मुझे न जाने किस-किस के सामने झुकना पड़ता था। यदि यह पेट साथ न हो तो सिर को किसी के सामने न झुकना पड़े। इस पेट को पालने के लिए मनुष्य न जाने किस-किस के सामने अपना सिर झुकाता है।

'रहिमन' घरिया रहँट कहँ, त्यों ओछे कै दीठि।
रीतहि सम्मुख होति है, भरी दिखावै पीठि ॥६४॥

शब्दार्थ—घरिया=रहँट की घड़ियाँ, टिंडें। दीठि=दृष्टि, नजर। रीतहि=खाली। सम्मुख=सामने।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि नीच आदमियों की दृष्टि रहँट की घड़ियों के समान होती है, क्योंकि जब रहँट की घड़ियाँ खाली होती हैं तब तो पानी की ओर उनका मुँह होता है, पर जब पानी से भर जाती हैं तो पानी की ओर उनकी पीठ हो जाती है और मुँह ऊपर को हो जाता है। इसी प्रकार नीच पुरुष को भी जब किसी वस्तु की आवश्यकता होती है तब तो वह हजार बार आपके सम्मुख उपस्थित होगा, पर जब उसका काम निकल जाय तो फिर आपको पीठ दिखाकर निकल जायगा, पूछेगा भी नहीं कि तुम कौन होते हो।

मनि मानिक महँगे किये, सस्ते तृन जल नाज।
'रहिमन' यातें कहत हैं, राम गरीबनेवाज ॥६५॥

शब्दार्थ—मनि-मानिक=हीरे ज़वाहरात आदि। तृन=घास। नाज=अन्न। गरीबनेवाज=दीनदयालु।

भावार्थ—रहीमजी कहते हैं कि उस प्रभु ने केवल राजा-महाराजाओं और धनिकों के काम आने वाले हीरे-जवाहरात आदि पदार्थ तो बहुत मँहगे बनाये हैं, पर सब प्राणियों के काम में आनेवाले जल, अन्न और घास आदि को बहुत सस्ता बनाया है, इसीलिए तो उस प्रभु को गरीबनिवाज़ अर्थात् दीनदयालु कहा जाता है। यही तो उसकी दीन दयालुता है कि उसने जन-सामान्य के काम आने वाले अन्न-घास आदि पदार्थ खूब और बहुत सस्ते बनाये हैं।

थोथे बादर क्वार के, ज्यों रहीम घहरात।
धन प निरधन भये, करैं पीछली बात ॥६६॥

शब्दार्थ—थोथे=जल से खाली हुए। बादर=बादल। क्वार=आश्विन महीना। निरधन=गरीब।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि जिस प्रकार पानी बरस कर खाली हुए आश्विन मास के बादल खूब जोर-जोर से गर्जते हैं, उसी प्रकार यदि कोई धनवान् व्यक्ति किसी कारणवश यदि निर्धन हो जाय तो वह अपने पिछले दिनों की बातें किया करता है कि हम पहले ऐसे थे।

देनहार कोउ और है, भेजत सो दिन रैन।
लोग भरम हम पै धरें, याते नीचे नैन ॥६७॥

शब्दार्थ—देनहार=देने वाला। रैन=रात्रि। याते=इसलिए।

भावार्थ—रहीम जी बड़े दानी थे। वे जब किसी को कुछ दान देते तो उनकी आँखें नीचे को झुक जातीं। इस पर एक कवि ने पूछा कि—

'सीखे कहाँ नवाब जू, ऐसी देनी देन।
ज्यों ज्यों कर ऊँचो उठै त्यों त्यों नीचे नैन॥'

इसके उत्तर में खानखाना ने उक्त दोहा कहा था—

रहीम जी कहते हैं कि वास्तव में देने वाला तो कोई और ही है अर्थात् प्रभु है जो दिन-रात मेरे पास दान देने के लिए रुपया भेजता रहता है। पर लोग भ्रम से यह समझते हैं कि मैं देता हूँ। इसलिए शर्म के मारे देते समय मेरी आँखें झुक जाती हैं।

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़े न बोलें बोल।
'रहिमन' हीरा कब कहै, लाख टका है मोल ॥६८॥

शब्दार्थ—टका=रुपया।

भावार्थ—बड़े आदमी अपने मुँह से अपनी बड़ाई नहीं किया करते [illegible]
[illegible]
[illegible]

गुणी होगा वह चाहे अपने मुँह से कहे या न कहे गुणज्ञ जन उसके गुणों को स्वयं पहचान लेंगे।

चरन छुए मस्तक छुए, तऊँ न छाड़त पानि।
हियो छुवत प्रभु छाड़ि पै, कहु 'रहीम' का जानि ॥६९॥

शब्दार्थ—चरन=पाँव। हियो=हृदय।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि भक्त यदि भगवान् के चरणों को अपने हाथों से या मस्तक से स्पर्श कर लेता है तो भी वे उसका साथ नहीं छोड़ते, तो फिर इसका तो कहना ही क्या कि कोई भगवान् को अपने हृदय से स्पर्श करले अर्थात् अपनी हार्दिक श्रद्धा के द्वारा भगवान् के हृदय मे स्थान बना ले तो फिर भला वे भक्त को कैसे छोड़ सकते है अर्थात् हृदय से भगवान् का स्मरण करने पर भगवान् भक्त को कभी नहीं छोड़ते वे सदा उसे अपनी शरण ही में रखते हैं।

जो 'रहीम' गति दीप की, सुत सपूत की होइ।
बढ़े उजेरो तेहि रहै, गये अन्धेरो होइ ॥७०॥

शब्दार्थ—गति=अवस्था। दीप=दिया, दीपक।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि जो दीपक की दशा होती है वही कुल में सुपुत्र की होती है, क्योंकि जब तक दीपक और सुपुत्र घर में रहता है तब तक तो प्रकाश रहता है और जब यह घर से चले जाता है तो अन्धकार हो जाता है।

'रहिमन' मैं या पेट सों, बहुत कहेउँ समुझाइ।
जो तू अनखायै रहैं, कम कोऊ अनखाइ ॥७१॥

शब्दार्थ—अनखायै=विना खाये। अनखाइ=झुँझुलाना, क्रुद्ध होना।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि मैंने इस पेट को बहुत समझा कर

कहा कि यदि तू बिना खाये रह जाय तो तुझ पर दूसरा कोई क्यों नाराज़ हो। इस पापी पेट के कारण ही मनुष्य को दूसरों का क्रोध भी सहना पड़ता है।

> घर डर गुरु डर बंस डर, डर लज्जा डर मान।
> डर जेहि के जिय मे बसे, तिन पाया 'रहिमान' ॥७२॥

शब्दार्थ—रहिमान=प्रभु।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं जिसके हृदय में अपने घर वालों का भय है, वंश और जाति वालों का भय है, सदा अपनी लाज और मान-मर्यादा को बचाने का भय रहता है, वास्तव में वही भगवान को प्राप्त कर सकता है। भाव यह कि जो मनुष्य सदा इस बात का ध्यान रखता है कि मैं ऐसी कोई बुरी बात न करूँ जिससे मेरे घर वाले, कुल वाले या जाति वाले नाराज हो जायें या उनकी बदनामी हो वही प्रभु को प्राप्त कर सकते हैं।

> तनु 'रहीम' है कर्मबस, मन राखो वहि ओर।
> जल में उलटी नाव ज्यों, खैंचत गुन के जोर ॥७३॥

शब्दार्थ—कर्मबस=कर्मों के वश में। गुन=रस्सी।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि शरीर तो कर्मों के अधीन है इसलिए अपने मन को भी उसी ओर लगाये रखो। जैसे कि रस्सा के जोर से पानी में नाव को प्रवाह के विरुद्ध भी खींच कर ले जाते हैं। (नदी का बहाव नीचे की ओर जा रहा हो और नाव को ऊपर ले जाना पड़े तो उसके रस्सा, बांध दी जाती है और किनारे पर चल कर उसे खींच कर ले जाते हैं।)

> बसि कुसंग चाहत कुसल, यह 'रहीम' अफसोस।
> महिमा घटी समुद्र की, रावन बसे पड़ोस ॥७४॥

शब्दार्थ—कुसङ्ग=बुरी सङ्गति। महिमा=बड़ाई।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि हमें इसी बात का बड़ा दुःख है कि कई मनुष्य बुरी संगति में रह कर भी अपना कल्याण चाहते हैं अर्थात् जो मनुष्य बुरी संगति में रहेगा उसका कभी कल्याण नहीं होगा। जैसे कि रावण के समीप रहने के कारण अपार समुद्र भी बाँधा गया। उसकी महिमा कम हो गई। भाव यह कि बुरों के साथ रहने से कुछ न कुछ अवश्य बुरा फल मिलता है।

'रहिमन' धागा प्रेम को, मति तोरी चटकाई।
टूटे ते फिरि ना मिले, मिलै गाँठि परि जाई ॥७५॥

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि प्रेम के धागे को एकदम चटका के मत तोड़ डालो क्योंकि यदि इसे इस प्रकार सहसा तोड़ डालोगे तो यह फिर नहीं जुड़ सकेगा। और यदि किसी प्रकार जुड़ भी गया तो गाँठ अवश्य पड़ेगी। मन में पहले जैसा प्रेम कभी न रहेगा।

'रहिमन' रिस को छाँडिकै, करौ गरीबी भेस।
मीठे बोलौ नै चलौ, सबै तुम्हारो देस ॥७६॥

शब्दार्थ—रिस=क्रोध। नै चलौ=नम्र होकर चलो।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि क्रोध को छोड़कर ग़रीबी का वेश धारण कर लो। मधुर वचन बोलो। नम्रतापूर्वक चलो या व्यवहार करो। इस प्रकार के आचरण से सारा संसार ही तुम्हारा हो जायगा। भाव यह कि नम्रता से तुम सारे संसार को अपने अधीन कर सकते हो।

जो 'रहीम' होती कहूँ, प्रभु-गति अपने हाथ।
तौ कौधौं केहि मानतो, आप बढाई साथ ॥७७॥

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि यदि भगवान् की गति मनुष्य के अपने हाथ में होती तो इस संसार में कौन किसका मान करता। सब

अपनी-अपनी बड़ाई आप ही किया करते, कोई किसी को न पूछता।

सदा नगारो कूच कर, बाजत आठो याम।
'रहिमन' या जग आइ कै, को करि रहा मुकाम ॥७८॥

शब्दार्थ—कूच=प्रस्थान (यहाँ पर इसका अर्थ संसार से प्रस्थान है)। याम=पहर (३ घण्टे)। को=कौन।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि सदा आठो पहर इस संसार से विदा होने का—मौत का—नगारा बजता रहता है। बात तो यह है कि संसार में आकर भला किसने यहाँ अपना स्थायी निवास बनाया है अर्थात् कोई भी तो यहा सदा नहीं रह सका। भाव यह कि मनुष्य के सिर पर सदा मृत्यु की छाया मँडराती रहती है, अत. उसे सदा शुभ कर्म करने चाहिएँ।

समय परे ओछे वचन, सब के सहइ 'रहीम'।
सभा दुसासन पट गहे, गदा रहे गहि भीम ॥७६॥

शब्दार्थ—पट=वस्त्र। गहे=पकड़े।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि समय देखकर सब लोगों के बुरे वचन भी सह लो। जैसे दुःशासन ने द्रौपदी का भरी सभा में वस्त्र खींच लिया, पर भीम गदा को हाथ में पकड़े रहकर भी चुपचाप ही बैठे रहे और उन दुष्टों को दण्ड देने के लिए कुछ भी चेष्टा नहीं की। भाव यह कि समय पर धैर्य के साथ काम लेना चाहिए।

वहै प्रीति नहि रीति वह, नहीं पाछलो हेत।
घटत-घटत 'रहिमन' घटै, ज्यों कर लीन्हे रेत ॥८०॥

शब्दार्थ—हेत=प्रेम। कर=हाथ।

भावार्थ—दुष्ट पुरुषों का प्रेम सदा एक सा नहीं रहता। दुष्ट मनुष्य बीतने के पश्चात् उनका न तो पहले जैसा प्रेम ही रहता है और न वैसी

रीति या स्वागत-सत्कार की भावना ही रहती है। जैसे हाथ की मुट्ठी में ली गई रेत धीरे-धीरे घट जाती है वैसे ही दुष्टों का प्रेम भी धीरे-धीरे घट जाता है।

दोहा दीरघ अर्थ के, आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट-कुण्डली, सिमिटि कूदि कढि जाहिं ॥८१॥

शब्दार्थ—दीरघ=बड़ा। आखर=अक्षर। आहिं=हैं या आते हैं। कुण्डली=गोल चक्कर। सिमिटि=इकट्ठा होकर।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि दोहे में अक्षर तो बहुत कम होते हैं पर उसका अर्थ बहुत बड़ा होता है, जैसे कि नट एक छोटे से गोल घेरे में से इकट्ठा होकर, कूद कर निकल जाता है। जैसे इतना बड़ा आदमी छोटे से छिद्र में से निकल जाता है वैसे ही छोटे दोहे में भी बड़ा भारी अर्थ समाया रहता है। भाव यह कि रहीम जी के दोहे देखने में तो छोटे हैं पर इनका अर्थ बड़ा गम्भीर और महत्त्वपूर्ण है।

बडे दीन को दुख सुने, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती, कहु 'रहीम' पहिचानि ॥८२॥

शब्दार्थ—दीन=गरीब। उर=हृदय।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि बड़े आदमी ग़रीबों के दुःख की बात सुन कर अपने हृदय में उनके प्रति दयालु हो जाते हैं। जैसे कि ग्राह के द्वारा पानी में खींचे जा रहे हाथी और भगवान् विष्णु की भला पहले कौन-सी पहचान थी जो वे उसकी पुकार सुन कर उसकी रक्षा के लिए सहसा दौड पड़े। भाव यह कि महापुरुष वे ही हैं जो दीन-दुखियों की पुकार सुन कर उनके दु:ख दूर करने को प्रस्तुत रहें।

पुरुष तो पूजें चोहरा, तिय पूजें रघुनाथ।
कहु 'रहीम' कैसे बने, भैंस-बैल को साथ ॥८३॥

शब्दार्थ—चौहरा=देवालय। तिय=स्त्री। रघुनाथ=रामचन्द्र।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि बहुत से घरों में स्त्रियाँ कुछ और ही विचार रखती हैं, पुरुष कुछ और ही। जैसे कि पुरुष तो देवालय में जाकर भगवान् शिव की पूजा करते हैं और उनकी स्त्रियाँ रामचन्द्र जी की पूजा करती हैं। इसी प्रकार भैंस तथा बैल का साथ कैसे निभ सकता है! भाव यह है कि स्त्री और पुरुष दोनों को एक ही विचारों का होना चाहिए।

नैन सलोने अधर मधु, कहु 'रहीम' घटि कौन।
मीठो भावै लोन पर, मीठे ऊपर लोन ॥८४॥

शब्दार्थ—सलोने=नमकीन, सुन्दर। अधर=होंठ। मधु=मीठे।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि आँखें सलोनी अर्थात् नमकीन या सुन्दर हैं और ओठ मधुर हैं। इन दोनों में से कौन किससे कम है। दोनों ही अपने-अपने स्थान पर उत्कृष्ट हैं। जैसे मीठी वस्तु खाने के बाद नमकीन चीज अच्छी लगती है तथा नमकीन वस्तु खाने के बाद मीठी अच्छी लगती है।

धन थोरो इज्जति बड़ी, कहु 'रहीम' की बात।
जैसे कुल की कुलवधू, चिथरन माँहि समात ॥८५॥

शब्दार्थ—थोरो=थोड़ा, कम। इज्जति=इज्जत, मान। कुलवधू=भलेमानसों की बहू। चिथरन=चिथड़े, फटे-पुराने कपड़े।

भावार्थ—धन तो थोड़ा है पर इज्जत बड़ी है। रहीम की ऐसी ही दशा है। जैसे घर भले कुल की भलेमानसों की कुलवधू फटे-पुराने चिथड़े क्यों न पहने हो फिर भी उसका सब आदर ही करते हैं। ऐसे ही मेरे पास अब चाहे धन नहीं रहे तो भी लोग मेरा सम्मान करते हैं।

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि 'रहीम' पर-काज-हित, सम्पति सँचहिं सुजान ॥८६॥

शब्दार्थ—तरुवर = वृक्ष। सरवर = तालाब। पर-काज-हित = दूसरे के काम के लिए। सँचहि = इकट्ठी करते हैं।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि वृक्ष स्वय अपने फल नहीं खाते हैं, नदियाँ अपना पानी आप नहीं पीती हैं। बात यह है कि सज्जन दूसरों के काम में आने के लिए ही सम्पत्ति इकट्ठी किया करते हैं। भाव यह है कि श्रेष्ठ पुरुष यदि धन इकट्ठा भी करते हैं तो वे उस धन का प्रयोग परोपकार के कार्यों में कर देते हैं।

तेहि प्रमान चलिबो भलो, जो सब दिन ठहराइ।
उमँडि चलै जल पार तैं, जो 'रहीम' बढ़ि जाइ॥८७॥

शब्दार्थ—प्रमान = हिसाब। उमँडि चलै = उमड़ कर बह निकलता है। पार = पाल, नदी का बाँध।

भावार्थ—मनुष्य को अपना निर्वाह ऐसे ही तरीके से करना चाहिए कि जिससे गरीबी और अमीरी में एक-सा रह सके। यदि कभी सम्पत्ति के प्राप्त हो जाने पर तुम अपनी चादर से बाहर पाँव फैला लोगे तो वही दशा हो जायगी जैसे वर्षा ऋतु मे तालाबों में पानी बहुत अधिक आ जाने पर वह पानी तालाबों के बाँध के ऊपर से निकल जाता है। भाव यह है कि मनुष्य को अपना जीवन ऐसा बनाना चाहिए कि वह सुख और दु:ख—दोनों ही अवस्था में समान हो।

दिव्य दीनता के रसहिं, का जानै जग अन्धु।
भली बिचारी दीनता, दीनबन्धु से बन्धु॥८८॥

शब्दार्थ—दिव्य = अलौकिक। दीनता = गरीबी। का जानै = क्या जाने। अन्धु = अन्धा। दीनबन्धु = दीनों के बन्धु भगवान्।

भावार्थ—यह अन्धा ससार भला गरीबी के अलौकिक आनन्द को कैसे समझ सकता है! वास्तव में तो वह गरीबी ही अच्छी है क्योंकि

गरीब मनुष्य का कोई बन्धु नहीं होता। पर दीनों के बन्धु भगवान् उनके रक्षक होते हैं। भाव यह कि गरीबी बड़ी अच्छी है, क्योंकि चाहे गरीब का कोई संसारी मनुष्य रक्षक नहीं होता पर प्रभु उसके रक्षक होते हैं।

दुख नर सुनि हाँसी करैं, धरैं रहीम न धीर।
कही सुनै सुनि-सुनि करैं, ऐसे वे रघुबीर॥८९॥

शब्दार्थ—नर=मनुष्य। हाँसी=हँसी। धीर=धीरज।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि इस संसार के लोग दूसरों के दुःख-दर्द की बातें सुन कर उन्हें धैर्य तो बधाना दूर रहा उलटे उनकी हँसी उड़ाते हैं। पर दूसरों के दुःख को सुनने और सुन कर दुःख के नाश का उपाय करने वाले तो भगवान् ही हैं।

बिपति भये धन ना रहै, होइ जो लाख करोर।
नभ-तारे छिपि जात हैं, जिमि 'रहीम' भे भोर॥९०॥

शब्दार्थ—करोर=करोड़। नभ=आकाश। भोर=प्रातःकाल।

भावार्थ—चाहे मनुष्य के पास लाखों-करोड़ों रुपये क्यों न हों जब उस पर विपत्ति या संकट आता है तो उसके पास का धन नहीं रह सकता। किसी न किसी प्रकार उसकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। जैसे कि रात्रि में सारे अनन्त तारे चमका करें पर प्रातःकाल होते ही सब छिप जाते हैं।

यों 'रहीम' दुख सुख सहत, बड़े लोग सहि सांति।
उवत चन्द जेहि भाँति सों, अथवत ताही भाँति॥९१॥

शब्दार्थ—उवत=उदित होना हुआ, चढ़ता हुआ। साँति—शान्ति। सहि—सहते हैं। अथवत=अस्त होता है, छिप जाता है।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि बड़े लोग सुख और दुःख दोनों को एक प्रकार की शान्ति से सह लेते हैं। जैसे कि चन्द्रमा जिस प्रकार

के साथ बढ़ता है उसी आनन्द के साथ छिप भी जाता है। चन्द्रमा को उदय होते समय न हर्ष होता है और न अस्त होते समय दुःख ही होता है। इसी प्रकार मनुष्य को भी चाहिए कि जब उसके पास धन आये तब ऐसा न हो जाय कि वह फूला ही न समाये और जब उसका धन नष्ट हो जाय तब दुखी भी न हो।

मूढ़-मण्डली में सुजन, ठहरत नाहिं विसेखि।
स्याम कचन में स्वेत ज्यों, दूरि कीजियत देखि ॥६२॥

शब्दार्थ—मूढ़=मूर्ख। मण्डली=सभा, समूह। विसेखी=विशेष, अधिक। कचन=बाल। स्वेत=श्वेत, सफेद।

भावार्थ—मूर्खों की मडली में समझदार लोग उसी प्रकार अधिक देर नहीं ठहरते जैसे कि काले बालों में सफेद बाल को देखते ही लोग उखाड़ डालते हैं।

'रहिमन' ओछे नरन ते, तजौ वैर औ' प्रीति।
चाटे काटे स्वान के, दुहूँ भाँति विपरीति ॥६३॥

शब्दार्थ—तजौ=छोड़ दो। वैर=शत्रुता। स्वान=कुत्ता। दुहूँ भाँति=दोनों प्रकार से। विपरीति=उलटा।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि ओछे मनुष्यों के साथ प्रेम एव शत्रुता दोनों ही नहीं करनी चाहिएँ, जैसे कि कुत्ता यदि प्रेम में आकर मनुष्य के शरीर को चाटने लगे तो अपवित्र कर देगा और यदि क्रोध में आकर काट खाये तो दु.ख होगा ही।

यद्यपि अवनि अनेक हैं, तोयवन्त सर ताल।
'रहिमन' एकै मानसर, मनसा रमत मराल ॥६४॥

शब्दार्थ—अवनि=पृथ्वी। अनेक=बहुत से। तोयवन्त=जल वाले। मनसा=मन। रमत=लगता है। मराल=हंस।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि यद्यपि यों तो इस पृथ्वी पर बहुत से तालाब व तलैया हैं पर हंस का मन तो केवल मानसरोवर में ही लगता है। भाव यह है कि गुणज्ञ व्यक्ति विद्वानों के पास रहकर ही प्रसन्न होते हैं।

मानसरोवर ही मिलै, हंसनि मुक्ता भोग।
सफरिन भरे 'रहीम' सर, विपुल बलाकनि जोग ॥६५॥

शब्दार्थ—मुक्ता=मोती। सफरिन=मछलियाँ। विपुल=बहुत। बलाकनि=बगलों की पंक्तियाँ।

भावार्थ—रहीम जी कहते हैं कि हंसों को मोतियों का भोजन तो मानसरोवर में ही मिल सकता है। इसके विपरीत मछलियों से भरे हुए बहुत से तालाब तो बगलों के लिए ही हैं। भाव यह है कि विद्वानों का मन विद्वानों में ही लगता है, मूर्ख लोग भले ही मूर्खों में प्रसन्न रहें।

बिहारी

परिचय

जन्म संवत् १६६० मृत्यु संवत् १७२०

सर्वोत्कृष्ट श्रृंगारी कवि बिहारीलाल चौबे ब्राह्मण थे। युवावस्था में ये कुछ वर्षों तक राजा मिर्ज़ा जयसिंह के आश्रय में रहे। किंवदन्ती है कि राजा जयसिंह अपनी एक नवविवाहिता वधू के प्रेम में इतने आसक्त थे कि उन्होंने दरबार में आना छोड़ दिया और सभी राज्य-कार्यों से मुँह मोड़ लिया था। अनेक प्रयत्न किये गये, पर कुछ न बन सका तो बिहारी ने एक दोहा—

> नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
> अली कली ही सों बँध्यो, आगे कौन हवाल॥

लिख कर अन्दर भेज दिया तो राजा दौड़े-दौड़े बाहर आये। उन्होंने बिहारी को गले से लगा लिया और पुन. राज्य कार्यों में दत्तचित्त हो गये।

इन्होंने दोहे लिखे हैं जोकि नीति, श्रृंगार और आध्यात्मिकता इन तीन रूपों में बाँटे जा सकते हैं। इनकी संख्या कुल सात सौ है। परन्तु फिर भी जितनी ख्याति इनकी हुई है और किसी की नहीं। बिहारी की कविता में ऊहा और चमत्कार का प्रयोग है परन्तु गूढ़ता और गम्भीरता में भी वह कम नहीं है।

इनका काव्य मुक्तक है। मुक्तक-रचना को प्रबन्धकाव्य से क्लिष्ट माना जाता है। बिहारी का काव्य मुक्तक-लेखकों के लिए आदर्श है क्योंकि उसके सभी आवश्यक गुण इसमें मिलते हैं। उनके काव्य में सरसता तथा वाग्वैदग्ध्य दोनों ही बातें हैं। एक ही पद्य में अनेक भावों

का समावेश और रस का सन्निवेश कर कवि ने लोकोत्तर चमत्कार प्रकट किया है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि किसी कवि का यश उनकी रचनाओं के परिमाण से न होकर उसके गुणों से देखा जा सकता है, बिहारी की रचना इस बात का ज्वलंत उदाहरण है। किसी की निम्न उक्ति उनके दोहों के लिए बिलकुल उपयुक्त बैठती है—

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखत में छोटे लगैं, घाव करैं गम्भीर॥

और भी कहा है—

ब्रज भाषा बरनी सबै, कविवर बुद्धि विसाल।
सब की भूषन सतसई, रची बिहारीलाल॥

हो सके। नीकै कै=अच्छी प्रकार। लख्यौ=देखो। करनी=करतूत।

भावार्थ—हे नागर—चतुर नन्दकिशोर! यदि आप मेरी करतूतों की ओर भी उदारता-पूर्वक देखें तो मेरा भला हो सकता है। अर्थात् मेरे कर्म तो अच्छे नहीं हैं कि मेरा कल्याण हो सके पर यदि आप मेरे कर्मों का विचार न करके मेरे प्रति उदारता दिखायें तो भले ही मेरा उद्धार हो सकता है। इसलिए आप मेरे दुर्गुणों का ध्यान न कर मेरा उद्धार कर दीजिए।

मेरी भवबाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परैं, स्यामु हरित-दुति होइ ॥५॥

शब्दार्थ—भवबाधा=सांसारिक दुःख। हरौ=दूर करो। नागरि=चतुर। सोइ=वह। स्यामु=श्रीकृष्ण या दुःख, पाप। हरित दुति=हरी कान्ति वाला, हरी-भरी प्रसन्न कान्ति वाला, नष्ट हुई कान्ति वाला। झाँई=परछाई। तन=शरीर। परैं=पड़ते ही।

भावार्थ—जिसके शरीर की झलक पड़ते ही श्याम श्रीकृष्ण हरित कान्ति वाले हो जाते हैं। वह चतुर राधिका मेरे सांसारिक दुःखों को दूर करे। यहाँ पर 'स्यामु' व 'हरित-दुति' शब्द श्लिष्ट और अत्यन्त मार्मिक रहस्य से भरे हुए हैं। इनके निम्न चार अर्थ प्रसिद्ध हैं—

(१) कृष्ण हरे रंग की कान्ति वाले हो जाते हैं। तप्त सुवर्णाभगौर (पीत) राधा की कान्ति की झलक पड़ते ही श्रीकृष्ण की श्याम नील कान्ति का हरा हो जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। क्योंकि पीले और नीले के संयोग से ही हरा रंग बनता है।

(२) कृष्ण हरित अर्थात् हरी-भरी प्रसन्न कान्ति वाले हो जाते हैं—राधा की झलक पड़ते ही प्रभु प्रसन्नता से नाच उठते हैं।

(३) राधा के सौन्दर्य की कान्ति के समक्ष अनन्त सौन्दर्यशाली श्रीकृष्ण की छटा भी हरित—अपहृत अर्थात् नष्ट-सी हो जाती है—

राधिका के सौन्दर्य के सामने श्रीकृष्ण की सुन्दरता भी तुच्छ प्रतीत होती है।

(४) स्यामु, अघ, पाप, दुःख (पाप और दुःखों को काला कहा जाता है) नष्ट हो जाते हैं। अर्थात् राधा के दर्शन मात्र से भक्तों के सब पाप और दुःख नष्ट हो जाते हैं।

उपर्युक्त चारों अर्थों से यह ध्वनि निकलती है कि जो राधा अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के नायक श्रीकृष्ण को भी प्रसन्न कर सकती है या उनका भी रंग बदल सकती है या उनकी शोभा अथवा महिमा भी जिनके सामने तुच्छ प्रतीत होती है—वह उनसे भी बढ़कर है, वह राधिका मेरे सांसारिक दुःख तो अवश्य दूर कर सकती है, उसे मेरा उद्धार करने में देर या श्रम ही क्या लगेगा!

या अनुरागी चित्त की, गति समझै नहिं कोय।
ज्यों ज्यों बूड़ै स्याम रँग, त्यों त्यों उज्जलु होय ॥६॥

शब्दार्थ—अनुरागी=प्रेमी। गति=दशा, अवस्था। बूड़ै=डूबना। उज्जलु=उज्ज्वल। स्याम=काला।

भावार्थ—इस कृष्ण के प्रेम में लीन चित्त की गति को कोई समझ नहीं सकता, क्योंकि यह ज्यों ज्यों श्याम के रंग में डूबता है त्यों त्यों काले होने के स्थान पर उज्ज्वल होता जाता है। यही इसकी समझ में न आने वाली बात है कि श्याम रंग में डूब कर श्याम होने के स्थान पर उज्ज्वल होता है। श्याम का अर्थ कृष्ण करने से इस विरोध का परिहार हो जाता है। श्रीकृष्ण के प्रेम में रत मन का निर्मल होना स्वाभाविक ही है।

मोहन मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोइ।
बसतु सुचित अंतर तऊ, प्रतिबिम्बित जग होइ ॥७॥

शब्दार्थ—मोहन मूरति=मोहिनी मूर्ति। गति=दशा। अद्भुत=आश्चर्यजनक। सुचित=शुद्ध हृदय। प्रतिबिम्बित=झलकता हुआ।

भावार्थ—कृष्ण की मन को मोहित कर देने वाली मूर्ति की गति बड़ी अद्भुत है, क्योंकि वह रहती तो शुद्ध हृदय के अन्दर है, फिर भी वह बाहर सारे ससार में प्रतिबिम्बित सी दिखाई देती है। भाव यह कि भगवान् भक्तों के हृदय में रहते हुए भी सृष्टि के कण-कण में समाये हुए हैं।

कोऊ कोटिक सग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो सपति जदुपति सदा, बिपति बिदारनहार ॥८॥

शब्दार्थ—संग्रहौ = सग्रह करे। कोटिक = करोड़ों। यदुपति = श्रीकृष्ण। विपति-विदारनहार = दु:खों को दूर करने वाले।

भावार्थ—कवि कहता है कि कोई करोड़ों रुपयों का सग्रह करे और कोई हज़ारों-लाखों का, किन्तु मेरी सम्पत्ति तो विपत्ति को नष्ट करने वाले श्रीकृष्ण ही हैं। इसलिए मुझे किसी दूसरे धन की आवश्यकता नहीं।

कीजै चित सोई तरे, जिहिं पतितनु के साथ।
मेरे गुन-औगुन-गननु, गनो न गोपीनाथ ॥९॥

शब्दार्थ—पतितनु = पापियों। गुन = गुण। औगुन = अवगुण। गननु = समूह। गनो = समझो। गोपीनाथ = श्रीकृष्ण।

भावार्थ—हे भगवन्! अपने हृदय में मेरे प्रति ऐसा ही विचार कीजिए कि जैसा विचार और पापियों का उद्धार करते समय किया था। हे गोपीनाथ! मेरे गुण और अवगुणों के समूह की ओर ध्यान न दीजिए और अब मेरा उद्धार कर दीजिए। भाव यह कि जिस प्रकार आपने दूसरे पापियों के गुण-दोषों की ओर ध्यान दिये बिना उनका उद्धार कर दिया उसी प्रकार मेरा भी कर दीजिए।

हरि, कीजति बिनती यहै, तुमसों बार हजार।
जिहि-तिहिं भाँति डर्यौ रह्यौ, पर्यौ रहौं दरबार ॥१०॥

शब्दार्थ—विनती=प्रार्थना। कीजति=की जाती है। परयौ रहौं=पड़ा रहूँ।

भावार्थ—हे भगवन! मैं तुम से हजार बार प्रार्थना करता हूँ कि मुझे जिस किसी तरह अपने द्वार पर पड़ा रहने दो। मैं आप से और कुछ नहीं चाहता, केवल इतना ही चाहता हूँ कि आप मुझे अपने द्वार पर अपनी शरण में ले लीजिए।

जपमाला छापा तिलक, सरै न एकौ काम।
मन काँचो नाचै वृथा, साँचै राँचै राम ॥११॥

शब्दार्थ—सरै=बनेगा। काँचो=कच्चा। वृथा=व्यर्थ। साँचै=सच्चा। राँचै=प्रसन्न।

भावार्थ—जप, माला, छापा, तिलक आदि धर्म के आडम्बरों से कुछ काम न चलेगा, जब तक मन कच्चा है तब तक यह सभी व्यर्थ है। भगवान् तो सच्चाई से प्रसन्न होते हैं, बाहरी दिखावे से कुछ लाभ नहीं होगा। अतः बाहरी दिखावे को छोड़ कर मन को पवित्र करना चाहिए।

जगतु जनायौ जिहिं सकलु, सो हरि जान्यौ नाहिं।
ज्यौं आँखिन सबु देखियै, आँखि न देखी जाहिं ॥१२॥

शब्दार्थ—जिहिं=जिसने। जनायौ=उत्पन्न किया। सकलु=सम्पूर्ण, सारा।

भावार्थ—जिस प्रभु ने सारे संसार को बनाया है मनुष्य उसे [illegible] इसी प्रकार नहीं जान सकता, जैसे—जो आँखें सारे संसार को देखती हैं, मनुष्य उन आँखों को स्वयं नहीं देख सकता। [illegible] संसार का [illegible] प्रभु सर्वव्यापक होता हुआ भी [illegible] दिखाई नहीं दे सकता।

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साइँहि न भूलि।
दई दई क्यों करत है, दई दई सु कबूलि ॥१३॥

शब्दार्थ—दीरघ=लम्बे। साइँहि=प्रभु को। दई दई=दैव दैव, भाग्य भाग्य, हे भगवान् हे भगवान्। कबूलि=स्वीकार कर ले।

भावार्थ—हे मनुष्य, तू दुःख में लम्बी-लम्बी आहें मत भर और सुख में अपने प्रभु को मत भूल जा। तू दैव-दैव अथवा भाग्य-भाग्य या हे भगवान्-हे भगवान् क्यों पुकारता है, भगवान् ने जो दे दिया उसे ही स्वीकार कर अर्थात् मनुष्य को प्रत्येक अवस्था में सन्तुष्ट रहना चाहिए। दुःख में घबराना नहीं चाहिए और सुख-सम्पत्ति के दिनों में अभिमान में भगवान् को भूलना नहीं चाहिए।

बंधु भए का दीन के, को तार्‌यौ रघुराइ।
तूठे तूठे फिरत हौ, झूठे बिरद कहाइ ॥१४॥

शब्दार्थ—दीन=गरीब। तार्‌यौ=उद्धार किया। तूठे=प्रसन्न। बिरद=यश, उपाधि।

भावार्थ—हे प्रभो! आज तक आप किस गरीब के हितैषी या बन्धु हुए और आपने किसका उद्धार किया है। आप 'पतितपावन' की झूठी ही उपाधि प्राप्त कर अपने आप फूले फिरते हैं। वास्तव में आपने किसी भी पतित को पावन नहीं बनाया है। (मैं तो आप को तब पतितपावन समझूँ जब आप मेरा उद्धार कर दें। यह भक्त की भगवान् के प्रति व्यंग्योक्ति है।)

कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जग-नाइक, जग बाइ ॥१५॥

शब्दार्थ—टेरतु=पुकारता हूँ। सहाइ=सहायक। जगत-गुरु=जगत् के गुरु। जग-बाई=जगत् की—दुनिया की हवा।

भावार्थ—कवि अपने उद्धार के लिए प्रभु से प्रार्थना करता हुआ कहता है कि हे भगवन्! मैं न जाने कब से दीन बन कर आप को पुकार रहा हूं। पर आप मेरी सहायता नहीं करते। हे जगत् के नायक, जगत् के गुरु! ऐसा प्रतीत होता है कि आप को भी आजकल संसार की हवा लग गई है। 'दुनिया की हवा लगना' मुहावरा है, जिसका अर्थ चालाक हो जाना है। भाव यह है कि भगवान् भी पहले भोले-भाले थे जो भक्तों का तत्काल उद्धार कर देते थे, पर अब चालाक हो गये दीखते हैं, जो इतनी देर लगा रहे हैं।

सीस मुकुट, कटि काछनी, कर मुरली, उर माल।
इहि बानक मो मन सदा, बसौ बिहारी लाल॥१६॥

शब्दार्थ—सीस=सिर। कटि=कमर। काछनी=कछनी। कर=हाथ। उर=हृदय। माल=माला। बानक=वेष। बसौ=रहो।

भावार्थ—सिर पर मोर मुकुट, कमर में काछनी, हाथ में मुरली तथा हृदय पर माला धारण किये हुए भगवान् श्रीकृष्ण सदा मेरे मन में निवास करें।

भजन कह्यौ तातैं भज्यौ, भज्यौ न एकौ बार।
दूरि भजन जातैं कह्यौ, सो तैं भज्यौ, गँवार॥१७॥

शब्दार्थ—भजन=भजन करने के लिए। कह्यौ=कहा। तातैं=उससे। भज्यौ=भागा। भज्यौ=भजन किया।

भावार्थ—हे मूर्ख! तुझे जिस (प्रभु) का भजन करने के लिए कहा गया, तू उससे ही भागता रहा, उसका भजन एक बार भी [illegible] [illegible] (विषय वासनाओं) से दूर भागने के लिये [illegible] [illegible] [illegible]।

या भव-पारावार कौं, उलँघि पार को जाइ।
तिय-छबि छाया-ग्राहिनी, गहै बीचहिं आइ॥१८॥

शब्दार्थ—भव-पारावार=संसार रूपी समुद्र। उलँघि=लाँघ कर। तिय-छवि=स्त्री की सुन्दरता। छाया-ग्राहिनी=एक राक्षसी जो समुद्र के ऊपर उड़ते हुए जीवों की छाया को पकड़ कर निगल जाती थी। ग्रहै=ग्रस लेती है, पकड़ लेती है।

भावार्थ—इस संसार रूपी समुद्र को लाँघ कर भला कौन पार जा सकता है अर्थात् कोई भी नहीं जा सकता। क्योंकि स्त्री की सुन्दरता की झलक रूपी छाया-ग्राहिणी उसे बीच ही में आकर पकड़ लेती है और संसार रूपी समुद्र से पार नहीं होने देती।

बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमानु।
भलौ भलौ कहि छोडिये, खोटै ग्रह जपु दानु॥१६॥

शब्दार्थ—बसै=रहती है। तन=शरीर। सनमानु=समान। खोटे=बुरे। जपु=जाप।

भावार्थ—जिनके शरीर में दुष्टता रहती है अर्थात् जो लोग कुटिल और दुष्ट होते हैं, संसार में उन्हीं का मान होता है। सीधे-सादे सज्जनों को कोई पूछता भी नहीं। जैसे शनि आदि दुष्ट ग्रहों के लिए तो सब लोग दान-पुण्य करवाते हैं पर बृहस्पति आदि शुभ ग्रहों को कोई पूछता भी नहीं।

को कहि सकै बडेनु सौं, लखै बड़ी यौं भूल।
दीने दई गुलाब की, इन डारनु ये फूल॥२०॥

शब्दार्थ—को=कौन। लखै=देख कर। दीने दई=दे दिये।

भावार्थ—बड़े आदमियों की बड़ी भूल को देख कर भी उन्हें वह कौन बता सकता है। देखो भगवान् ने गुलाब की इन कटीली कठोर शाखाओं—टहनियों—पर इतने सुकोमल सुन्दर कुसुम लगा दिये—यह कितनी बड़ी भूल की किन्तु यह भला उनसे कौन बताये।

निकलकु=निष्कलक। मयंकु=चन्द्रमा। उतपातु=उत्पात, भयसूचक चिन्ह।

भावार्थ—यदि कोई बुरा व्यक्ति अपनी बुराई छोड भी दे तो भी लोगों का मन उससे डरता ही है। जिस प्रकार निष्कलक चन्द्रमा को देखकर लोग समझते हैं कि कुछ न कुछ उत्पात ही होगा।

चितु दै देखि चकोर त्यौं, तीजैं भजै न भूख।
चिनगी चुनै अँगार की, चुगै कि चंद-मयूख ॥४०॥

शब्दार्थ—चित दे=ध्यान देकर। तीजैं=तीसरे को। चद-मयूख=चन्द्रमा की किरण। चिनगी=चिन्गारी।

भावार्थ—इस बात को ध्यान देकर देख लो, कि चकोर या तो चिन्गारी ही चबाता है या चन्द्रमा की किरणें ही पीता है। इन दोनों वस्तुओं के सिवा तीसरी किसी वस्तु को वह कभी स्वीकार नहीं करता।

चल्यौ जाइ, ह्याँ को करै, हाथिनु को व्योपार।
नहिं जानतु, इहिं पुर बसैं, धोबी, ओड़, कुम्हार ॥४१॥

शब्दार्थ—हाथिनु=हाथियों का। जानतु=जानता है। इहिं=इस। पुर=नगर। ओड=एक जगली जाति।

भावार्थ—हे हाथियों के व्यापारी! तू यहाँ से चला जा। यहाँ हाथियों का व्यापार क्यों करता है, क्या तू नहीं जानता कि इस गाँव में तो धोबी, ओड़ और कुम्हार ही रहते हैं, जो गधों का व्यापार करते हैं। यहाँ हाथी खरीदने वाला कोई नहीं, सब गधों ही के ग्राहक हैं।

भाव यह है कि यहाँ गुणों का आदर करने वाला कोई नहीं है सब मूर्खों के ही ग्राहक हैं।

कहलाने एकत वसत, अहि मयूर मृग वाघ।
जगतु तपोवन सो कियौ, दीरघ-दाघ निदाघ ॥४२॥

गुणों से रहित) भक्त को अपने हाथ में लेकर गुण से युक्त कर देते हैं। किन्तु यदि वही भक्त और लट्टू गुण युक्त हो जाने पर भगवान् के हाथ से छूट जाय तो फिर निर्गुण हो जाता है। भाव यह कि मनुष्य जब लट्टू को अपने हाथ में पकड़ता है तो पहले उस पर गुण—डोरी—नहीं लिपटी होती, पर मनुष्य उसे अपने हाथ में लेते ही उसे चलाने के लिए उस पर डोरी लिपेट देता है। उसके पश्चात् डोरी से युक्त होते ही जब लट्टू फिर मनुष्य के हाथ से नीचे पृथ्वी पर गिर पड़ता है तो उस पर लिपटी हुई डोर फिर छूट जाती है। ठीक इसी प्रकार निर्गुण भक्त भी भगवान् के हाथों में जाकर सब गुणों से युक्त हो जाता है और उनकी शरण को छोड़ते ही फिर कोरा का कोरा रह जाता है।

लोपे, कोपे इन्द्र लौं, रोपे प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखे सबै, गो, गोपी, गोपाल ॥४५॥

शब्दार्थ—लोपे=नष्ट कर देने के लिए। कोपे=क्रोध किया। रोपे=खड़ा कर दिया। अकाल=असमय में ही।

भावार्थ—इन्द्र ने क्रुद्ध होकर व्रज-भूमि का नाश करने के लिए असमय में ही बड़ा भयंकर प्रलय लाकर खड़ा कर दिया, तब गिरिधारी गोवर्धन-पर्वत को उठाने वाले श्रीकृष्ण ने सब गौ, गोपी और ग्वालों की रक्षा कर ली।

कनक कनक ते सौगुनी, मादकता अधिकाय।
उहि खाये बौराय जग, इहि पाये बौराय ॥४६॥

शब्दार्थ—कनक=सोना और धतूरा। मादकता=नशा, मस्ती। अधिकाय=बढ़ाता है। उही=उसे। जग=संसार। इहि=इसे। पाये=पाकर। बौराय=पागल हो जाता है।

भावार्थ—महाकवि बिहारीलाल कहते हैं कि सोना अर्थात् धन-सम्पत्ति धतूरे से भी सौगुना अधिक नशा चढ़ाता है, क्योंकि धतूरे को

तो जब मनुष्य खाता है तभी पागल होता है, पर सोने या धन-सम्पत्ति को तो पाकर ही मनुष्य पागल हो जाता है। धतूरे को जब तक न खावें तब तक उसका कोई प्रभाव नहीं होता किन्तु धन के तो मिलते ही मनुष्य अपने आप में नहीं रहता। इसीलिए कहा गया है कि धन का नशा धतूरे से भी अधिक है।

'कनक' शब्द के दो अर्थ होते हैं—सोना तथा धतूरा। पहले 'कनक' का अर्थ सोना तथा दूसरे कनक शब्द का अर्थ धतूरा है।

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अली कली ही तें बंध्यो, आगे कौन हवाल ॥४७॥

शब्दार्थ—पराग=फूलों की सुगन्धित धूलि। मधुर=मीठा। मधु=फूलों का रस। विकास=खिलना। इहि काल=इस समय। अली=भौंरा। बँध्यो=बँध गया। हवाल=दशा।

भावार्थ—कहते हैं कि महाकवि बिहारी के आश्रयदाता जयपुर नरेश मिर्ज़ा राजा जयशाह अपनी नई रानी के प्रेम में इतने तल्लीन हो गये थे कि वे राज्य के काम-काज भी भूल बैठे। [illegible] [illegible]

अधखिली कली से ही बँध गया तो जब यह पूरी तरह खिल जायगी तो तेरी न जाने क्या दशा हो जायगी। अर्थात् तेरे लिए यह उचित नहीं है कि इस अधखिली कली मे ही बँध कर अपने आपको भूल जाय। भौरे के रूप में यहाँ विलासी मिर्जा राजा जयशाह को सम्बोधित किया गया है और कहा गया है कि उनको रनिवास को छोड़कर राज-काज की देख-भाल करनी चाहिए।

नहिं पावस ऋतुराज यह, तज तरुवर मति भूल।
अपत भये बिन पाय हैं, क्यों नव दल फल-फूल ॥४८॥

शब्दार्थ—पावस = वर्षा-ऋतु। ऋतुराज = वसन्त ऋतु। तरुवर = वृक्ष। मति = बुद्धि, ख्याल। तज = छोड़ दे। अपत = पत्तो से रहित और मान-मर्यादा से हीन। नव = नया। दल = पत्ता।

भावार्थ—महाकवि बिहारी वृक्ष को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि "हे वृक्ष! यह कोई वर्षा ऋतु नहीं है, यह तो वसन्त ऋतु है। तू अपने हृदय की इस भूल को दूर कर दे कि यह वर्षा ऋतु होगी। क्योकि इस वसन्त ऋतु में जब तक तेरे सारे पुराने पत्ते नहीं झड़ जायँगे, तब तक भला नये पत्ते, फल और फूल तुझे कैसे मिल सकते हैं? भाव यह कि वर्षा-ऋतु में वृक्षों के पुराने पत्ते भी रहते हैं और कुछ नये भी निकल आते हैं। वसन्त-ऋतु से पहले शिशिर-ऋतु में वृक्षों के पुराने सब पत्ते पहले झड़ जाते हैं फिर वसन्त मे नये निकलते हैं। इसीलिए कहा गया है कि यह वर्षा-ऋतु नहीं कि जिसमें पुराने पत्तों के रहते हुए नये पत्ते भी निकल आयें। यह तो वसन्त-ऋतु है, जिसमें पुराने सब पत्ते झड़ जाते हैं। वृक्ष के रूप में, सम्राटों के अधीन रहने वाले सामन्त नरेशों को कहा गया है कि सम्राटों के दरबार में जब तक कोई मनुष्य अपनी मान-मर्यादा को तिलाञ्जलि नहीं दे देता तब तक वहाँ से कुछ प्राप्त नहीं कर सकता। अथवा इसका भाव यह भी हो सकता है कि जब तक मनुष्य

शब्दार्थ—रनित = शब्द करते हुए, गूँजते हुए। भृङ्ग = भौंरे। घण्टावली = घण्टियों की पंक्तियाँ। झरित = झड़ता हुआ। दान = हाथियों के मस्तकों से बहने वाला मद-जल। मधु = पुष्प रस। नीरु = जल। मद मद = धीरे धीरे। आवतु = आता है। चल्यौ = चलता हुआ। कुंजरु = हाथी। कुञ्ज = झाड़ियाँ। समीरु = वायु।

भावार्थ—महाकवि बिहारीलाल वसन्त ऋतु की कुञ्जों में बहने वाली शीतल मन्द वायु का मस्त हाथी के रूप में वर्णन करते हुए कहते हैं कि यह कुञ्जों का वायु रूपी हाथी धीरे धीरे चला आ रहा है। वसन्त-ऋतु में जो भौंरे गूँज रहे हैं वे ही मानो इस हाथी के घण्टे बज रहे हैं। और जो पुष्प-रस झड़ रहा है वही मानो उस हाथी के सिर का मद-जल बह रहा है। इस प्रकार हाथी में और कुञ्जों में बहती वसन्त की वायु में पूरी-पूरी समता प्रतीत होती है।

पतवारी माला पकरि, और न कछू उपाउ।
तरि ससार पयोधि कौं, हरि नावैं करि नाउ ॥५२॥

शब्दार्थ—पतवारी = पतवार, नाव चलाने के चप्पू। पकरि = पकड़ कर। कछू = कुछ। उपाउ = उपाय। तरि = तर जा, पार हो जा। पयोधि = समुद्र। ससार-पयोधि = ससार रूपी समुद्र। नावैं = नाम। नाउ = नाव।

भावार्थ—महाकवि बिहारीलाल ससार के लोगों को ससार-सागर से पार होने का उपाय बताते हुए कहते हैं कि माला रूपी पतवार को पकड़ लो और भगवान् के नाम को ही नाव बना लो। इस प्रकार ससार-रूपी सागर से पार हो जाओ, क्योंकि ससार-सागर से पार होने का अन्य कोई उपाय नहीं।

यह बिरिया नहिं और की, तूँ करिया वह सोधि।
पाहन नाव चढाइ जिहिं, कीने पार पयोधि ॥५३॥

शब्दार्थ—बिरिया=बेर, अवसर। करिया=केवट। सोधि=ढूँढ ले। पाहन=पत्थर। पाहन-नाव=पत्थरों की नाव। जिहि=जिसने। कीने=कर दिये।

भावार्थ—महाकवि बिहारीलालजी सांसारिक प्राणियों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि "हे मनुष्य! यह किसी दूसरे छोटे-मोटे केवट से पार होने का अवसर नहीं है। इसलिए तू उस दिव्य केवट या मल्लाह को अपने पार होने के लिए ढूँढ, जिस भगवान राम रूपी केवट ने नल और नील के द्वारा समुद्र में फेंके हुए पत्थरों को पानी पर नाव की भांति तैरा कर उन पत्थरों पर से ही बन्दरों को पार करा दिया था। भाव यह है कि संसार सागर से पार करने वाले भगवान् राम ही सर्वश्रेष्ठ केवट हैं। मनुष्य को उनकी ही शरण में जाना चाहिए।

अधर धरत हरि कै परत, ओठ डीठि पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष रंग होति॥५४॥

शब्दार्थ—अधर=होठ। धरत=रखने पर। हरि=श्रीकृष्ण। परत=पड़ने से। डीठी=दृष्टि। पट=वस्त्र। जोति=कान्ति, चमक। हरित=हरी।

भावार्थ—श्रीकृष्ण के होठों पर रखी हुई हरे बाँस की बंसी पर उनके होठों की लाल दृष्टि या नेत्रों का श्याम और [illegible] पीली झलक पड़ रही है। इस प्रकार वह बंसी इन्द्रधनुष के समान रंग वाली हो जाती है। भाव यह है कि इन्द्रधनुष में नाना रंग होते हैं। कृष्ण के होठों पर रखी हुई [illegible]

उन चारों रंगों के मिश्रण से बन जाते हैं। इस प्रकार कृष्ण की वंशी इन्द्र-धनुष के समान सतरंगी हो जाती है।

कर लै सूँघि, सराहि हूँ, रहै सबै गहि मौनु।
गंधी गंध गुलाब की, गँवई गाहकु कौनु ॥५५॥

शब्दार्थ—कर=हाथ। सराहि=प्रशंसा करके। गहि=ग्रहण कर ली। गन्धी=इत्रादि सुगन्धित पदार्थ बेचने वाला। गन्ध=सुगन्धि। गँवई=छोटा गाँव। गाहकु=ग्राहक, खरीदार।

भावार्थ—हे इत्रादि सुगन्धित पदार्थ बेचने वाले गन्धी! इस छोटे से गाँव में तेरे गुलाब के इत्र का कोई ग्राहक नहीं है। क्योंकि यहाँ तो सभी तेरे इत्र को हाथ में लेते है उसे सूँघते हैं, उसकी सब प्रशंसा भी करते है और अन्त में चुप हो जाते हैं, खरीदता कोई भी नहीं। भाव यह है कि मूर्ख-मण्डली में कोई भी विद्वानों का आदर नहीं करता। मुँह से प्रशंसा भले ही कर लें पर उसकी सहायता कोई नहीं करता।

पटु पाखै, भखु काँकरै, सपर परेई संग।
सुखी परेवा, पुहुमि में, एकै तुहि, विहंग ॥५६॥

शब्दार्थ— पटु=पट, वस्त्र। पाखै=पंख, पर। भखु=भक्ष्य, भोजन, खाता है। कोकरै=कंकर-पत्थर। परेई=कबूतरी। संग=साथ। परेवा=कबूतर। पुहुमी=पृथ्वी।

भावार्थ—महाकवि बिहारीलाल जी सन्तोषी कबूतर को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तेरे पंख ही तो वस्त्र हैं। कंकर खाकर भी तू अपना निर्वाह कर लेता है और तेरी प्रियतमा कबूतरी तेरे साथ सदा बनी रहती है। इस प्रकार हे कबूतर पक्षी! इस पृथ्वी में तू ही सब से अधिक सुखी है। भाव यह है कि जो मनुष्य सन्तोषी हैं, रूखा-सूखा जो भी मिल जाय वही खाकर निर्वाह कर लेते हैं, वे ही वास्तव मे इस संसार मे सुखी हैं।

कीनौ हूँ कोटिक जतनु, अब कहि काढ़े कौनु।
भौ मन मोहन रूप मिलि, पानी में कौ लौनु ॥५७॥

शब्दार्थ—कीनौ हू=करने पर भी। कोटिक=करोड़ों। जतनु=यत्न। कहि=किस प्रकार। काढ़े=निकाले। भौ=हो गया। लौनु=नमक।

भावार्थ—कवि कहता है कि अब तो मेरा मन श्रीकृष्ण के रूप में मिलकर उससे इस प्रकार एकाकार हो गया है कि कोई करोड़ों यत्न करने पर भी उसे कोई किसी प्रकार भी अलग नहीं कर सकता। जैसे कि पानी में मिले हुए नमक को कोई पानी में से नहीं निकाल सकता वैसे ही मेरे कृष्ण के रूप में मिले हुए मन को उससे कोई अलग नहीं कर सकता।

सोवत, जागत, सुपन बस, रस, रिस, चैन, कुचैन।
सुरति स्याम घन की सुरति, बिसरैंहूँ बिसरै न ॥५८॥

शब्दार्थ—सुपनबस=सुपने मे। रस=आनन्द, खुशी। रिस=क्रोध। सुरति=स्मरण। स्याम घन=श्रीकृष्ण। सुरति=सूरत, स्वरूप। बिसरैंहूँ=भुलाने पर भी।

भावार्थ—कवि कहता है कि सोते, जागते या स्वप्न में, प्रेम में या क्रोध में, शान्ति में या अशान्ति में अथवा सुख में या दु:ख मे घनश्याम श्रीकृष्ण के स्वरूप की याद भुलाने पर भी तो नहीं भूलती। भाव यह है कि जब से भगवान् श्रीकृष्ण की साँवली सलोनी मूर्ति के दर्शन हुए तब से चौबीसों घण्टे उसी की याद आती रहती है।

मतिराम

परिचय

जन्म सवत् १६७४ मृत्यु संवत् १७७३

आप शृङ्गार-रस के प्रमुख कवियों में गिने जाते हैं। ये भूषण के भाई हैं। ये बूँदी के महाराव भावसिंह के आश्रय में रहकर कविता लिखते रहे। आपकी कविता की भाषा रसानुकूल मनोहारिणी है। आपके भावों में स्वाभाविकता विद्यमान है।

आपके निम्न-निर्दिष्ट ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हैं—

ललित ललाम, छन्दसार, लक्षणसार, साहित्यसार।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त 'रसराज' आदि में भी आपने कवि-हृदय खोलकर दिखा दिया है। आपकी प्रसादमयी एवं प्राञ्जल भाषा ने साहित्यिकों की रुचि को आपकी कविता के प्रति और भी सजग कर दिया है। राधाकृष्ण के प्रेम-चित्रण के अतिरिक्त आपने अन्योक्तियों द्वारा जो मार्मिक शिक्षाएँ दी हैं, उनका स्थान साहित्य में बहुत ऊँचा है।

दोहे

सार और आलोचना

आपने कविता में, राधा और कृष्ण का अलौकिक प्रेम जग के व्यवहार में किस प्रकार हितकर है, यह भली प्रकार स्पष्ट कर दिया है। राधा और कृष्ण का प्रेम अपने प्रकाश से हमारे अन्धकारमय जीवन में किस प्रकार ज्योत्स्ना की किरण फेंकता है इत्यादि वर्णन के साथ-साथ हमें अन्योक्तियों द्वारा कर्मनिष्ठा की भी शिक्षा सुचारु रूप से दी है।

आपकी भाषा भावानुगामिनी एवं मनोरञ्जक है। आपने दोहे जैसे छोटे छन्द मे भाव-छटा को बहुत ही सुन्दर ढंग से छिटका है। आपकी शैली स्वाभाविक तथा रसिकों के हृदय में रस बहा देने वाली है।

मंजु गुंज के हार उर, मुकुट मोर-पर-पुंज।
कुंज विहारी विहरियै, मेरेई मन-कुंज ॥१॥

शब्दार्थ—मंजु=सुन्दर। गुंज=गुञ्जा, रत्ती। उर=हृदय। कुंज=समूह। मोर-पर-पुंज=मोरों के पखों का समूह। कुंज विहारी=कुञ्जों में विहार करने वाले श्रीकृष्ण। विहरियै=विहार कीजिए। मन-कुंज=मन रूपी कुञ्ज।

भावार्थ—हृदय पर गुंजाओं—रत्तियों—की माला धारण किये हुए, मस्तक पर मोर के पखों से सुशोभित मुकुट पहने हुए कुञ्ज-विहारी—कुञ्जों में विहार करने वाले—हे श्रीकृष्ण! आप मेरे ही मन-रूपी कुञ्जो में विहार कीजिए।

राधा मोहन-लाल कौ, जाहि न भावत नेह।
परियौ मुठी हजार दस, ताकी आँखिनि खेह ॥२॥

चाँदनी के समान मित्रों को प्रसन्न करता है और तेज धूप के समान शत्रुओं को तपाता है।

पिसुन-बचन सज्जन चितैं, सकै न फोरि न फारि।
कहा करै लगि तोय मैं, तुपक तीर तरवारि ॥१६॥

शब्दार्थ—पिसुन=चुगलखोर। सज्जन=साधु व्यक्ति, नेक आदमी। चितै=हृदयों को। सकै=सकना। फोरि=फोड़ना। फारि=फाड़ना। तोय में=जल मे। तुपक=तोप। तीर=बाण। तरवारि=तलवार।

भावार्थ—चुगलखोरों की बातें सज्जनों के दो मिले हुए हृदयों को फोड़ या फाड़ नहीं सकतीं। पानी में लगी हुई तोप, तीर तलवार और भाला उसका क्या बिगाड़ सकती है। जिस प्रकार तीर, तोप या तलवार के लगने पर पानी वैसा का वैसा ही रहता है, वैसे ही दुष्ट चुगलखोरों के इधर-उधर की बातें बनाने पर भी सज्जनों के मिले हुए हृदय अलग नहीं हो पाते। दुष्ट चाहे कितनी ही फूट डलवाने की चेष्टा करे तो भी दो सज्जनों के हृदय फट नहीं सकते।

अति सुढार अति ही बडे, पानिप भरे अनूप।
नाकमुकत नैनानि सौं, होड़ परी इहिँ रूप ॥१७॥

शब्दार्थ—अति=बहुत, अत्यन्त। सुढार=सुडौल, सुन्दर। पानिप=कान्ति और जल। अनूप=अनुपम। नाकमुकत=नाक की लौंग या नथ का मोती। नैनानि=आँखों।

भावार्थ—इस सुन्दरी के नाक के आभूषण के मोती और नैनों में मानो होड़-सी लग गई है, क्योंकि दोनों ही सुन्दर, अनुपम और कान्ति से परिपूर्ण हैं। मोती भी सुन्दर है आँखें भी, मोती भी सुडौल, विशाल अच्छा बना हुआ है आँखें भी वैसी ही हैं, अतः मानो दोनों में होड़ सी लगी है कि कौन किस से सुन्दर है।

ललित मंद कल हंस गति, मधुर मंद मुसिक्याति ।
चली सारदा बिसद-रुचि, सरद-चाँदनी राति ॥१८॥

शब्दार्थ—ललित=सुन्दर । मन्द=धीरे-धीरे । कल=सुन्दर । मधुर=मीठे । मुसिक्याति=मुस्कराते हुए । सारदा=सरस्वती । बिसद=निर्मल । रुचि=कान्ति । सरद-चाँदनी=शरद् ऋतु की चाँदनी ।

भावार्थ—हंस के समान सुन्दर और मन्द गति वाली मन्द-मन्द मधुर मुस्कराती हुई शुभ्र कान्ति वाली सरस्वती शरद् ऋतु की चाँदनी रात में चली जा रही है । यहाँ शुभ्रवस्त्रधारिणी श्वेतवर्णा भगवती सरस्वती का वर्णन है ।

प्रतिबिंबित तो बिंब मैं, भूतल भयौ कलंक ।
निज निरमलता दोष यह, मन मैं मानि मयंक ॥१९॥

शब्दार्थ—प्रतिबिंबित=परछाईं पड़ना या पड़ी । बिंब=अक्स । भूतल=पृथ्वी । भयौ=हुई । कलंक=कालिमा लगना, दोषपूर्ण होना । निरमलता=स्वच्छता । दोष=बुराई । मयंक=चन्द्रमा ।

भावार्थ—हे चन्द्रमा ! तेरे बिम्ब में प्रतिबिम्बित होकर यह पृथ्वी-मंडल भी कलंक बन गया । इसलिए यह कह सकते हैं कि अत्यधिक निर्मल होने का भी मानो यह एक दोष ही है, अतः अत्यधिक निर्मलता भी कभी-कभी हानिकारक बन जाती है । कहा जाता है कि चन्द्रमा में जो यह कलंक है, वह पृथ्वी का प्रतिबिम्ब है, इसी विश्वास के आधार पर यह दोहा कहा गया है । पर वास्तव में चन्द्रमा में कलंक—काले-काले धब्बे जो दीखते है वे चन्द्रमा के पहाड़ हैं ।

सुखद साधुजन कौं सदा, गजमुख दानि उदार ।
सेवनीय सब जगत कौ, जगमाया सुकुमार ॥२०॥

शब्दार्थ—सुखद=सुखदायक । साधुजन=सज्जन । गजमुख=

हाथी के मुखवाले गणेशजी । जगमाया = जगत की माता पार्वती । सुकुमार = बालक ।

भावार्थ—गणेशजी महाराज अत्यन्त दानी, उदार और सज्जनों को सुख देने वाले हैं । वे जगज्जननी पार्वती के सुपुत्र और विश्व के वन्दनीय हैं । यहाँ पर कवि ने गणेशजी का वर्णन करते हुए उनकी उदारता आदि का दिग्दर्शन कराया है ।

अंग ललित सित-रंग पट, अंग राग अवतंस ।
हंस-वाहिनी कीजियै, वाहन मेरौ हंस ॥२१॥

शब्दार्थ—ललित = सुन्दर । सित = सफेद । पट = वस्त्र । अंग-राग = लाली (माँग का सिन्दूर) । अवतंस = शिरोभूषण । हंसवाहिनी = हंस की सवारी करने वाली सरस्वती । वाहन = सवारी । हंस = प्राण ।

भावार्थ—भगवती सरस्वती से प्रार्थना करता हुआ कवि कहता है कि अपने सुन्दर अंगों पर श्वेत वस्त्र धारण किये हुए और अपने मस्तक की माँग में सिन्दूर लगाये हुए हे हंसवाहिनी सरस्वती माता ! आप मेरे मन रूपी हंस को ही अपना वाहन बनाइये । अर्थात् हे भगवती सरस्वती आप मेरे मन में ही वास कीजिए ।

जो निसिदिन सेवन करै, अरु जो करै विरोध ।
तिन्हैं परम पद देत प्रभु, कहौ कौन यह बोध ॥२२॥

शब्दार्थ—निसिदिन = रातदिन । परमपद = मोक्ष । बोध = समझ ।

भावार्थ—भगवान् रावण आदि अपने विरोधियों का भी उद्धार कर देते हैं और भक्तों का भी, इसका वर्णन करते हुए कवि कहता है कि हे भगवन् ! आपकी भी यह क्या समझ है कि जो लोग रात-दिन आपका भजन करते हैं, उन्हें तो भला आप मोक्ष देते ही हैं किन्तु जो लोग (रावण आदि) आपका विरोध करते हैं, उन्हे भी आप मोक्ष दे देते हैं ।

पगों प्रेम नँदलाल कैं, हमैं न भावत जोग।
मधुप राजपद पाइकै, भीख न माँगत लोग ॥२३॥

शब्दार्थ—पगीं=तन्मय हुई। भावत=अच्छा लगता। मधुप=भ्रमर (उद्धव), गोपियाँ उद्धव को प्रायः 'मधुप' नाम से सम्बोधित करती हैं।

भावार्थ—गोपियाँ उद्धव से कहती हैं कि हे भ्रमर अर्थात् उद्धव, नन्दलाल (श्रीकृष्ण) के प्रेम में तन्मय हुई हमें तुम्हारी यह योग की बातें अच्छी नहीं लगतीं। राज्य-पद को पाकर भला भीख माँगना किसको अच्छा लगेगा। भाव यह है कि जैसे राज्य पाकर कोई भीख नहीं माँग सकता वैसे ही श्रीकृष्ण के प्रेम के सामने तुम्हारे योग की बातें भी हमें अच्छी नहीं लगतीं।

मो मन मेरी बुद्धि लै, करि हर कौं अनुकूल।
लै त्रिलोक की साहिबी, दै धतूर कौ फूल ॥२४॥

शब्दार्थ—हर=शिव। त्रिलोक=तीनों लोक। साहिबी=स्वामित्व।

भावार्थ—हे मेरे मन, मेरी बुद्धि को लेकर भगवान् शंकर के अनुकूल बना दे, अर्थात् मुझे भगवान् शंकर का भक्त बना दे, क्योंकि उन पर भक्त केवल धतूरे के पुष्प चढ़ाकर ही तीनों लोकों का आधिपत्य प्राप्त कर लेता है। भाव यह कि भगवान् शंकर आशुतोष हैं, वे तत्काल प्रसन्न हो जाते हैं। अतः उन्हीं की भक्ति करनी चाहिए।

खल बचननि की मधुरई, चाखि साँप निज श्रौन।
रोम रोम पुलकित भए, कहत मोद गहि मौन ॥२५॥

शब्दार्थ—खल=दुष्ट। मधुरई=मधुरता। निज=अपने। श्रौन=कान। मोद=आनन्द। गहि=ग्रहण की।

भावार्थ—दुष्ट वचन कभी मधुर नहीं हो सकते, दुर्जन वचनों की असंभवता का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि दुष्टों के वचनों की मधुरता को साँपों ने अपने कानों से चखा-सुना और उनका रोम-रोम पुलकित हो गया, उसका वर्णन करते-करते वे तन्मय होकर मौन हो गये। भाव यह है कि दुष्टों के वचन कभी मधुर नहीं होते, क्योंकि साँप के कान नहीं होते इसलिए वह किसी के वचन को सुन ही नहीं सकता। कवि ने कहा है कि दुष्टों के वचनों की मधुरता केवल साँप ही अपने कानों से सुन पाता है, दूसरा कोई नहीं।

मुकत-हार हरि कै हियैं, मरकत मनिमय होत।
पुनि पावत रुचि राधिका, मुखमुसक्यानि उदोत ॥२६॥

शब्दार्थ—मुकत=मोती। हियैं=हृदय पर। मरकत मनि=नीलम। पुनि=फिर। उदोत=प्रकाश।

भावार्थ—भगवान् कृष्ण की छाती पर लहराते हुए मोतियों के हार का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि भगवान् श्रीकृष्ण के हृदय पर पड़ा हुआ सफेद मोतियों का हार भी उनके शरीर की श्याम कान्ति से मरकत मणि—नीलम—के हार के समान दिखाई देता है। किन्तु राधा के मुख की मुस्कराहट की श्वेत-कान्ति से नीलम का सा बना हुआ वह मोतियों का हार फिर श्वेत-वर्ण कान्ति वाला बन जाता है। भाव यह कि वह पहले सफेद से नीला और फिर सफेद का सफेद हो जाता है।

सरद चंद की चाँदनी, को कहियै प्रतिकूल।
सरद चद की चाँदनी, कोक हियै प्रतिकूल ॥२७॥

शब्दार्थ—सरद चंद=शरद् ऋतु का चन्द्रमा। को=कौन। प्रतिकूल=विरुद्ध। कोक=चकवा।

भावार्थ—शरद् ऋतु के चन्द्रमा की चाँदनी किसके हृदय के विरुद्ध है— किसके हृदय को अच्छी नहीं लगती, इसका उत्तर यह है कि

'कोक हिये' अर्थात् कोक (चकवे) के हृदय को शरद् ऋतु के चाँद की चाँदनी भी अच्छी नहीं लगती। यहाँ पर प्रश्न के वाक्य में ही उत्तर दिया गया है। यही चमत्कार है।

स्याम-रूप अभिराम अति, सकल विमल गुन-धाम।
तुम निसिदिन मतिराम की, मति बिसरौ मति राम ॥२८॥

शब्दार्थ—अभिराम = सुन्दर। विमल = निर्मल। गुनधाम = गुणों के भंडार। निसिदिन = रातदिन। मति = बुद्धि।

भावार्थ—हे सम्पूर्ण श्रेष्ठ निर्मल गुणों के भंडार अत्यन्त सुन्दर भगवान् राम! तुम मतिराम का विचार अपने हृदय में से क्षण भर भी दूर मत करो। अर्थात् तुम सदा मेरा ध्यान रखते रहो। यह भक्त अपने प्रभु से प्रार्थना कर रहा है।

प्रतिपालक सेवक सकल, खलनि दलमलत डाँटि।
शंकर तुम सम साँकरैं, सबल साँकरैं काटि ॥२९॥

शब्दार्थ—प्रतिपालक = पालना करने वाले। सकल = सब। खलनि = दुष्टों को। दलमलत = दल-मल देते हैं, नष्ट कर देते हैं। सम = समान। साँकरैं = संकट में और जजीरें। सबल = बलवान्, मजबूत।

भावार्थ—सब सेवकों का पालन करने वाले और दुष्टों को दलमल डालने वाले—नष्ट-भ्रष्ट कर देने वाले—हे भगवान् शंकर! आपके समान दुःखों या कष्टों की मजबूत शृंखलाओं—जजीरों को काटने वाला भला मेरे लिए और दूसरा कौन है! भाव यह कि भगवान् शंकर ही भक्तों के दुःखों की वेड़ियाँ काट सकते हैं।

सेवक सेवा के सुनें, सेवा देव अनेक।
दीनबंधु हरि जगत हैं, दीनबंधु हर एक ॥३०॥

शब्दार्थ—अनेक = बहुत से। हरि = विष्णु। हर = शिवजी।

रोकनहार=रोकने वाला। केवका=केवड़ा। कण्टक=काटे। परिहार=रोकने वाले।

भावार्थ—सज्जनों को इस संसार में दुष्ट लोग रोक देते हैं जैसे कि कमल, केवड़ा और गुलाब के काटे उन्हें चारों ओर से घेरे रहते हैं।

फूलति कली गुलाब की, सखि यहि रूप लखै न।
मनौ बुलावति मधुप कौ, दै चुटकी की सैन॥४१॥

शब्दार्थ—फूलति=खिलती हुई। लखै न=देखो न। बुलावति=बुलाती है। मधुप=भ्रमर। सैन=इशारा, संकेत।

भावार्थ—एक सखी दूसरी सखी से चटचटा कर विकसित होती हुई कली का वर्णन करती हुई कहती है कि हे सखि, इस खिलती हुई गुलाब की कली का रूप तो देखो न। यह ऐसी प्रतीत होती है, मानो अपने प्रियतम भौंरे को रस लेने के लिए चुटकी बजाकर इशारा करती हुई अपने पास बुला रही हो।

करौ कोटि अपराध तुम, वाके हियै न रोष।
नाह - सनेह - समुद्र मैं, बूढ़ि जात सब दोष॥४२॥

शब्दार्थ—कोटि=करोड़ों। वाके=उसके। हियै=हृदय में। रोष=क्रोध। नाह=नाथ, प्रियतम। सनेह-समुद्र=प्रेम रूपी समुद्र। बूढ़ि जात=डूब जाते हैं।

भावार्थ—एक सखी दूसरी मानवती सखी को सम्बोधित करती हुई कहती है कि तुम अपने प्रियतम के चाहे करोड़ों अपराध क्यों न करो, उसके हृदय में तुम्हारे प्रति कभी क्रोध नहीं आता। बात तो यह है कि उसके प्रेम रूपी समुद्र में तुम्हारे सब दोष डूब जाते हैं। जैसे समुद्र में चाहे कोई कितनी ही बड़ी वस्तु क्यों न हो सभी डूब जाती हैं, उनका कहीं पता भी नहीं लगता, वैसे ही प्रियतम के प्रेमरूपी समुद्र में तुम्हारे सब दोष डूब जाते हैं। वह प्रियतम तुम्हारी किसी बात का बुरा नहीं मानता।

भोगनाथ नरनाथ कौ, बदन इंदु अरबिंदु।
करत कवित्तनि करत बर, मधुर सुधा-मधु-बिंदु ॥४३॥

शब्दार्थ—बदन=मुख। इंदु=चन्द्रमा। अरबिंदु=कमल। बर=श्रेष्ठ। सुधा=अमृत। मधुर=मीठा। मधु=शहद।

भावार्थ—भोगनाथ महाराज का मुख चन्द्रमा तथा कमल के समान है, इसलिए जो कवि उनके मुख पर कविता करता है उसकी कविता को वे अमृत और मधु अर्थात् पुष्परस की बूँदों से सींच देते हैं। चन्द्रमा में अमृत रहता है और कमल में मधु। क्योंकि भोगनाथ का मुख इन दोनों के समान है इसलिए उस पर कविता लिखने वाले की कविता में अमृत और माधुर्य के समान सरसता का सञ्चार हो जाना स्वाभाविक ही है।

कौन भाँति कै बरनियै, सुंदरता नँदनंद।
तेरे मुख की भीख लै, भयौ ज्योतिमय चंद ॥४४॥

शब्दार्थ—बरनियै=वर्णन करें। ज्योतिमय=प्रकाशमान।

भावार्थ—हे श्रीकृष्ण! तुम्हारी सुन्दरता का हम किस प्रकार वर्णन करें। तुम्हारी ही भीख को पाकर मानो यह चन्द्रमा प्रकाशमान हो गया है। चन्द्रमा को भी मानो तुमने अपनी ही थोड़ी सी काति दे दी है जिससे यह चमक रहा है। भाव यह कि तुम्हारी कान्ति चन्द्रमा से भी बढ़कर है।

दिन मैं सुभग सरोज हैं, निसि मैं सुंदर इंदु।
द्यौस राति हूँ चारु अति, तेरो बदन गोबिंदु ॥४५॥

शब्दार्थ - सुभग=सुन्दर। सरोज=कमल। निसि=रात्रि। इन्दु=चन्द्रमा। द्यौस=दिन। राति=रात्रि। चारु=सुन्दर।

भावार्थ—कमल तो दिन में ही खिलता और सुन्दर लगता है और चन्द्रमा रात्रि ही को चमकता है। पर हे श्रीकृष्ण! तुम्हारा मुख दिन

चीरहरन = गोपियों के वस्त्रों को हरने वाले। अभिराम = सुन्दर।

भावार्थ—कवि श्रीकृष्ण के नामों तथा गुणों का वर्णन करता हुआ कहता है कि श्रीकृष्ण वशी बजाने वाले, गोवर्धन पर्वत को धारण करने वाले, पीताम्बर पहनने वाले, घन के समान श्याम वर्ण वाले, बकासुर का नाश करने वाले, कस को मारने वाले और यमुना में नगी नहाती हुई गोपियों के वस्त्रों को हरण करने वाले परम सुन्दर हैं।

पीत झँगुलिया पहिरि कै, लाल लकुटिया हाथ।
धूरि भरे खेलत रहैं, ब्रजबासिन ब्रजनाथ ॥५२॥

शब्दार्थ—पीत = पीली। झँगुलिया = झग्गा, कुर्ता। लकुटिया = छड़ी। ब्रजवासिन = ब्रज में रहने वालों में। ब्रजनाथ = श्रीकृष्ण।

भावार्थ—श्रीकृष्ण गले में पीला झग्गा या कुर्ता पहिन कर हाथ में लाल छड़ी पकड़ कर धूल से भरे हुए अपने ब्रजवासी सखाओं के साथ खेलते थे।

तिरछी चितवनि स्याम की, लसति राधिका ओर।
भोगनाथ कौ दीजियै, यह मन-सुख बरजोर ॥५३॥

शब्दार्थ—चितवनि = देखना। लसति = शोभित होती हुई। मन-सुख = मन का सुख। बरजोर = जोर से या खूब।

भावार्थ—कवि श्रीकृष्ण से प्रार्थना करता है कि हे भगवन्! आप राधिका की ओर निहारती हुई अपनी तिरछी चितवन के दर्शन का सुख भोगनाथ महाराज को सदा प्रदान करते रहिए। भाव यह है कि भोगनाथ महाराज राधिका की ओर निहारते हुए आपके सदा दर्शन करते रहें।

मेरी मति में राम हैं, कबि मेरे 'मतिराम'।
चित मेरौ आराम मैं, चित मेरैं आराम ॥५४॥

शब्दार्थ—मति = बुद्धि। आराम = चारों ओर से राम बसे हुए हैं।

भावार्थ—कवि मतिरामजी कहते हैं कि मेरी बुद्धि में सदा राम बसे हुए हैं। मेरे चित्त में बड़ा आराम या शान्ति है और मेरे मन में चारों ओर से भगवान् राम व्याप्त हो रहे हैं।

रोस न करि जौ तजि चल्यौ, जानि अँगार गँवार।
छिति-पालनि की माल मैं, तैंहीं लाल सिंगार ॥५५॥

शब्दार्थ—रोस=क्रोध । तजि चल्यौ=छोड़ गया । जानि=जान कर, समझ कर। अँगार=आग का अङ्गारा। छितिपालनि=क्षितिपाल, राजा।

भावार्थ—हे लाल–एक प्रकार के अमूल्य रत्न! यदि तुझे कोई गँवार मनुष्य, जो तेरे गुणों को नहीं पहचानता, छोड़ कर चला भी गया तो भी कुछ बुरा मत मान; क्योंकि गँवार लोग भले ही तेरा कोई आदर न करें पर राजाओं के मुकुटों का तो तू ही शृंगार है। भाव यह है कि किसी विद्वान् गुणी व्यक्ति का कोई मूर्ख यदि आदर न भी करे तो भी उसे दुःखी नहीं होना चाहिए; क्योंकि समझदार लोग तो उसका सदा सम्मान ही करेंगे।

देखैं हूँ बिन देखि हूँ, लगी रहै अति आस।
कैसेहूँ न बुझाति है, ज्यौं सपने की प्यास ॥५६॥

भावार्थ—एक सखी दूसरी सखी से कहती है कि प्रियतम श्रीकृष्ण को यदि देखती हैं तो भी उनको और अधिक देखते रहने की इच्छा बनी रहती है और यदि वे नहीं दीखते हैं तो इच्छा का बना रहना स्वाभाविक ही है। जिस प्रकार स्वप्न की प्यास किसी प्रकार नहीं बुझती वैसे ही प्रियतम के दर्शन की लालसा भी उन्हें देखें या न देखें दोनों ही अवस्था में बनी रहती है।

तरु ह्वै रह्यौ करार कौ, अब करि कहा करार।
उर धरि नंद-कुमार कौ, चरन-कमल सुकुमार ॥५७॥

शब्दार्थ—तरु=वृक्ष । ह्वै रह्यौ=होगया । करार=किनारा । क़रार=प्रतिज्ञा । उर=हृदय । धरि=धारण कर । नन्दकुमार= श्रीकृष्ण । सुकुमार=अत्यन्त कोमल ।

भावार्थ—कवि मतिराम ससारी प्राणियों को विशेषतः वृद्धों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे वृद्ध मनुष्यो ! अब तुम नदी किनारे के वृक्ष होगये हो । तुम अब लोगों के साथ और कितनी नई-नई प्रतिज्ञाएँ करते रहोगे कि हम यह करेंगे और वह करेंगे । अब तुम्हें चाहिए कि तुम ससारी धन्धों को छोड़कर श्रीकृष्ण के सुकोमल चरणों का अपने हृदय में ध्यान धरो ।

तनु आगें कौं चलतु है, मन वाही मग लीन ।
सलिल सोत मैं ज्यौं चपल, चलत चढाऊ मीन ॥५८॥

शब्दार्थ – तनु=शरीर । मग=मार्ग । लीन=लगा हुआ है । सलिल=जल । सोत=स्रोत, प्रवाह । चपल=चञ्चल । चढ़ाऊ= पानी में ऊपर की ओर जाने वाली । मीन=मछली ।

भावार्थ—शरीर तो आगे की ओर जाता है पर मन उसी अपने प्रियतम की ओर पीछे लगा रहता है, जैसे नदी के पानी का प्रवाह आगे की ओर बढता है किन्तु चचल चढाऊ मछली उस प्रवाह के विरुद्ध जिधर से पानी आ रहा है उधर की ओर चढती जाती है ।

वृन्द

परिचय

जन्म संवत् १७४८ के लगभग

यह औरंगज़ेब के दरबारी कवि थे। औरंगज़ेब के पौत्र अज़ीमुश्शान के साथ यह बंगाल, बिहार और उड़ीसा तक गये। ढाके में इन्होंने अपनी दृष्टान्त-सतसई अर्थात् वृन्द-विनोद-सतसई संवत् १७६१ में लिखी। यूँ तो इनकी दो पुस्तकें भाव-पञ्चाशिका और शृङ्गार-शिक्षा भी प्रसिद्ध हैं। पर जो ख्याति इन्होंने उक्त प्रथम पुस्तक से प्राप्त की वह अन्य पुस्तकों से नहीं। सतसई की रचना के सम्बन्ध में इन्होंने स्वयं लिखा है—

समय सारि दो हानि कों, सुनत होय मनमोद।
प्रगट भई, वह सतसई, भाषा वृन्द विनोद॥

अति उदार रिझवार जग, शाह अज़ीमुश्शान।
सतसैया सुनि वृन्द को, कीनौ अति सनमान॥

संवत् ससि-रस-वार-ससि, कातिक सुदि ससि वार।
याते ढाका सहर में, उपज्यो येह विचार॥

कृष्णगढ़ महाराज राजसिंह वृन्द से बहुत प्रेम करते थे। वह इन्हें गुणवान् मानते थे। वृन्द के वंशज अब भी कृष्णगढ़ में रहते हैं।

वृन्द के जन्म और मृत्यु का ठीक निर्णय नहीं हो सका। लगभग सवत् १७४८ का अनुमान किया जाता है। वृन्द के दोहे बहुत ही सरल और शीघ्र कंठस्थ हो जाने वाले हैं। इन पर संस्कृत-कविता की छाप गहराई से मिलती है। इनके दोहे बड़े ही शिक्षाप्रद हैं।

दोहे

सार और आलोचना

जो भाग्य ही प्रतिकूल हो तो उद्यम करने से कुछ नहीं बनता—केवल इस प्रकार की उक्तियाँ कही ही नहीं, प्रत्युत दृष्टान्तों द्वारा सिद्ध भी कर दिया है कि परिश्रम द्वारा हरे-भरे बनाये हुए खेत को टिड्डीदल निमू्ल कर देता है।

दोहों में सासारिक अनुभूति की पुट है। इन सभी दोहों में जीवन का सूक्ष्म अध्ययन मिलता है। आपके उपदेशात्मक दोहों को अपना लेने से मनुष्य जीवन में असफल नहीं हो सकता। मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार ही काम करना चाहिए तभी वह जीवन-क्षेत्र में सफल हो सकता है। "सब साधै सब जाय" वाली उक्ति पर मनन करने से मानव सफल हो सकता है। आपके दोहे सज्जीवन का निर्माण करने वाले हैं।

श्री गुरुनाथ प्रभाव तें, होत मनोरथ सिद्धि।
घन तै ज्यों तरु वेलि दल, फूल फलन की वृद्धि ॥१॥

शब्दार्थ—घन=बादल। तरु=वृक्ष। वेलि=वेल। दल=पत्ते। वृद्धि=बढ़ते।

भावार्थ—श्री गुरुदेव के प्रभाव से मनुष्य के सभी मनोरथ इस प्रकार सिद्ध हो जाते हैं जैसे बादल की वर्षा से वृक्ष, वेल, पत्ते, फल, फूल सभी बढते हैं।

कहा होय उद्यम किए, जो प्रभु ही प्रतिकूल।
जैसे उपजे खेत को, करैं सलभ निरमूल ॥२॥

शब्दार्थ—उद्यम = पुरुषार्थ। प्रतिकूल = विरुद्ध। सलभ = टिड्डियाँ। निमूल = जड़ से रहित, नष्ट।

भावार्थ—यदि भगवान् ही विरुद्ध हैं तो पुरुषार्थ करने से ही क्या बनेगा। जैसे कि यदि भाग्य अनुकूल नहीं है तो उपजे उपजाये खेत को टिड्डियाँ नष्ट कर डालती हैं। भाव यह कि पुरुषार्थ से भाग्य बड़ा है।

जो जाको गुन जानहीं, सो तिहि आदर देत।
कोकिल अम्बहि लेत है, काग निबौरी लेत ॥३॥

शब्दार्थ—कोकिल = कोयल। अम्ब = आम। काग = कौआ। निबौरी = नीम की निबोली।

भावार्थ—जो जिसके गुण जानता है वही उसका मान करता है दूसरा नहीं। जैसे कि कोयल आम के गुण को जानती है इसलिए वह आम ही का रस लेती है। पर कौआ तो नीम की निबोली ही लेगा। भाव यह कि विद्वान् पुरुष ही गुणियों के गुणों को जानता है, मूर्ख नहीं।

रहत समीप बडेन के, होत बड़ो हित मेल।
सब ही जानत बढत हैं, वृक्ष बराबर बेल ॥४॥

शब्दार्थ—समीप = पास।

भावार्थ—बड़े मनुष्यों के साथ रहने से बहुत अधिक लाभ होता है, जैसे कि इस बात को सभी जानते हैं कि बेल भी वृक्ष के बराबर ही बढती है।

भाव यह कि जितना ऊँचा वृक्ष होता है बेल भी उतनी ऊँची चली जाती है, वृक्ष यदि छोटा होगा तो बेल भी छोटी रह जायगी, वृक्ष बड़ा होगा तो बेल भी बढती जायगी। उसी प्रकार मनुष्य यदि अच्छों की संगति करेगा तो अच्छा बन जायगा और बुरों में बैठेगा तो बुरा हो जायगा।

मान होत है गुननि तें, गुन बिन मान न होइ।
सुक सारी राखै सबै, काग न राखे काइ ॥५॥

शब्दार्थ—सुक=तोता। सारी=शारिका, मैना। काग=कौआ।

भावार्थ—वृन्द कवि कहते हैं कि संसार में किसी मनुष्य का मान उसके गुणों से ही होता है। विना गुणों के कोई किसी का मान नहीं करता। जैसे कि तोते और मैना को सब पालते हैं; क्योंकि उनमें मधुर वाणी से बोलने का गुण है। इसके विपरीत कौआ कठोर वाणी बोलता है, उसमें कोई गुण नहीं है। इसलिए उसका कोई आदर भी नहीं करता।

जैसे गुन दीनो दई, तैसों रूप निबन्ध।
ए दोऊ कहँ पाइये, सोनौ और सुगन्ध ॥६॥

शब्दार्थ—दई=दैव, विधाता। निबन्ध=बन्धन।

भावार्थ—वृन्द कवि कहते हैं कि भगवान् मनुष्य को जैसे गुण देते हैं वैसी सुन्दरता नहीं देते हैं। जिसको सुन्दरता देते हैं उसको वैसे विद्या-बुद्धि आदि गुण नहीं देते। जैसे कि सोना तथा सुगन्ध ये दोनों एक स्थान पर कभी नहीं मिल सकते। भाव यह कि विद्या आदि गुण और सुन्दरता एक साथ बहुत कम मिलती हैं।

तउ गुन हीन मनाइयै, जो जीवन सुख भौन।
आग जरावत नगर तउ, आग न आनत कौन ॥७॥

शब्दार्थ—भौन=भवन, घर। सुख भौन=सुख का घर, सुख देने वाला। तउ=तो भी। आनत=लाता है।

भावार्थ—चाहे मनुष्य गुणहीन क्यों न हो तो भी यदि वह हमा जीवन के लिए सुखदायक है तो उसे मना ही लेना चाहिए। उसक आदर-सत्कार करना ही चाहिए। जैसे कि आग शहर को जला देती

फिर भी आग क्योंकि हमारे काम की है उसे घर में कौन नहीं रखता अर्थात् सभी रखते हैं।

अति परचै ते होत है, अरुचि अनादर भाय।
मलयागिरि की भीलनी, चदन देत जराय ॥८॥

शब्दार्थ—अति=अधिक। परिचै=परिचय, जान-पहचान। अरुचि=लापरवाही। अनादर=अपमान। मलयागिरि=मलयाचल। भीलनी=लकड़ियाँ बेचने वाली जगली जाति की स्त्री।

भावार्थ—अत्यधिक जान-पहचान या साथ रहने से गुणवान् व्यक्ति के प्रति भी मनुष्य के हृदय में उपेक्षा और अनादर के भाव आ जाते हैं जैसे कि मलयाचल पर्वत पर रहने वाली भीलनी चन्दन को भी जला देती है, क्योंकि वहाँ चन्दन अधिक उत्पन्न होता है। भाव यह कि अधिक साथ रहने पर मनुष्य के हृदय में वैसा आदर नहीं रहता।

भाव सरस समझत सबै, भले लगै यह भाय।
जैसे अवसर की कही, बानी सुनत सुहाय ॥९॥

शब्दार्थ—अवसर=समय, मौका। सुहाय=अच्छी।

भावार्थ—हमें यह विचार अच्छा लगता है कि सरस भाव को सभी बड़े प्रेम से समझ लेते हैं। जिस प्रकार मौके पर कही हुई बात सभी को अच्छी लगती है।

नीकी पै फीकी लगै, बिनु अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध मे, रस सिंगार न सुहात ॥१०॥

भावार्थ—यदि उचित अवसर का विचार किये बिना अच्छी भी बात कही जाय तो भी अच्छी नहीं लगती। जैसे कि युद्ध में शृङ्गार रस की बातें अच्छी नहीं लगतीं।

सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग कों, दीपहि देत बुझाय॥११॥

शब्दार्थ—सबल=बलवान्। पवन=हवा।

भावार्थ—सभी बलवान् के सहायक होते हैं, कमजोर का कोई सहायक नहीं बनता। जैसे कि हवा आग—जो बलवान् (तेज) होती है उसे तो भड़काती है, पर बिचारे निर्बल दीपक को वही हवा बुझा देती है। भाव यह कि कमज़ोर का कोई मित्र नहीं।

जो जाही को ह्वै रहै, सो तिहि पूरे आस।
स्वाति बूँद बिनु सघन मैं, चातक मरत पियास॥१२॥

शब्दार्थ—चातक=पपीहा। स्वाति बूँद=स्वाति नक्षत्र के समय की वर्षा।

भावार्थ—जो जिसका बन कर रहता है वही इसकी आशा पूरी करता है। जैसे स्वाति नक्षत्र की बूँद के बिना पपीहा प्यासा ही मरता है किंतु स्वाति नक्षत्र ही उसकी आशा पूरी करता है।

जाही तैं कछु पाइये, करियै ताकी आस।
रीते सरवर पै गए, कैसे बुझत पियास॥१३॥

शब्दार्थ—रीते=खाली। सरवर=तालाब।

भावार्थ—जिस व्यक्ति से हमें कुछ प्राप्त होने की आशा हो उसी के पास जाना चाहिए और उसी से आशा करनी चाहिए। जैसे कि यदि कोई प्यासा मनुष्य खाली तालाब पर पानी की आशा से जायगा तो उसे भला वहाँ पानी कहाँ से मिलेगा! वहाँ तो उसे प्यासा ही मरना पड़ेगा।

अपनी पहुँच विचारिकै, करतव करियै दौर।
तेते पाँव पसारिये, जेती लाँबी सौर॥१४॥

शब्दार्थ—जेते=जितनी। तेते=उतने। सौर=चादर।

भावार्थ—जहाँ तक अपनी पहुँच हो वहीं तक सोच-समझ कर

अपनी शक्ति के अनुसार कार्य करना चाहिए। जैसे कहावत है कि पाँव उतने ही लम्बे फैलाने चाहिएँ जितनी लम्बी चादर हो।

ओछे नर की प्रीति की, दीनी रीति बताय।
जैसे छीलर ताल जल, घटत घटत घटि जाय ॥१५॥

शब्दार्थ—प्रीति=प्रेम। छीलर=छोटा। ताल=तालाब।

भावार्थ—नीच पुरुष की प्रीति की यही रीत बताई है कि जैसे छोटे तालाब का पानी घटते घटते बिल्कुल घट जाता है वैसे ही नीच पुरुष का प्रेम भी धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है।

रस अनरस समझै न कछु, पढ़ै प्रेम की गाथ।
बीछू मत्र न जानई, साँप पिटारे हाथ ॥१६॥

शब्दार्थ—बीछू=बिच्छू।

भावार्थ—यह मूर्ख 'क्या रस है और क्या रस नही है' इस बात को तो जानते ही नहीं और प्रेम की बातें करते फिरते हैं। यह तो वैसी ही बात है, जैसे कोई बिच्छू का तो मन्त्र जानता नहीं और साँप के पिटारे में हाथ डालता है।

कछु सहाय न चलि सकै, होनहार के पास।
भीष्म युधिष्ठिर से तहाँ, भौ कुरुवस विनास ॥१७॥

शब्दार्थ—सहाय=वस, चारा। कुरुवस=कौरव व पाडवों का वश। विनास=नाश।

भावार्थ—वृन्द कवि कहते हैं कि होनहार या भाग्य पर किसी का वश नहीं चलता। जैसे कि भीष्म और युधिष्ठिर जैसे वीरों और गुणियों के रहते हुए भी कौरवों और पाण्डवों के वश को कोई न बचा सका। अन्त में उनका नाश हो ही गया। भाव यह है कि भाग्य के लिखे को कोई नहीं टाल सकता। भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने वश के नाश को न

रोक सके तो दूसरे की तो शक्ति ही क्या है कि वह भाग्य को मिटा सके।

होय बुराई तें बुरी, यह कीनौ निरधार।
खाड़ खनैगो और कौ, ताको कूप तयार॥१८॥

शब्दार्थ—निरधार=निश्चय। खाड=खड्डा। खनैगो=खोदेगा। कूप=कूत्राँ।

भावार्थ—वृन्द कवि कहते हैं कि दूसरों का बुरा करने से तुम्हारा भी बुरा होगा। इस बात को निश्चित रूप से समझ लो। बात तो यह है कि जो आदमी दूसरों के लिए खड्डा खोदेगा उसके अपने लिए कूत्राँ पहले ही से तैयार हो जायगा। भाव यह है कि कभी किसी का अनिष्ट या बुरा नहीं करना चाहिए; क्योंकि दूसरे का बुरा करने वाले या सोचने वाले का अपना बुरा पहले हो जाता है।

दुष्ट न छाँड़ै दुष्टता, पोखै राखै ओट।
सरपहि केतौ हित करौ, चुपै चलावै चोट॥१९॥

शब्दार्थ—छाँडै=छोड़े या छोड़ता है। पोखै=पालन-पोषण करे। राखै ओट=अपने आश्रय में लेकर रक्षा करे। सरपहि=साँप को। केतौ=कितना ही। हित करौ=प्यार करो। चुपै=चुपचाप।

भावार्थ—दुष्ट पुरुष अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता चाहे कोई उसका कितना ही पालन-पोषण क्यों न करे और अपने आश्रय में भी क्यों न रख ले। जैसे साँप को चाहे कोई कितना ही प्यार क्यों न करे वह मौका पाकर चुपचाप उस पर चोट चला ही देगा।

अपनी अपनी ठौर पर, सोभा लहत विसेप।
चरन महावर ही भलौ, नैनन अंजन-रेख॥२०॥

शब्दार्थ—ठौर=स्थान। लहत=प्राप्त करते हैं। रेख=रेखा।

भला हो जाता है—इस ज्ञान-युक्त शब्द-वाणी को उसी भांति विचार कर देख लो, जैसे कि एक महाराज हरिश्चन्द्र की श्रेष्ठता के कारण उनकी सारी प्रजा का उद्धार हो गया। कहते हैं कि जब हरिश्चन्द्र सशरीर स्वर्ग में गये तो अपने प्रजाजनों को भी साथ ही स्वर्ग में ले गये। यहाँ इसी कथा की ओर सकेत है।

बडेन पै जाँचे भलौ, जदपि होत अपमान।
गिरत दन्त गिर ढार तें, गज के तऊ बखान ॥२८॥

शब्दार्थ—जाँचे=प्रार्थना करें—माँगना। जदपि=यद्यपि, चाहे। दन्त=दाँत। गिर=पर्वत। गज=हाथी। बखान=प्रशसा।

भावार्थ—बड़े आदमियों से प्रार्थना करते या माँगते हुए चाहे अपमान ही क्यों न हो जाय तो भी कुछ बुरा नहीं। जैसे कि पहाड़ों से टक्कर लगाते हुए यदि हाथी के दाँत भी टूट जायँ तब भी उसकी प्रशसा ही होती है।

प्रकृत मिले मन मिलत हैं, अनमिलते न मिलाय।
दूध दही तें जमत है, काँजी ते फटि जाय ॥२९॥

शब्दार्थ—प्रकृत=प्रकृति—स्वभाव। अनमिलते=बेमेल। जमत है=जमता है।

भावार्थ—दो व्यक्तियों का स्वभाव मिलने पर ही मन मिलता है। जिनका स्वभाव नहीं मिलता उनका मन कभी नहीं मिलता। जैसे कि चाहे दही और काँजी दोनों ही खट्टे हैं फिर भी दही और दूध का स्वभाव आपस में मिलता है, इसलिए दही से तो दूध जम जाता है, पर काँजी और दूध का स्वभाव न मिलने के कारण काँजी पड़ने से दूध फट जाता है।

उत्तम जन की होड़ करि, नीच न होत रसाल।
कौवा कैसे चल सकै, राजहंस की चाल ॥३०॥

शब्दार्थ—जन=मनुष्य। होड़ करि=समता कर के। रसाल=सुन्दर, श्रेष्ठ।

भावार्थ—नीच मनुष्य चाहे बड़े आदमियों की बराबरी क्यों न कर ले, किंतु वह उनके समान बड़ा नहीं हो सकता। भला कौआ राजहंस की चाल कैसे चल सकता है। जैसे कौआ हंस नहीं हो सकता वैसे ही नीच पुरुष भी श्रेष्ठ नहीं हो सकता।

एक भेष के आसरे, जाति बरन छिप जात।
ज्यों हाथी के पाँव मे, सब को पॉव समात ॥३१॥

शब्दार्थ—भेष=वेश-भूषा। आसरे=सहारे। बरन=वर्ण, जाति।

भावार्थ—एक वेश के सहारे ही मनुष्य के सब अवगुण छिप जाते है। कहावत भी है कि हाथी के पॉव में सबके पॉव समा जाते हैं। भाव यह है कि किसी व्यक्ति ने यदि सुन्दर वस्त्र पहने हुए हैं तो उसमें चाहे कोई दोष भी क्यों न हो, वे सब छिप जाते हैं। दूसरे मनुष्यो पर तो पहले-पहल वेशभूषा का ही असर पड़ता है अथवा वेश का अर्थ साधुवेश भी कर सकते हैं। जब मनुष्य साधुओ का भगवा वेश धारण कर लेता है तो उसके सब गुणावगुण छिप जाते हैं।

जिहिं देखे लॉछन लगै, तासों दृष्टि न जोर।
ज्यों कोऊ चितवै नहिं, चौथ चंद की ओर ॥३२॥

शब्दार्थ—जिहि=जिसे। लॉछन=कलंक। दृष्टि=नज़र। चितवै=देखे।

भावार्थ—वृन्द कवि कहते हैं कि जिसको देख कर मनुष्य को कलक लगने की सम्भावना हो, उससे कभी आँख नहीं मिलानी चाहिए अर्थात् नीच पुरुषों से मेल-मिलाप नहीं रखना चाहिए। जैसे कि चौथ के चॉद को देखने से कलक लगता है, इसीलिये उसे कोई नहीं देखता।

मूरख कौं हित के वचन, सुनि उपजतु है कोप।
साँपहि दूध पिवाइयै, वाके मुख विप ओप ॥३३॥

शब्दार्थ—हित के=भले के। उपजतु है=उत्पन्न होता है। पिवाइयै=पिलायें। वाके=उसके। विष=जहर। ओप=चमक।

भावार्थ—वृन्द कवि कहते हैं कि मूर्ख व्यक्ति को हितकारक वचन ही क्यों न सुनायें, उनसे भी उसे क्रोध ही आता है। जैसे कि साँप को चाहे दूध भी पिलाओ फिर भी उसके मुख में तो विष ही हो जायगा। भाव यह है कि मूर्ख को भले की बात भी बुरी लगती है।

रूखे सूखे उदर कौं, भरे होतु सतुष्ट।
ये मन लाख करोरि के, पावैं तुष्ट न दुष्ट ॥३४॥

शब्दार्थ—उदर=पेट। सतुष्ट=प्रसन्न, सन्तुष्ट। करोरि=करोड़ों (रुपये)।

भावार्थ—यह बेचारा पेट तो रूखे-सूखे चाहे जैसे भी अन्न से भर जाये तो सन्तुष्ट हो जाता है, किन्तु यह मन ऐसा दुष्ट है कि इसे लाखों करोड़ों रुपये क्यों न मिल जायें, फिर भी यह सन्तुष्ट नहीं होता।

विद्या बिन न विराजहीं, जदपि सरूप कुलीन।
ज्यों सोभा पावै नहीं, टेसू बास विहीन ॥३५॥

शब्दार्थ—बिराजहीं=शोभित होते हैं। सरूप=सुन्दर रूप वाले। कुलीन=अच्छे कुल वाले। टेसू=पलाश के फूल। बास=सुगन्धि।

भावार्थ—वृन्द कवि कहते हैं कि चाहे मनुष्य कितना ही सुन्दर और ऊँचे कुल का क्यों न हो, पर यदि उसमें विद्या नहीं है—वह विद्वान् नहीं है, तो उसकी कहीं शोभा नहीं हो सकती। जैसे कि टेसू के फूल चाहे कितने ही सुन्दर रंग वाले क्यों न हों, सुगन्धि न आने के कारण वे कुछ भी शोभा नहीं पाते। भाव यह है कि चाहे मनुष्य कितना ही

सुन्दर और धनी क्यों न हो उसे विद्या अवश्य पढ़नी चाहिए। विद्या के बिना सब व्यर्थ है।

एकहि भले सुपुत्र तैं, सब कुल भलौ कहाय।
सरस सुवासित वृक्ष तै, ज्यौं वन सकल बसाय ॥३६॥

शब्दार्थ—सरस=रसीला। सुवासित=सुगन्धित। सकल=सारा। बसाय=सुगन्धित हो जाता है।

भावार्थ—एक ही अच्छे सुपुत्र से सारा कुल अच्छा कहलाता है, सारे कुल की शोभा बढ जाती है जैसे कि अकेले ही सरस सुगन्धित वृक्ष से सारा वन सुगन्धित हो जाता है। भाव यह कि योग्य गुणी पुत्र चाहे एक भी क्यों न हो वह एक ही अच्छा है, पर कुपुत्र चाहे बहुत से भी क्यों न हों किसी काम के नहीं।

जहाँ रहै गुनवंत नर, ताकी सोभा होत।
जहाँ धरै दीपक तहाँ, निहचै करै उदोत ॥३७॥

शब्दार्थ—गुनवंत=गुण वाला। ताकी=उसकी। निहचै=निश्चय से। उदोत=प्रकाश।

भावार्थ—जिस स्थान में गुणवान् मनुष्य रहता है, उससे उसी स्थान की शोभा होती है अथवा गुणी मनुष्य जहाँ भी रहे वहीं उसकी शोभा होती है, जैसे कि दीपक को जहाँ भी रखेंगे, वह वहीं प्रकाश कर देगा। भाव यह कि गुणी विद्वान् पुरुषों का सर्वत्र आदर होता है।

बुरौ तऊ लागत भलौ, भली ठौर पै लीन।
तिय-नैननि नीको लगै, काजर जदपि मलीन ॥३८॥

शब्दार्थ—तऊ=तो भी। लीन=लगा हुआ। तिय=स्त्री। नीको=अच्छा। मलीन=मैला।

भावार्थ—चाहे कोई बुरी वस्तु भी क्यों न हो, पर यदि वह अच्छे

स्थान पर हो तो वह अच्छी लगती है जैसे कि काजल चाहे काला है, पर जब वह किसी सुन्दरी की आँखों में लग जाता है तो सुन्दर दिखाई देने लगता है। भाव यह है कि अच्छे स्थान पर रहने से ही मनुष्य की शोभा होती है।

काहू को हँसियै नहीं, हँसी कलह को मूल।
हाँसी ही तै ह्वै गयौ, कुल कौरव निरमूल ॥३६॥

शब्दार्थ—कलह = झगड़ा। मूल = जड़। ह्वै गयौ = हो गया। निरमूल = नष्ट।

भावार्थ—किसी की हँसी नहीं उड़ानी चाहिए, क्योंकि हँसी लड़ाई की मूल है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भीमसेन ने दुर्योधन की हँसी उड़ाई थी, उसी के परिणामस्वरूप भाइयों में झगड़ा हुआ और कौरवकुल का नाश हो गया। अत मनुष्य को किसी की हँसी नहीं उड़ानी चाहिए।

जोरावर को होति है, सब के सिर पर राह।
हरि रुक्मनि हरि लै गयौ, देखत रहे सिपाह ॥४०॥

शब्दार्थ—जोरावर = बलवान्। हरि = श्रीकृष्ण। सिपाह = सिपाही।

भावार्थ—वृन्द कवि कहते हैं कि बलवान् की सबके सिरों पर राह होती है अर्थात् बलवान् जो चाहे कर सकता है, जैसे कि सब सिपाही देखते रह गये और श्रीकृष्ण रुक्मिणी को हर ले गये। भाव यह कि बलवान् कुछ भी क्यो न कर डाले उसे कोई कुछ नहीं कह सकता।

देखत कोपै कछु नहीं, मुख पै खल की प्रीति।
मृग-तृष्णा मैं होति है, ज्यों जल की परतीति ॥४१॥

शब्दार्थ—खल = दुष्ट। मृगतृष्णा = गर्मियो में रेत में भटकते हुए प्यासे हरिणों को दूर चमकती हुई रेत में पानी का भ्रम हो जाता है, इसी को मृगतृष्णा कहते हैं। परतीति = विश्वास।

भावार्थ—दुष्टों का प्रेम मुँह पर ही होता है, वास्तव में नहीं होता, जैसे कि मृग को मृगतृष्णा में भी जल का विश्वास हो जाता है, पर वास्तव में वहाँ जल होता नहीं।

द्वै ही गति है बड़नि की, कुसुम मालती भाय।
कै सब के सिर पै रहै, कै बन माँहिं बिलाय ॥४२॥

शब्दार्थ—द्वै ही=दो ही। गति=दशा। कुसुम=फूल। मालती=चमेली। भाय=भाव, स्वभाव। विलाय=नष्ट हो जाता है।

भावार्थ—महापुरुषों की चमेली के फूल के समान दो ही दशाएँ होती हैं, या तो वे सब के सिरों पर ही सुशोभित होते हैं या एकान्त वनों में ही नष्ट हो जाते हैं। भाव यह है कि जैसे चमेली का फूल या तो सब लोगों के कंठों में सुशोभित होता है, या अपनी बेल पर ही जंगल मे गिर कर मुरझा जाता है, वैसे ही महापुरुष भी या तो सब मनुष्यो के शिरोमणि बन कर रहते है, या एकान्तवास में ही अपना जीवन इस प्रकार बिता देते हैं कि कोई उन्हें जान भी नहीं पाता।

आए आदर ना करै, पीछे लेत मनाय।
आयौ नाग न पूजई, बाँबी पूजन जाय ॥४३॥

शब्दार्थ—नाग=साँप। बाँबी=बाँबी नामक कीड़ों से बना हुआ मिट्टी का उठा हुआ ढेर, जिसके बिलों में साँप छिपे रहते हैं।

भावार्थ—मनुष्य घर आये गुणी का तो आदर करते नहीं और पीछे से उसको मनाते हैं, जैसे कहावत है कि घर आये नाग को तो पूजते नहीं और बाँबी को पूजने जाते हैं (नाग-पंचमी के दिन साँप की बाँबी की पूजा करते हैं, और यदि घर में साँप निकल आये तो उसको मार डालते है)।

हीन जाति न विरोधिए, वह तौ तन दुखदाय।
रजहू ठोकर मारियै, चढ़ै सीस पर आय ॥४४॥

शब्दार्थ—हीन=तुच्छ। विरोधिए=विरोध करें। तन=शरीर। दुखदाय=दुख देने वाला। रज=धूल। सीस=सिर।

भावार्थ—किसी भी व्यक्ति को छोटा समझ कर उसका अपमान मत करो, क्योंकि छोटा व्यक्ति भी हमारे शरीर के लिए दुखदायक हो सकता है, जैसे धूल को भी ठोकर मारें तो वह धरती पर से उड़ कर हमारे शरीर पर आ पड़ती है और वस्त्रों को मैला कर देती है।

छोटे नर से बड़ेन कौ, कबहूँ बुरा न होय।
फूस आगि करि ना सकै, तपत उदधि को तोय ॥४५॥

शब्दार्थ—तपत=गरम। उदधि=समुद्र। तोय=जल।

भावार्थ—छोटे आदमी बड़े आदमियों का कभी कुछ नहीं बिगाड़ सकते। जैसे घास-फूस की आग से समुद्र का पानी गरम नहीं हो सकता।

दुष्ट न छोड़े दुष्टता, बड़ो ठौर हू पाय।
जैसे तजत न श्यामता, विष शिव-कण्ठ बसाय ॥४६॥

शब्दार्थ—श्यामता=कालापन। विष=ज़हर। बसाय=रह कर।

भावार्थ—दुष्ट पुरुष चाहे बड़े स्थान पर ही क्यों न पहुँच जाय तो भी अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता, जैसे समुद्र से निकला हुआ विष भगवान् शिव के गले में जा पहुँचा, तब भी वह काले का काला ही रहा। (समुद्र के मन्थन से जो विष निकला उसे भगवान् शिव ने पी लिया और अपने गले में अटका लिया।) इसी कथा की ओर यहाँ संकेत है।

दान दीन को दीजिए, मिटै दरिद की पीर।
औसध ताको दीजिए, जाके रोग सरीर ॥४७॥

शब्दार्थ—दरिद=दरिद्र, गरीब। पीर=पीड़ा, दुख। औसध=औषधि।

भावार्थ—दान ऐसे गरीब लोगों को देना चाहिए जिससे उनकी गरीबी कम हो जाय। औषधि तो उसे देनी चाहिए, जिसके शरीर में रोग हो। जो पहले ही नीरोग हो उसे दवाई देने से क्या लाभ, इसी प्रकार जो पहले ही धनवान् हैं उन्हें दान देने से कोई लाभ नहीं होता।

खाय न खर्चै सूम धन, चोर सवै लै जाय।
पीछै ज्यौ मधुमच्छिका, हाथ मलै पछिताय ॥४८॥

शब्दार्थ—सूम=कन्जूस। मधुमच्छिका=शहद की मक्खी।

भावार्थ—कन्जूस मनुष्य धन को न खाता है न खरचता है, उसके धन को तो चोर ही चुरा कर ले जाते हैं, जैसे शहद की मक्खी शहद एकत्रित करती रहती है, किन्तु उसे दूसरे ही लोग ले जाते हैं और वह हाथ मलती रह जाती है, वैसे ही कजूस लोग भी धन को न खाते न खरचते और न दूसरो को देते हैं—इस प्रकार अत मे पछताते रह जाते है।

अति उदारता बड़ेन की, कहँ लौ बरनै कोय।
चातक जाचै तनिक धन, बरस भरै घन तोय ॥४९॥

शब्दार्थ—बरनै=वर्णन करे। चातक=पपीहा। जाचै=प्रार्थना करता है। घन=बादल। तोय=जल।

भावार्थ—बड़े आदमियो की उदारता का कोई कहाँ तक वर्णन कर सकता है, अर्थात् कोई भी वर्णन नहीं कर सक्ता। जैसे कि पपीहा तो बादल से एक बूँद ही माँगता है किन्तु बादल इतना जल बरसा देता है कि सब स्थानो पर जल ही जल हो जाता है। भाव यह कि महापुरुष बड़े उदार होते हैं।

उत्तम विद्या लीजिए, जदपि नीच पै होय।
पर्यो अपावन ठौर को, कंचन तजत न कोय ॥५०॥

शब्दार्थ—पर्यौ=पड़ा हुआ। अपावन=अपवित्र। कंचन=सोना।

भावार्थ—उत्तम विद्या चाहे नीच पुरुष के पास ही हो, ग्रहण कर लेनी चाहिए। जैसे कि सोना चाहे अपवित्र स्थान पर ही क्यों न पड़ा हो, लोग उसे उठा ही लेते हैं।

कहूँ कहूँ गुन तें अधिक, उपजत दोष सरीर।
मीठी बानी बोलिकै, परत पींजरा कीर ॥५१॥

शब्दार्थ—उपजत=उत्पन्न होता है। परत=पड़ जाता है। कीर=तोता।

भावार्थ—कहीं-कहीं अधिक गुणों के कारण भी मनुष्य को अपने शरीर पर दुःख झेलना पड़ जाता है, जैसे मधुर वाणी बोलने के ही कारण तोते पिंजरे के बन्धन में पड़ जाते हैं। भाव यह है कि अधिक गुण भी कभी-कभी दुःख का कारण बन जाते हैं, क्योंकि यदि तोता मधुर वाणी न बोलता तो उसे कोई पिंजरे में कैद न करता, उसका यह गुण भी दुखदायी बन गया।

भले बंस संतति भली, कबहूँ नीच न होय।
ज्यों कंचन की खान में, काँच न उपजै कोय ॥५२॥

शब्दार्थ—संतति=सन्तान। कंचन=सोना।

भावार्थ—अच्छे वंश में अच्छी ही संतान होती है, कभी बुरी सन्तान नहीं उपन्न होती, जैसे कि सोने की खान में काँच कभी उत्पन्न नहीं हो सकता। सोने की खान में तो सोना ही उत्पन्न होगा, वैसे ही अच्छे कुल में अच्छे ही व्यक्ति पैदा होते हैं।

झूठ बिना फीकी लगै, अधिक झूठ दुख भौन।
झूठ तितौ ही बोलियै, ज्यों आटे में लौन ॥५३॥

शब्दार्थ—भौन=भवन, घर। तितौ ही=उतना ही।

भावार्थ—यदि मनुष्य झूठ बिल्कुल ही न बोले, तब भी वह बात

अच्छो नहीं लगतो। इसके विपरीत अधिक झूठ बोलना तो दुःखदायक ही है। इसलिए झूठ उतना ही बोलना चाहिए, जितना आटे में नमक। भाव यह कि मनुष्य को प्रथम तो झूठ बोलना ही नहीं चाहिए और यदि बोलना भी पड़े तो ऐसा बोले जिससे किसी को बुरा न लगे।

ठौर देखि कै हूजियै, कुटिल सरल गति आप।
बाहर टेढ़ौ फिरत है, बाँबी सूधो साँप ॥५४॥

शब्दार्थ—ठौर=स्थान। कुटिल=टेढ़ा। सरल=सीधा। सूधो=सीधा।

भावार्थ—जैसा-जैसा स्थान हो, मनुष्य को वैसा ही सरलता-पूर्वक या कुटिलतापूर्ण व्यवहार करना चाहिए। जैसे कि साँप बाहर तो टेढ़ा-टेढ़ा चलता है, पर बाँबी में वह सीधा होकर ही घुसता है। भाव यह कि दुष्टों के साथ दुष्टता का व्यवहार करना चाहिए एवं सज्जनों के साथ सज्जनता का व्यवहार करना चाहिए।

करै न कबहूँ साहसी, दीन हीन कौ काज।
भूख सहे पर घास कौ, नाहिं भखै मृगराज ॥५५॥

शब्दार्थ—साहसी=उत्साही, वीर। दीन हीन=दुःखी, गरीब। मृगराज=शेर। काज=काम। भखै=खाता है।

भावार्थ—साहसी वीर पुरुष कायरों जैसे कार्य कभी नहीं करते, जैसे कि शेर भूखा भले ही रह जाय, पर घास नहीं खाता।

होय भले कै सुत बुरो, भलौ बुरे कै होय।
दीपक के काजर प्रकट, कमल कीच ते होय ॥५६॥

शब्दार्थ—सुत=पुत्र। काजर=काजल।

भावार्थ—भले लोगों के बुरे तथा बुरे लोगों के भी भले पुत्र पैदा हो सकते हैं। जैसे कि दीपक जैसी प्रकाशमान वस्तु से काजल जैसी

काली वस्तु उत्पन्न हो जाती है और कीचड़ जैसी निकृष्ट वस्तु से कमल जैसा सुन्दर पदार्थ उत्पन्न हो जाता है। भाव यह कि यह कोई आवश्यक नहीं कि अच्छे माता-पिता की सन्तान भी अच्छी ही हो।

बहुत न बकिए, कीजिए, कारज अवसर पाय।
मौन गहे बक दाव पर, मछरी लेत उठाय ॥५७॥

शब्दार्थ—कारज = कार्य। अवसर = समय, मौका। गहे = ग्रहण किये हुए। बक = बगुला।

भावार्थ—बहुत अधिक बातें नहीं बनानी चाहिएँ, परन्तु समय पर अपना कार्य कर लेना चाहिए। जैसे कि बगुला चुपचाप बैठा रहता है, किन्तु दाँव पाते ही मछली को पकड़ लेता है। भाव यह कि कार्य करने से पहले शोर नहीं मचाना चाहिए, अपना कार्य धैर्य से शान्तिपूर्वक करते रहना चाहिए।

होत निबाह न आपनौ, लीने फिरत समाज।
चूहा बिल न समात है, पूँछ बाँधिए छाज ॥५८॥

शब्दार्थ—निबाह = निर्वाह, गुजारा। समाज = समूह।

भावार्थ—अपना तो निर्वाह कर नहीं सकते और अपने साथ समाज को लिये फिरते हैं, जैसे कहावत है कि चूहा तो बिल में समाता नहीं है और उसकी पूँछ पर छाज बाँध रहे हैं। भाव यह कि अपनी शक्ति के अनुसार ही कार्य करना चाहिए। पहले अपनी रक्षा का साधन करे फिर दूसरे की सोचनी चाहिए।

अतर अँगुरी चार कौ, साँच झूठ में होय।
सब मानै देखी कही, सुनी न मानै कोय ॥५९॥

शब्दार्थ—अंतर = फर्क। अँगुरी = अंगुल।

भावार्थ—सत्य और झूठ में केवल चार अंगुल का अन्तर या फर्क

होता है; क्योंकि आँखों की देखी बात को तो सब मान लेते हैं, किन्तु कानो से सुनी बात को कोई नही मानता। भाव यह है कि आँख और कान में केवल चार अगुल का अन्तर है। इसलिए सत्य और झूठ में केवल चार अंगुल का ही अन्तर होता है। भाव यह कि मनुष्य को आँखों देखी घटना का ही विश्वास होता है, सुनी हुई बात का नहीं। इस सुनने और देखने में चार अगुल का अन्तर है।

आप अकारज आपनौ, करतु कुबुध के साथ।
पायँ कुल्हारी आपने, मारतु मूरख हाथ ॥६०॥

शब्दार्थ—अकारज = काम बिगाड़ना। कुबुध = बुरी बुद्धि। कुल्हारी = कुल्हाडी। मारतु = मारता है।

भावार्थ—मूर्ख अपने हाथों से अपना काम बिगाड लेता है. वह अपनी कुबुद्धि के कारण अपने हाथो अपने पैर पर कुल्हाडी मारता है। भाव यह कि बेसमझ लोग अपनी मूर्खता के कारण स्वय ही अपना नुकसान कर बैठते हैं।

जो कहियै सो कीजिए, पहिलै करि निरधार।
पानी पी घर पूछनौ, नाहिन भलौ विचार ॥६१॥

शब्दार्थ—निरधार = निश्चय। नाहिन = नहीं।

भावार्थ—पहले निश्चय करके मनुष्य को बात कहनी चाहिए। और जो कह दे, उसे करके दिखाना चाहिए। बिना सोचे-समझे काम करना, व काम करके पछताना ठीक नहीं। जैसे कहावत है, कि पानी पीकर जाति पूछना भला किस काम का। भाव यह कि किसी भी कार्य को करने से पूर्व खूब सोच-विचार कर लेना चाहिए।

का रस मे का रोस मे, अरि तें जनि पतियाय।
जैसे सीतल तप्त जल, डारत आगि बुझाय ॥६२॥

रसनिधि

परिचय

संवत् १७६०

रसनिधि का असली नाम पृथ्वीसिंह था। ये दतिया-राज्य के अन्तर्गत जागीरदार थे।

इनके जन्म-मरण का ठीक समय निश्चित नहीं है, परन्तु संवत् १७६० में इनका होना माना जाता है।

इनका रचा हुआ रतनहज़ारा अद्भुत ग्रन्थ है। हज़ारा में कुल दोहे-ही-दोहे हैं।

भावों को झलकाने में इन्होंने बड़ी बारीक बुद्धि से काम लिया है। इनके दोहे बिहारी के दोहों से टक्कर लेते हैं।

दोहे

सार और आलोचना

जिस ईश्वर का इतना बड़ा संसार है वह परमाणु से भी छोटे मन में रहता है, कितने आश्चर्य की बात है! इस संसार मे सभी कार्यों का, पाप-पुण्य का, सुख-दुःख का कारण मन ही है, इसी ने सारे ससार को बन्धन में बाँध रखा है। इस प्रकार की मार्के की उक्तियाँ रसनिधि की कविता में एक अलौकिक छटा रखती हैं।

इनके भक्तिपरक तथा व्यवहार में निपुण बनाने की योग्यता रखने वाले दोहे वास्तव में हिन्दी-साहित्य की रसपूर्ण निधि हैं।

लसत सरस सिंधुर-वदन, भालथली नखतेस।
विघनहरन मंगलकरन, गौरीतनय गनेस॥१॥

शब्दार्थ—लसत=शोभित होता है। सरस=सुन्दर। सिंधुर=हाथी। वदन=मुख। सिंधुर-वदन=हाथी के मुख वाले श्री गणेश जी। भालथली=मस्तक। नखतेस=नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा। विघन हरन=विघ्नों का नाश करने वाले। मंगलकरन=कल्याण करने वाले। गौरीतनय=पार्वती जी के पुत्र।

भावार्थ—कवि रसनिधि गणेश जी की वन्दना करते हुए कहते हैं कि सुन्दर हाथी के मुख वाले, मस्तक पर चन्द्रमा को धारण किये हुए, विघ्नों का नाश करने वाले, कल्याण करने वाले पार्वती जी के पुत्र गणेश जी महाराज सुशोभित हो रहे हैं।

नमो प्रेम - परमारथी, इह जाचत हौं तोहि।
नंदलाल के चरन कौं, दे मिलाइ किन मोहि॥२॥

शब्दार्थ—प्रेम-परमारथी = प्रेम के परोपकारी। इह = यह। जाचत = प्रार्थना करते हैं। हौं = मैं। तोहि = तुझसे। किन = क्यों नहीं।

भावार्थ—हे प्रेम के परोपकारी प्रभु! मैं तुमसे यही प्रार्थना करता हूँ कि तुम मुझे नन्दलाल श्रीकृष्ण के चरणों से क्यों नहीं मिला देते अर्थात् अवश्य मुझे श्रीकृष्ण से मिला दीजिए।

निसि दिन गुंजत रहत जे, बिरद गरीबनेवाज।
है निज मधुकर सुतन की, कमल-नैन तुहि लाज ॥३॥

शब्दार्थ—निसि = रात। बिरद = यश। गरीबनेवाज = दीन-दयालु। निज = अपने। मधुकर = भ्रमर। कमल नैन = कमल के समान नेत्रों वाले।

भावार्थ—हे कमल के समान नेत्रों वाले श्रीकृष्ण! जो तुम्हारे पुत्र रूपी भ्रमर रात-दिन तुम्हारे दीनदयालु के यश का बखान करते हुए मानो गूँजते रहते हैं, उनकी लाज तुम्हारे ही हाथों में है। भाव यह कि भ्रमर कमलों के प्रेमी होते हैं और दिन-रात उन्हीं के गुण गाते रहते हैं उसी प्रकार भक्त भी कमल-नयन प्रभु के गुण गाते रहते हैं।

अब तौ प्रभु तारै बनै, नातर होत कुतार।
तुमहीं तारन-तरन हौ, सो मोरै आधार ॥४॥

शब्दार्थ—तारै बनै = उद्धार करने से ही काम चलेगा। नातर = नहीं तो। कुतार = बात बिगड़ जायगी। तारन-तरन = उद्धार करने वाले।

भावार्थ—हे भगवन्! अब तो मेरा उद्धार करने से ही बात बनेगी नहीं तो सब बात बिगड़ जायगी। भक्तों का उद्धार करने वाले हे भगवन्! एक तुम्हीं मेरे आधार हो। यहाँ भक्त प्रभु से उद्धार के लिए प्रार्थना करता हुआ कहता है कि आप ही मेरे सहारा हैं।

अद्भुत गति यह रसिकनिधि, सरस प्रीत की बात।
आवत ही मन साँवरो, उर कौ तिमिर नसात ॥५॥

शब्दार्थ—अद्भुत = अनोखी। सांवरो = श्याम वर्ण वाले। उर = हृदय। तिमिर = अन्धेरा। नसात = नष्ट हो जाता है।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि श्रीकृष्ण की रसभरी प्रीति की बड़ी अनोखी बात है कि मन में साँवले (काले रंग) के आते ही हृदय का अन्धकार नष्ट हो जाता है। अद्भुतता यही है कि काली चीज के आने पर तो अन्धेरा बढ़ना चाहिए, पर यहाँ पर तो वह अन्धेरा काली वस्तु से नष्ट हो जाता है—यह विरोध है। पर जब 'साँवरो' का अर्थ श्रीकृष्ण करते हैं, तो यह विरोध मिट जाता है; क्योंकि कृष्ण के ध्यान करते ही अज्ञानान्धकार का मिट जाना स्वाभाविक ही है। इसीलिए कहा गया है कि 'साँवले' के हृदय में आते ही हृदय का अन्धकार मिट जाता है।

कैइक स्वाँग बनाइकै, नाचौ बहु विधि नाच।
रीझत नहिं रिझवार वह, बिना हिए के साँच ॥६॥

शब्दार्थ—कैइक = कई, बहुत से। स्वाँग = वेश। बहु विधि = नाना प्रकार के। रीझत = प्रसन्न होता। रिझवार = प्रसन्न होने वाले श्रीकृष्ण। हिए = हृदय।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि तुम चाहे कितने ही स्वाँग बनाकर नाना प्रकार के नाच क्यों न नाच लो, पर जब तक तुम्हारा हृदय सच्चा नहीं हो जाता, तब तक वे प्रसन्न होने वाले श्रीकृष्ण भगवान् तुम पर कभी प्रसन्न न होंगे। भाव यह है कि मनुष्य चाहे भगवे कपडे पहने, चाहे सिर मुँडाये, चाहे जटा बढ़ाये, इन बातों से ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। भगवान् सच्चे हृदय से पूजा करने से प्राप्त होते हैं, बाहरी दिखावे से कुछ काम नहीं चलेगा। सच्ची पवित्र भावनाओं से ही भगवान् की प्राप्ति हो सकती है।

जाकौ गति चाहत दियौ, लेत अगति तैं राखि।
रसनिधि हैं या वात के, भक्त भागवत साखि ॥७॥

शब्दार्थ—गति=मोक्ष। अगति=बुरी दशा, दुर्गति। राखि लेत=बचा लेते हैं। या=इस। साखि=साक्षी, गवाह।

भावार्थ—भगवान् जिसको गति या मोक्ष देना चाहते हैं उसे बुरी दशा से बचा लेते हैं। रसनिधि कहते हैं कि इस वात के सभी भगवान् के भक्त और भागवत आदि पुराण ग्रन्थ गवाह हैं। भाव यह कि प्रभु मुमुक्षु साधक की सब दुःख-दैन्य-जड़ता आदि का नाश कर उसे शुद्ध चैतन्य-स्वरूप वना देते हैं।

धनि गोपी धनि ग्वाल वे, धनि जसुदा धनि नंद।
जिनके मन आगे चलै, धायौ परमानद ॥८॥

शब्दार्थ—धनि=धन्य। जसुदा=यशोदा। धायौ=दौड़ते हुए। परमानन्द=परम आनन्द स्वरूप श्रीकृष्ण।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि वे गोपी, ग्वाल, यशोदा और नन्द वावा धन्य हैं, जिनके मन के आगे आनन्दकन्द श्रीकृष्ण सदा दौड़ा करते थे।

आदि अंत अस मध्य मैं, जो है स्वय-प्रकास।
ताके चरनन की धरै, रसनिधि मन मैं आस ॥९॥

शब्दार्थ—आदि=पहले। अन्त=आखीर में। अस = ऐसे ही। मध्य=बीच में। स्वय-प्रकास=अपने आप प्रकाशमान। ताके=उसके। आस=आशा।

भावार्थ—जो परब्रह्म परमात्मा सृष्टि के आदि, सृष्टि के अन्त एव मध्य में भी स्वयमेव प्रकाशित होता रहता है, मैं अपने मन में उसी परम प्रभु के चरणों की आशा रखता हूँ।

भूले तैं करतार के, रागु न आवै रास।
यही समुझकै राख तू, मन करतारैं पास ॥१०॥

शब्दार्थ—करताल = खड़ताल—हाथों से बजाने वाला बाजा। रास न आवै = ठीक नहीं बैठता। करतारै = भगवान् के।

भावार्थ—यदि मनुष्य भजन गाते हुए हाथ से बजाई जाने वाली करताल (खड़ताल) को भूल जाय तो राग ठीक नहीं बैठता। इसलिए रसनिधि जी कहते हैं कि इस बात को भली-भाति समझकर तुम उस 'करतार' अर्थात् भगवान् में मन को लगाओ। यहाँ पर 'करतार' शब्द का दो भिन्न अर्थों मे प्रयोग हुआ है।

हरि कौ सुमिरौ हर घरी, हरि हरि ठौर जुबान।
हरि बिधि हरि के ह्वै रहो, रसनिधि सत सुजान ॥११॥

शब्दार्थ—सुमिरौ = स्मरण करो। हरि ठौर = प्रत्येक स्थान पर। हरि विधि = प्रत्येक प्रकार से। ह्वै रहो = हो जाओ।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि हे सुजान (समझदार) सतो, हर घडी भगवान् ही का स्मरण करो। प्रत्येक स्थान पर भगवान् को ही अपनी जिह्वा पर बनाये रखो। प्रत्येक प्रकार से भगवान् के ही बनकर रहो। भाव यह कि प्रत्येक अवस्था में भक्त को प्रभुमय बन जाना चाहिए।

जिन काढ़ौ ब्रजनाथ जू, मो करनी कौ छोर।
मो कर नीके कर गहौ, रसनिधि नंदकिसोर ॥१२॥

शब्दार्थ—काढ़ौ = निकालो। छोर = अन्त। नीके = भली भाति। कर = हाथ। करनी = कार्य, करतूत।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि हे भगवन्! आप मेरे कामों के अन्त या परिणाम की ओर मत देखिए। आप तो मेरे हाथों को भली-भाति मजबूती से पकड लीजिए। भाव यह कि यदि कर्मों का लेखा लगाने

लगेंगे तो मेरा कभी उद्धार न हो सकेगा अत' आप मेरे बुरे कर्मों का लेखा न देखकर मेरे उद्धार के लिए मेरा हाथ पकड़ लीजिए।

रसनिधि वाको कहत हैं, याही तैं करतार।
रहत निरतर जगत कौ, वाही के करतार ॥१३॥

शब्दार्थ—याही तैं=इसी से। करतार=सृष्टि बनाने वाला। निरंतर=लगातार। वाही के=उसी के। कर=हाथ। तार=सूत्र, धागा।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि उस ईश्वर को इसीलिए 'करतार' कहते हैं कि उसके कर हाथों में सदा ससार का तार अर्थात् सूत्र रहता है। इस दोहे में 'करतार' शब्द की नये ढग से निरुक्ति की गई है। वास्तव में 'करतार' के कर्ता का करने या बनाने वाला है, पर यह कर—हाथ में तार वाला यह नया अर्थ किया गया है।

तेरी गति नँदलाड़िले, कछू न जानी जाइ।
रजहू तें छोटो जु मन, तामैं बसियत आइ ॥१४॥

शब्दार्थ—रजहू=धूल से। तामैं=उसमें। बसियत=रहते हो।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि हे नदलाल! तुम्हारी गति का कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। चूँकि जो मन एक धूलि के कण से भी छोटा है, इतने छोटे से स्थान में भी जाकर तुम बस जाते हो। भाव यह कि वह परब्रह्म परमात्मा सृष्टि के अणु-अणु में समाया हुआ है।

दंपति चरण सरोज पै, जो अलि मन मडराइ।
तिहि के दासन दास कौ, रसनिधि सग सुहाइ ॥१५॥

शब्दार्थ—दपति=पति-पत्नी, राधा-कृष्ण का जोड़ा। सरोज=कमल। अलि=भौंरा। सुहाई=अच्छा लगता है। दासन दास=दासों के भी दास।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि श्रीराधा-कृष्ण के चरण-कमलों पर जिनका मनरूपी भ्रमर मँडराता रहता है, उनके दासो के भी दास की संगति मुझे बहुत अच्छी लगती है। भाव यह कि भगवान् के भक्तो का साथ सदा कल्याणकारक होता है।

घरी बजी घरयार सुन, बजिकै कहत बजाइ।
बहुरि न पैहै यह घरी, हरिचरनन चित लाइ ॥१६॥

शब्दार्थ—घरी=घड़ी। घरयार=घड़ियाल, घण्टा। बजिकै=बजकर। बहुरि=फिर। पैहै=पाओगे। हरि=भगवान्। चित लाइ=ध्यान लगाओ।

भावार्थ—एक एक घंटे के बाद घंटे में टन् से घडी बजती है। एक बार बजकर वह फिर बजती है और तुम्हें यह कहती है कि मनुष्य-जन्म की ऐसी सुन्दर घड़ी फिर नहीं आयेगी। इसलिए भगवान् के चरणों में अपना चित्त लगाओ। भाव यह कि प्रत्येक घंटे के बाद बजती हुई घड़ी मनुष्य को बार-बार प्रभु-भजन के लिए सावधान करती हुई कहती है कि यह घडी फिर नहीं आयेगी।

हरि बिनु मन तुव कामना, नैकु न आवै काम।
सपने के धन सौं भरे, किहि लै अपनो धाम ॥१७॥

शब्दार्थ—तुव=तेरी। कामना=इच्छा। नैकु=जरा भी। किहि=कितने। धाम=घर।

भावार्थ—रसनिधि कवि कहते हैं कि भगवान् के बिना तेरी कोई इच्छा किसी काम न आयेगी। भला बताओ तो सही कि सपने के धन से कितने अपना घर भरा है अर्थात् किसी ने नहीं भरा। जैसे स्वप्न के धन से कोई अपना घर नहीं भर सकता वैसे ही भगवान् के बिना किसी की कोई इच्छा पूर्ण नहीं हो सकती। इसलिए और सब कामों को छोड़कर भगवान् का स्मरण करना चाहिए।

जिन वारे नँदलाल पै, अपने मन धन ल्याइ।
उनके वारे की कछू, मोपै कही न जाइ ॥१८॥

शब्दार्थ—वारे=न्यौछावर किये। ल्याइ=लाकर। वारे की=सबन्ध की। मोपै=मुझ से।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि जिन लोगों ने अपने तन मन धन श्रीकृष्ण पर न्योछावर कर दिये हैं, उनकी इतनी वडी महिमा है कि उनके सम्बन्ध में मैं कुछ भी नही कह सकता। भाव यह कि भगवद्-भक्तों की महिमा का कोई वर्णन नहीं कर सकता।

हरि-पूजा हरि-भजन में, सो ही ततपर होत।
हरि उर जाही आइकै, हरबर करै उदोत ॥१९॥

शब्दार्थ—ततपर=तत्पर, लीन, लगा हुआ। उर=हृदय। जाही=जिसके। हरबर=प्रति समय या सहसा। उदोत=प्रकाश।

भावार्थ—रसनिधि कवि कहते हैं कि जिनके हृदय में भगवान् सहसा या प्रतिसमय प्रकाश करते रहते हैं, वे ही मनुष्य भगवान् की पूजा एव भगवान् के भजन में तत्पर हो सकते है—लगे रह सकते हैं। भाव यह कि जिन पर भगवान् की कृपा हो जाती है, वे ही सौभाग्यशाली प्रभु-भक्ति-पूजा में लगते हैं।

रसनिधि मन मधुकर रमहिं, जो चरनांबुज माहिं।
सरस अनखुलौ खुलत है, खुलौ खुलौई नाहिं ॥२०॥

शब्दार्थ—मधुकर=भ्रमर। रमहिं=लीन रहते हैं। चरनांबुज=चरण-कमल। अनखुलौ=जो खुला हुआ नहीं।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि जिनका मन रूपी भौंरा श्रीकृष्ण के चरण-कमलों में लीन रहता है, उन आँखों में यह खुला हुआ-दृश्यमान ससार तो वद हो जाता है और वह दूसरे लोगों की आँखों के

लिए वह परमप्रभु का स्वरूप उनकी आँखों के सामने खुल जाता है। भाव यह कि जिनका मन भगवान् मे लग जाता है वे ससार से विरक्त और प्रभु-चरणों में अनुरक्त हो जाते हैं। ससार के विषय-वासनाओं की ओर तो भक्त आँख उठा कर भी नहीं देखते और सदा भगवान् में ही लीन रहते हैं।

रूप दृगन स्रवनन सुजस, रसना मैं हरिनाम।
रसनिधि मन मैं नित बसैं, चरन कमल अभिराम ॥२१॥

शब्दार्थ—दृगन = आँखों में। स्रवनन = कानो में। रसना = जिह्वा। अभिराम = सुन्दर।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि मेरे नेत्रों में भगवान् का स्वरूप, कानो में भगवान् के गुणगान के शब्द, जिह्वा मे भगवान् का नाम और मन में भगवान् के सुन्दर चरण-कमल सदा निवास करे। भाव यह कि आँख, कान, जिह्वा और मन आदि इन्द्रियों से प्रति समय प्रभु में ही लीन रहूँ, उसी का चिन्तन और दर्शन करता रहे।

कपटौ जब लौं कपट नहिं, साँच बिगुरदा धार।
तब लौं कैसे मिलैगो, प्रभु साँचो रिझवार ॥२२॥

शब्दार्थ—कपटौ = दूर करो। बिगुरदा = उत्साह, वीरता। रिझवार = प्रसन्न होने वाला।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि हृदय मे सच्चा उत्साह उत्पन्न करके जब तक तुम अपने हृदय के कपट को दूर नहीं कर दोगे तब तक वह सच्चा प्रेमी परमप्रभु भला तुम्हें कैसे मिल सकता है! भाव यह कि प्रभु की प्राप्ति के लिए तो अपने हृदय को निष्कपट बनाना ही होगा। जब तक मन में कपट रहेगा भगवान् कभी नहीं मिलेंगे।

नेत नेत कहि निगम पुनि, जाहि सकै नहिं जान।
भयौ मनोहर आइ ब्रज, वही सो हरि हर आन ॥२३॥

शब्दार्थ—नेत नेत='नेति नेति' उस प्रभु का कहीं श्रादि श्रत नहीं है। निगम=वेद श्रादि शास्त्र। पुनि=फिर।

भावार्थ—जिस ब्रह्म का वेदादि शास्त्र 'नेति नेति'—'कहीं श्रादि श्रत नहीं है' ऐसा कहकर कुछ भी ज्ञान नहीं प्राप्त कर पाये, वही पूर्ण पर-ब्रह्म भगवान् विष्णु व्रज में भगवान् श्रीकृष्ण के मनोहर रूप में प्रगट हुए हैं। भाव यह कि श्रीकृष्ण साक्षात् परिपूर्ण परब्रह्म ही हैं।

परम दया करि दास पै, गुरू करी जब गौर।
रसनिधि मोहन भावतौ, दरसायौ सब ठौर ॥२४॥

शब्दार्थ—गौर=ध्यान। भावतौ=मनचाहा, परमप्रिय। दरसायौ=दिखाया।

भावार्थ—जब गुरु देव ने श्रपने इस दास पर बड़ी भारी दया कर के कुछ ध्यान दिया तो सभी स्थानों में श्रर्थात् सृष्टि के श्रणु-श्रणु में उस परम प्रिय श्रीकृष्ण का दर्शन करा दिया। भाव यह कि गुरुदेव की कृपा से ही भगवान् के दर्शन सभव हो सकते हैं।

पाप पुण्य श्ररु जोति तैं, रबि ससि न्यारे जान।
जद्यपि सो सब घटन मैं, प्रतिबिंबित है श्रान ॥२५॥

शब्दार्थ—जोति=प्रकाश। श्ररु=श्रौर। रबि=रवि, सूर्य। ससि=चन्द्रमा। न्यारे=श्रलग। घटन में=हृदयों में। प्रतिबिम्बित=झलकता है।

भावार्थ—सूर्य श्रौर चन्द्रमा यद्यपि सब हृदयों में प्रतिबिम्बित श्रौर प्रकाशित होते हैं, फिर भी वे उनके पाप-पुण्यों श्रौर प्रकाश से श्रलग रहते हैं। (इसी प्रकार वह ब्रह्म भी सब के हृदय में विद्यमान रहते हुए भी उनके पाप पुण्यों से सदा निर्लिप्त रहते हैं।)

श्रापु भँवर श्रापुहि कमल, श्रापुहि रग सुबास।
नेन श्रापुही वासना, श्रापु लसत सब पास ॥२६॥

शब्दार्थ—सुवास=सुगन्धित । वासना=सुगन्धि । लसत=शोभित होता है ।

भावार्थ—वह ब्रह्म स्वयं, ही तो भौंरा है, आप ही कमल है, स्वयं ही रूप-रंग और सुगन्धि है । वह खुद ही सुगन्धि लेता है और स्वयं ही सर्वत्र अनेक रूपों में जगमगाता है । भाव यह कि सृष्टि के अणु-अणु मे वह ब्रह्म स्वय सर्वत्र व्याप्त हो रहा है ।

पवन तुहीं पानी तुहीं, तुहीं धरनि आकास ।
तेज तुहीं पुनि जीव है, तुहीं लियौ तन वास ॥२७॥

शब्दार्थ—पवन=वायु । धरनि=पृथ्वी । वास=निवास ।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि जल, वायु, पृथ्वी, आकाश और तेज के रूप में हे मेरे परमप्रभु ! सर्वत्र तुम्हीं व्याप्त हो रहे हो । प्राण और आत्मा के रूप में तुमने ही प्राणियों के शरीरों में अपना निवास-स्थान बनाया हुआ है ।

कहूँ हाकमी करत है, कहूँ वंदगी आइ ।
हाकिम वंदा आपुही, दूजा नहीं दिखाइ ॥२८॥

शब्दार्थ—हाकमी=स्वामित्व या शासन । वंदगी=सेवा । हाकिम=स्वामी या शासक । वन्दा=सेवक ।

भावार्थ—रसनिधि कवि अद्वैतवाद के सिद्धान्तों के अनुसार जीव-ब्रह्म की एकरूपता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह ब्रह्म ही कहीं तो हाकिम या शासक वन कर शासन करता है, आज्ञाएँ देता है और कहीं सेवक वन कर सेवाएँ करता है । वह स्वय ही हाकिम है और स्वयं ही सेवक है, उसके सिवा दूसरा कोई भी दिखाई नहीं देता । ब्रह्म ही अनेक रूप धारण किये हुए है ।

साँची सी यह वात है, सुनियौ सज्जन संत ।
स्वाँगी तौ वह एक है, वहि के स्वाँग अनंत ॥२६॥

शब्दार्थ—साँची = सच्ची । स्वाँगी = स्वाँग रचने वाला । स्वाँग = भेस । अनन्त = बहुत से ।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि सन्त-सज्जनो ! इस सच्ची बात को बड़े ध्यान से सुन लो कि वह नाना प्रकार के स्वाँग रचने वाला ब्रह्म तो एक ही है । विश्व के नाना प्रकार के पदार्थ और प्राणी सब उसी के भिन्न-भिन्न स्वाँग हैं । भाव यह है कि वास्तव में उस एक ब्रह्म ने ही इस चराचर के रूप में अनेक रूप धारण किये हुए हैं ।

कोटि घटन मैं बिदित ज्यौं, रबि प्रतिबिंब दिखाइ ।
घट घट मैं त्यौंहीं छिप्यौ, स्वय-प्रकासी आइ ॥३०॥

शब्दार्थ—कोटि = करोड़ों । घटन = घड़ों में । बिदित = ज्ञात, मालूम । रबि = सूर्य । प्रतिबिम्ब = झलक, ऐक्स । घट घट में = प्रत्येक के हृदय में । स्वयप्रकासी = अपने आप प्रकाशित होने वाला ।

भावार्थ—जैसे एक ही सूर्य के करोड़ों घड़ों के पानी में अनेक प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं पर वास्तव में वह सूर्य तो एक ही है, उसी प्रकार वह परब्रह्म भी घट-घट में स्वय प्रकाशमान होकर प्रतिबिम्बित हो रहा है । भाव यह कि वह एक ब्रह्म ही अनेक रूप धारण किये हुए है ।

ब्रह्म फटिक मन सम लसै, घट घट माँझ सुजान ।
निकट आय बरतै जो रँग, सो रँग लगै दिखान ॥३१॥

शब्दार्थ—फटिक मन = स्फटिक मणि, बिल्लौर, शीशा । सम = समान । लसै = शोभित होता है । माँझ = मध्य मे । निकट = पास में ।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि ब्रह्म तो स्फटिक मणि (बिल्लौर) के समान है । वह प्रत्येक हृदय में व्याप्त होकर सुशोभित हो रहा है । उसके पास में जो रग आता है वही रग उसमें प्रतिबिम्बित होजाता है । भाव यह कि जैसे शीशे के सामने हरा रग हो तो शीशा भी हरा और लाल रग हो तो लाल दिखाई देता है, वैसे ही ब्रह्म भी कहीं चींटी

के रूप में, तो कहीं हाथी के रूप में, ऐसे नाना रूपों में प्रतिबिम्बित हो रहा है।

वही रग वह आपु ही, भयौ तिली में तेल।
आपुन बास्यौ सुमन है, आपुहि भयौ फुलेल ॥३२॥

शब्दार्थ—बास्यौ=सुगन्धित। सुमन=पुष्प। फुलेल=इत्र।

भावार्थ—वह ब्रह्म सृष्टि के अणु-अणु में वैसे ही व्याप्त हो रहा है जैसे कि तिलों में तेल। वह स्वय ही सुगन्धित पुष्प है और स्वयं ही फुलेल या इत्र बन जाता है।

यौं सब जीवन की लखौ, ब्रह्म सनातन आद।
ज्यौं माटी के घटन की, माटी पै बुनियाद ॥३३॥

शब्दार्थ—लखौ=देखो। सनातन=सदा रहने वाला, जिसका आदि अन्त न हो। बुनियाद=आरम्भ।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि वह नित्य रहने वाला ब्रह्म इसी प्रकार सब जीवों का मूल कारण है, जैसे कि मिट्टी के घड़ों का मूल कारण मिट्टी ही है।

जलहूँ में पुनि आपु ही, थलहूँ में पुनि आपु।
सब जीवन में आपु है, लसत निरालौ आपु ॥३४॥

शब्दार्थ—थल=स्थल, भूमि। पुनि=फिर। लसित=शोभित होता है। निरालौ=निराला, अनुपम।

भावार्थ—वह ब्रह्म जल में भी स्वय है व स्थल में भी आप ही शोभित हो रहा है। सब जीवों में निराला वह प्रभु स्वयं ही सुशोभित हो रहा है। भाव यह कि वह प्रभु सर्वव्यापक है।

मोहनवारौ आपु ही, मन मानिक पुनि आपु।
पोहनवारौ आपु ही, जोहनिहारौ आपु ॥३५॥

शब्दार्थ—मोहनवारौ=मोहित करने वाला। मन मानिक=मणि-माणिक्य। पोहनहारौ=पिरोने वाला। जोहनहारौ=देखने वाला।

भावार्थ—वह परब्रह्म स्वयं ही मोहित करने वाला है अर्थात् मणि-माणिक्यों (हीरे-जवाहरातों) को पहनकर दर्शकों को मोहित करने वाला वह स्वयं ही है। और मणि-माणिक्य भी स्वयं ही है। और मणि माणिक्यों को माला के रूप में पिरोने वाला भी वही है। तथा उस माला को धारण करने वाले को देखने वाला भी वह स्वयं ही है।

वसी हू में आपु ही, सप्त सुरन में आपु।
वजवैया पुनि आपु ही, रिझवैया पुनि आपु ॥३६॥

शब्दार्थ—सप्त=सात। सुरन=स्वर। वजवैया=वजाने वाला। रिझवैया=प्रसन्न होने वाला।

भावार्थ—वह ब्रह्म वशी में भी स्वयं ही व्याप्त है, सातों स्वरों में भी वही व्याप्त है, वजाने वाला भी वह स्वयं ही है और उस वशी की ध्वनि को सुनकर उस पर प्रसन्न होने वाला भी वही है। उसके सिवा दूसरा कोई नहीं है।

वीज आपु जर आपु ही, डार पात पुनि आपु।
फूलहि में पुनि आपु फल, रस में पुनि निधि आपु ॥३७॥

शब्दार्थ—जर=जड। निधि=भडार, घर।

भावार्थ—वीज में और जड में भी वह ब्रह्म स्वयं ही समाया हुआ है। शाखाओं या डालियों, पत्तों, फूलों, फलो और रसों में भी वह स्वयं ही व्याप्त हो रहा है।

पंचन पंच मिलाइकै, जीव ब्रह्म मे लीन।
जीवनमुक्त कहावही, रसनिधि वह परवीन ॥३८॥

महाभूत। जीवनमुक्त=जो अपने जीवन काल में ही मुक्त हो गया। परवीन=प्रवीण, चतुर।

भावार्थ—जिन महापुरुषों ने पृथ्वी, जल, तेज, आकाश, वायु, इन पाँच तत्त्वों को पाँचों में मिलाकर जीव को ब्रह्म में मिला दिया, वे चतुर पुरुष ही जीवनमुक्त कहाते हैं। भाव यह है कि जो मनुष्य अपने शरीर के पचमहाभूतों में से जल में जल को, वायु को वायु में, आकाश में आकाश को, तेज में तेज को, पृथ्वी में पृथ्वी को मिला देते हैं, न वे पृथ्वी के गुण सुगन्धि के लिए उत्सुक होते हैं, न जल के गुण किसी रस के लिए ही ललचाते हैं, न तेज के गुण रूप पर ही मोहित होते हैं, न आकाश के गुण शब्द—गाने आदि पर मस्त होते हैं और न वायु के गुण किसी सुखद स्पर्श की ही आकांक्षा करते हैं। इस प्रकार रूप, रस, गध, शब्द, स्पर्श आदि विकारो से जिनका मन विकृत नहीं होता, वे जीवनमुक्त कहलाते हैं।

कुदरत वाकी भर रहो, रसनिधि सब ही जाग।
ईंधन विन बनियौ रहै, ज्यौं पाहन मैं आग ॥३६॥

शब्दार्थ—वाकी=उसकी। जाग=स्थान। बनियौ रहै=बनी रहती है। पाहन=पत्थर।

भावार्थ—जैसे बिना ईंधन के भी पत्थर में आग समाई रहती है, वैसे ही सभी स्थानों में उस प्रभु की महिमा व्याप्त हो गई है।

अलख सबैई लखत वह, लख्यौ न काहू जाइ।
दृग तारिन के तिलक की, झाँकि न झाँकी जाइ ॥४०॥

शब्दार्थ—अलख=जो किसी को दिखाई न दे, वह ईश्वर। सबैई=सबको। लखत=देखता है। लख्यौ जाय=देखा जाता। दृग=आँखे। तारिन=पुतलियाँ।

भावार्थ—वह अलक्ष्य ईश्वर सबको देखता है पर उसे कोई नहीं देख सकता, जैसे आँखों की पुतलियाँ सबको देखती हैं पर कोई भी अपने

आप अपनी उन पुतलियों को नहीं देख पाता ।

गरजन में पुनि आपु ही, बरसन में पुनि आपु ।
सुरझन में पुनि आपु त्यों, उरझन में पुनि आपु ॥४१॥

शब्दार्थ—सुरझन=सुलझना । उरझन=उलझना ।

भावार्थ—बादलों के गर्जने में भी वह ब्रह्म ही है एव उनके बरसने में भी वही व्याप्त हो रहा है । सुलझने में भी वही है और उलझने में भी वही है । अर्थात् सारे ससार में उसके सिवाय और दूसरा कोई नहीं है ।

कहुँ गावै नाचै कहूँ, कहूँ देत है तार ।
कहूँ तमासा देखही, आपु बैठ रिझवार ॥४२॥

शब्दार्थ—तार=ताल । रिझवार=प्रसन्न होने वाला ।

भावार्थ—वह ब्रह्म कहीं नाचता है, कहीं गाता है, कहीं ताल देता है और कहीं बैठा प्रसन्न होकर दर्शक के रूप में तमाशा देखता है । भाव यह कि ब्रह्म ही अनेक रूपों में व्याप्त है ।

नर पसु कीट पतंग में, थावर जंगम मेल ।
ओट लियै खेलत रहै, नयौ खिलारी खेल ॥४३॥

शब्दार्थ—कीट=कीड़ा । थावर=स्थावर, स्थिर रहने वाले जड पदार्थ । जंगम=चलते-फिरते, चेतन पदार्थ । ओट=आड़, परदा ।

भावार्थ—वह ब्रह्म रूपी खिलाड़ी मनुष्य, पशु, कीड़े, पतगे, जड और चेतन आदि नाना रूपों की ओट लेकर नाना प्रकार के खेल नित्य ही खेलता रहता है ।

हिंदू में क्या और है, मुसलमान में और ।
साहिब सब का एक है, व्याप रहा सब ठौर ॥४४॥

शब्दार्थ—साहिब=स्वामी, ईश्वर ।

भावार्थ—रसनिधि कहते हैं कि वह ईश्वर हिन्दुओं का कोई दूसरा और मुसलमानों का क्या कोई और है ? वह सर्वव्यापक प्रभु तो हिन्दू और मुसलमान दोनो का एक ही है।

कहुँ नाचत गावत कहूँ, कहूँ बजावत बीन।
सब मैं राजत आपु ही, सब ही कला प्रवीन ॥४५॥

शब्दार्थ—राजत=शोभित होता है। प्रवीन=चतुर।

भावार्थ—वह ब्रह्म कहीं गाता, कहीं बीन बजाता, कहीं नाचता है। सभी कलाओं में निपुण वह ईश्वर ही सब रूपों में सुशोभित हो रहा है।

जल समान माया लहर, रवि समान प्रभु एक।
लहि वाके प्रतिबिंब कौं, नाचत भाँति अनेक ॥४६॥

शब्दार्थ—समान=जैसा। रवि=रवि, सूर्य। लहि=प्राप्त करके। वाके=उसके। प्रतिबिम्ब=परछाईं। अनेक भाँति=कई प्रकार के, कई तरह से।

भावार्थ—यह माया तो जल की लहर के समान है और वह एक प्रभु परमात्मा सूर्य के समान है। उस परमात्मा रूपी सूर्य के प्रतिबिम्ब माया रूपी जल की लहरों में अनेक रूप धारण कर प्रतिबिम्बित हो रहे हैं।

राई कौ बीसो हिसा, ताहू मैं पुनि आइ।
प्रभु बिन खाली ठौर कहुँ, इतनौहूँ न दिखाइ ॥४७॥

शब्दार्थ—बीसो=बीसवाँ। हिसा=हिस्सा, भाग। ताहू में=उसमें भी। ठौर=स्थान।

भावार्थ—राई के बीसवें भाग के समान सूक्ष्मतम अंश में भी वह प्रभु व्याप्त हो रहा है। कोई इतना-सा स्थान भी ऐसा नहीं है जो प्रभु की सत्ता से रहित हो।

दूसरे के दु:ख-दर्द को जानने वाले दयालु पुरुषों का बोलना, चलना आदि सभी कार्य और ही प्रकार के होते हैं, अर्थात् उनके प्रत्येक कार्य में दया के भाव झलकते हैं।

मीता तू या बात कौं, हिए गौर करि हेर।
दरदवत बेदरद कौं, निसि वासर कौं फेर ॥५५॥

शब्दार्थ—मीता = मित्र। बेदर्द = निर्दय। निसि = रात। बासर = दिन। फेर = भेद, अन्तर।

भावार्थ—हे मित्र! तू इस बात को अपने हृदय में विचार कर देख ले कि निर्दय और दयालु पुरुषों में रात-दिन का अन्तर होता है।

सज्जन पास न कहु अरे. ये अनसमझी बात।
मोम रदन कहुँ लोह के, चना चवाये जात ॥५६॥

शब्दार्थ—अनसमझी = बेसमझों जैसी, मूर्खता की। रदन = दाँत।

भावार्थ—हे भाई! सज्जनों के पास कोई मूर्खता की बात मत कहो। भला कहीं मोम के दाँतों से भी लोहे के चने चबाये जा सकते हैं, अर्थात् कभी नहीं चबाये जा सकते। भाव यह है कि जैसे मोम के दाँतों से लोहे के चने नहीं चबाये जा सकते वैसे ही समझदार मूर्खता की बात को नहीं मान सकते।

जब देखौ तब भलन तें, सजन भलाई होहि।
जारैं जारैं अगर ज्यौं, तजत नहीं खसबोहि ॥५७॥

शब्दार्थ—जारैं = जलाने पर। अगर = एक सुगन्धित पदार्थ जिसकी अगरबत्ती बनती है। खसबोई = खुशबू, सुगन्धि।

भावार्थ—भले पुरुषों से सज्जनों की भलाई ही होती है। जैसे कि अगर को जलाया जाय तो उससे सुगन्धि ही आती है। वह जलने पर भी अपनी सुगन्धि को नहीं छोड़ता, इसी प्रकार सज्जन कष्ट सहकर भी दूसरों का उपकार करते हैं।

बेदाना सै होत है, दाना एक किनार।
बेदाना नहिं आदरै, दाना एक अनार ॥५८॥

शब्दार्थ—बेदाना = जो बुद्धिमान् न हो, मूर्ख। दाना = बुद्धिमान्।

भावार्थ—मूर्ख मनुष्यों में से बुद्धिमान् मनुष्य अलग हो जाते हैं। जैसे कि बिना दाने के अनार का कोई आदर नहीं करता, पर अनार के एक-एक दाने का सभी आदर करते हैं।

प्रीतम इतनी बात कौ, हिय कर देखु विचार।
बिनु गुन होत सु नैकहूँ, सुमन हिए कौ हार ॥५६॥

शब्दार्थ—गुन = गुण और तागा। सुमन = सुन्दर मन और पुष्प।

भावार्थ—हे सज्जनो, तुम अपने मन मे इस बात को विचार कर देख लो कि बिना गुणों के कोई भी व्यक्ति किसी भी शुद्ध मन वाले व्यक्ति के हृदय का हार नहीं हो सकना। जैसे कि बिना धागे के कोई भी हृदय का हार नहीं बन सकता। फूल जब धागे मे पिरोये जाते हैं, तभी हार बनकर दूसरो के हृदयों पर स्थान प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी तभी किसी के हृदय में स्थान प्राप्त कर सकता है जब उसमें गुण हों। बिना गुणों के कोई किसी को नहीं पूछता। यहाँ गुण शब्द के दो अर्थ हैं—विद्या आदि गुण और धागा।

हित करियत यह भाँति सौं, मिलियत है वह भाँत।
छीर नीर तैं पूछ लै, हित करिबे की बात ॥६०॥

शब्दार्थ—हित = प्रेम। छीर = क्षीर, दूध। नीर = जल।

भावार्थ—एक-दूसरे को कैसे प्रेम किया जाता है और एक-दूसरे किस प्रकार आपस में मिल जाते हैं, प्रेम करने की इस रीति को तुम दूध और पानी से पूछ लो। दूध और पानी दोनो एक-दूसरे को इतना प्यार करते हैं कि दोनो एकाकार हो जाते हैं। दूध पानी को अपने में मिलाकर

उसे भी अपने जैसा बना लेता है यही मित्र की पहचान है कि अपने मित्र को भी अपने जैसा श्रेष्ठ बना ले।

बढ़त आपनौ गोत कौ, और सबै अनखाइ।
सुहृद नैन नैना बढ़े, देखत हियौ सिहाइ ॥६१॥

शब्दार्थ—गोत = जाति, गोत्र। अनखाई = झुँझलाते हैं, दुःखी होते हैं। सुहृद = मित्र। हियौ = हृदय। सिहाइ = प्रसन्न होता है।

भावार्थ—और सब लोग तो अपनी जाति वालों को बढ़ते देखकर ईर्ष्या से जल जाते हैं, पर मित्र के बड़े नेत्रों को देखकर नेत्रों को बड़ी शान्ति मिलती है। भाव यह कि अपने प्रिय की सुन्दर और बड़ी-बड़ी आँखों को देखकर मनुष्य को बड़ी प्रसन्नता होती है।

पसु पच्छी हू जानहीं, अपनी अपनी पीर।
तब सुजान जानौं तुमैं, जब जानौ पर-पीर ॥६२॥

शब्दार्थ—पच्छी = पक्षी। सुजान = सज्जन।

भावार्थ—रसनिधि कवि कहते हैं कि अपने दुःख-दर्द को तो पशु-पक्षी भी पहचानते हैं, पर सज्जन तो वही है जो दूसरों के भी दुःख-दर्द को पहचाने और उन्हें दूर करने का यत्न करे।

इतनोई कहनो हतौ, प्रीतम तोसौं मोहि।
मान राखवी बात तौ, मान राखनौ तोहि ॥६३॥

शब्दार्थ—हतौ = था। राखवी = रखना।

भावार्थ—हे प्रियतम, मुझे तुमसे इतना ही कहना था कि यदि तुम अपनी बात मनाना चाहते हो तो तुम्हें दूसरे का मान करना चाहिए। भाव यह कि तुम दूसरे का मान करोगे तो दूसरे भी तुम्हारी बात मानेंगे।

कहै अलप मति कौन विध, तेरे गुन विस्तार।
दीन-बन्धु प्रभु दीन कौं, लै हर विधि निस्तार ॥६४॥

शब्दार्थ—अलप=थोड़ी। मति=बुद्धि। कौन बिध=किस प्रकार। निस्तार=छुटकारा, उद्धार। हरबिध=प्रत्येक प्रकार से।

भावार्थ—हे भगवन्! मैं छोटी बुद्धि वाला भला आप के गुणों के विस्तार का किस प्रकार वर्णन कर सकता हूँ। हे दीनबन्धो! मुझ दीन का आप प्रत्येक प्रकार से उद्धार कर दीजिए अथवा मेरा सदा ध्यान रखते रहिए।

गह्यौ ग्राह गज जिहिं समै, पहुँचत लगी न वार।
और कौन ऐसे समै, सकट काटनहार ॥६५॥

शब्दार्थ—गह्यौ=पकड़ लिया। ग्राह=मगरमच्छ। गज=हाथी। जिहिं समै=जिस समय। वार=देर। सकट=कष्ट। काटनहार=काटने वाला।

भावार्थ—जिस समय हाथी को मगरमच्छ ने पकड़ लिया और वह उसे खींच कर पानी में ले जाने लगा तो भगवान् को उसकी रक्षा के लिए पहुँचने में कुछ भी देर नहीं लगी। ऐसे समय में भक्तों के सकट को काटने वाला भगवान् के सिवाय भला और कौन हो सकता है।

जौ कछु उपजत आइ उर, सो वे आँखै देत।
रसनिधि आँखैं नाम इन, पायो अरथ समेत ॥६६॥

शब्दार्थ—उपजत=उत्पन्न होता है। उर=हृदय। आँखैं देत=कह देती हैं।

भावार्थ—रसनिधि कवि कहते हैं कि हृदय में जो कुछ विचार उत्पन्न होते हैं, उन्हीं को ये आँखें आख देती हैं अर्थात् कह देती हैं। इसीलिए इनका यह सार्थक 'आँखें' नाम है। (पंजाबी में कह देने को 'आख देना' कहते हैं। इसी आधार पर कवि ने आँख शब्द की यह नई निरुक्ति की है।)

अतः हे भगवन् मेरा उद्धार आप अवश्य कर दीजिए ।

नदलाल सँग लग गए, बुध बिचार वर ज्ञान।
अब उपदेसनि जोग ब्रज, आयौ कौन सयान ।।७३।।

शब्दार्थ—बुध=बुद्धि । बर=श्रेष्ठ । सयान=चतुर ।

भावार्थ—ब्रज में उपदेश देने के लिए उद्धव को आया जान कर गोपियाँ परस्पर कहती है कि हमारी बुद्धि, विचार और ज्ञान पहले ही श्रीकृष्ण के साथ चले गये, अब यहाँ ऐसा कौन है जो किसी का उपदेश सुन सके, फिर न जाने कोई चतुर हमे उपदेश देने क्यो आया है । भाव यह कि हम यहाँ उद्धव के निर्गुणवाद का उपदेश नहीं सुनना चाहती।

मोहन लखि जो बढ़त सुख, सो कछु कहत बनै न।
नैनन के रसना नहीं, रसना कै नहि नैन। ७४।।

शब्दार्थ—रसना=जीभ । कहत बनै न=अब कहा नहीं जाता ।

भावार्थ—श्रीकृष्ण को देखकर जैसा दिव्य आनद प्राप्त होता है, उस आनन्द का कोई वर्णन नहीं कर सकता, क्योकि जो आँखे देखती है, उनके तो कोई जीभ नही है जो वर्णन कर सके और जो जीभ वर्णन कर सकती है उसके आँखे नही है । बिना देखे वह बेचारी जीभ उसका क्या वर्णन कर सकती है ।

मैं जानी रसनिधि सही, मिली दुहुनि की वात ।
जित दृग तित चित जात है, जित चित तित दृग जात ।।७५।।

शब्दार्थ—दृग=आँख । दुहुनि की=दोनों की ।

भावार्थ—रसनिधि कहते है कि मैने यह भली भाति जान लिया है कि मन और आँखो ने परस्पर अपनी बात बना ली है क्योकि जहाँ नेत्र जाते हैं वहीं मन चला जाता है और जहाँ मन जाता है वहाँ आँखें भी चली जाती हैं ।

तन मन तोपै वारिबौ, यह पतंग कौ नाम।
एते हूँ पै जारिबौ, दीप तिहारो हि काम ॥७६॥

शब्दार्थ—तोपै=तुझ पर । वारिबौ=न्योछावर करना। एते हूँ पै=इतने पर भी। जारिबौ=जलाना। दीप=दीया। तिहारो=तेरा।

भावार्थ—रसनिधि कवि दीपक को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि पतग तो तुझ पर अपना तन और मन सब कुछ न्योछावर कर देता है। इतने पर भी अपने इस प्रेमी को जला देना, हे निष्ठुर दीपक ! तेरा ही काम है। अर्थात् वह दीपक बड़ा निर्दयी है जो अपने प्रेमी पतगों को जला देता है।

तोय मोल मैं देत हौ, छीरहि सरिस बढ़ाइ।
आँच न लागन देत वह, आप पहिल जर जाइ ॥७७॥

शब्दार्थ - तोय=पानी। छीर=दूध। सरिस=सदृश, समान। जर जाइ=जल जाता है।

भावार्थ - दूध पानी को अपने में मिलाकर उसका मूल्य अपने ही समान बना देता है। पर जब दूध को आग पर गरम किया जाता है तो दूध से पहले पानी अपने को जला लेता है और दूध को बचा लेता है। इस प्रकार अपने मित्र के प्राणों की रक्षा कर उसके उपकार का बदला चुका देता है। मित्रता हो तो दूध और पानी जैसी हो।

लखि बढ़यार सुज तिया, अनख धरै मन नाहिं।
बड़े नैन लखि अपुन पै, नैनन सही सिहाहिं ॥७८॥

शब्दार्थ—लखि=देखकर। बढ़यार=बढ़ता हुआ। सुजातिया=अपनी जाति वाले को, अच्छी जाति वाला, कुलीन। अनख=ईर्ष्या, जलन। सिहाहि=प्रसन्न और शीतल होते हैं, या ईर्ष्या करते हैं।

भावार्थ—कुलीन लोग अपनी जाति वालों को बढ़ता देखकर मन में

जलन नहीं रखते हैं जैसे आँखें बड़ी आँखो को देखकर अत्यत प्रसन्न व शीतल हो जाती हैं। इस दोहे का अर्थ इस प्रकार भी कर सकते हैं कि अपनी जाति वालों को बढता देखकर किस के मन में जलन उत्पन्न नहीं होती जैसे आँखें बड़ी आँखो को देखकर ईर्षा करने ही लगती हैं।

प्यास सहत पी सकत नहिं, औघट घाटनि पान।
गज की गरुवाई परी, गज ही के गर आन ॥७६॥

शब्दार्थ—औघट=कम गहरा घाट। गज=हाथी। गरुवाई=बड़प्पन। गर=गला। आन=आकर।

भावार्थ—हाथी प्यास सह लेता है पर औघट अर्थात् कम गहरे ऊबड़-खाबड़ घाट में पानी नहीं पी सकता। इस प्रकार हाथी के बड़प्पन का दोष उसी के गले पड़ा कि कम गहरे पानी से पानी नहीं पी सकता और प्यासा ही रहता है।

औघट घाट पखेरुवा, पीवत निरमल नीर।
गज गरुवाई तें फिरै, प्यासे सागर तीर ॥८०॥

शब्दार्थ—पखेरुआ=पक्षी। निरमल=स्वच्छ। नीर=पानी। गरुवाई=भारीपन, बड़प्पन।

भावार्थ—उथले या कम गहरे घाटों पर भी पक्षी तो निर्मल पानी पी लेते हैं, पर हाथी बड़प्पन के कारण समुद्र के तट पर भी (जहाँ पानी गहरा न हो) प्यासा ही मरता है।

धरि सोने के पींजरा, राखौ अमृत पिवाइ।
विष कौ कीरा रहत है, विष ही में सुख पाइ ॥८१॥

शब्दार्थ—विष=जहर। कीरा=कीड़ा।

भावार्थ—जहर के कीड़े को चाहे सोने के पिंजरे में भी क्यों न रखें और अमृत भी क्यों न पिलायें फिर भी वह तो जहर खाकर ही

प्रसन्न होगा। भाव यह है कि दुष्ट पुरुष अपनी दुष्टता कभी नहीं छोड़ता, चाहे उसे कितना ही सुख क्यों न दो।

बैठत इक पग ध्यान धरि, मीनन कौं दुख देत।
बक मुख कारै हो गए, रसनिधि याही हेत ॥८२॥

शब्दार्थ—मीनन = मछलियाँ। बक = बगुले। कारै = काले। यही हेत = इसीलिए।

भावार्थ—ये बगुले ऊपर से तो ऐसे दीखते हैं कि मानो एक पाँव पर खड़े होकर तपस्या कर रहे हैं और भगवान् का ध्यान कर रहे हैं, पर ये मछलियों को पकड़ कर खा जाते हैं; इस प्रकार उन्हें दुःख देते हैं। रसनिधि कवि कहते हैं कि मानो इसी पाप के कारण ही बगुलों के मुख और चोंच काली हो गई हैं। कोई आदमी बुरा काम करता है तो उसका मुँह काला कर दिया जाता है। बगुले मछलियों को सताने का बुरा काम करते हैं, इसीलिए मानो ईश्वर ने उनके मुख काले कर दिये हैं।

अमित अथाहै हौ भरै, जदपि समुद अभिराम।
कौन काम के जौ न तुम, आए प्यासन काम ॥८३॥

शब्दार्थ—अमित = अपार। अथाह = बहुत गहरा। समुद = समुद्र। अभिराम = सुन्दर।

भावार्थ—रसनिधि कवि समुद्र को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे समुद्र! चाहे तुम बहुत लम्बे चौड़े विस्तृत और बहुत गहरे हो, साथ ही दीखते भी बहुत सुन्दर हो, पर यदि किसी प्यासे के काम न आये तो तुम्हारा क्या लाभ है अर्थात् कुछ भी लाभ नहीं। भाव यह कि चाहे कोई कितना भी धनवान् क्यों न हो पर यदि वह दूसरों को लाभ नहीं पहुँचाता तो उसके धनवान् होने का कोई लाभ नहीं।

गुल गुलाब अरु कमल कौ, रस लीन्हौं इक ताक।
अब जीवन चाहत मधुप, देख अकेलौ आक ॥८४॥

शब्दार्थ—गुल = फूल। मधुप = भौंरा।

भावार्थ—इस भौंरे ने अब तक तो गुलाब और कमल के फूलों का मन भर के रसपान किया है पर अब उसे अकेले आक के पौधों में अपना जीवन बिताना पड़ रहा है। भाव यह कि जो मनुष्य पहले बहुत सुख देखता है, बाद में उसे दुःख भी देखने पड़ते हैं।

काग आपनी चतुरई, तब तक लेहु चलाइ।
जब लग सिर पर दैइ नहिं, लगर सतूना आइ ॥८५॥

शब्दार्थ—काग = कौआ। लगर = बाज़, लग्घड़ नामक एक पक्षी। सतूना = बाज की झपट।

भावार्थ—हे कौए! तू अपनी चतुरता तब तक दिखा ले जब तक कि तेरे सिर पर लगर या बाज पक्षी आकर अपनी झपट नहीं मारता। भाव यह है कि जब तक मृत्यु मनुष्य को आकर नहीं पकड़ लेती, तभी तक मनुष्य का चंचल मन अपनी चतुरता दिखाता है।

चल न सकै निज ठौर तैं, जे तन द्रुम अभिराम।
तहाँ आइ रस बरसिबौ, लाजिम तुहि घनस्याम ॥८६॥

शब्दार्थ—निज = अपना। ठौर = स्थान। द्रुम = वृक्ष। अभिराम = सुन्दर। बरसिबौ = बरसाना। लाजिम = आवश्यक, उचित। घनस्याम = बादल।

भावार्थ—रसनिधि कवि बादल को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे बादल! जो बेचारे सुन्दर वृक्ष अपने स्थान से चल नहीं सकते, उन वृक्षों के पास आकर रस की वर्षा करना तुम्हारा ही काम है। अथवा तुम्हारे लिए ऐसा उचित ही है। भाव यह कि उदार दानी पुरुष या

भगवान् सब लोगों की सहायता करते हैं।

तेरी है या साहिबी, वार पार सब ठौर।
रसनिधि कौ निसतार लै, तुही प्रभू कर गौर ॥८७॥

शब्दार्थ—निसतार=आदि अंत। गौर=ध्यान, विचार।

भावार्थ—रसनिधि कवि कहते हैं कि हे भगवन्! इस संसार के आर या पार सभी स्थानों में तेरी प्रभुता व्याप्त हो रही है। इसका आदि अंत भला कौन पा सकता है, यह तुम्हीं बताओ। भगवान् की महिमा का कोई पार नहीं पा सकता।

रोम रोम जो अघ भर्यो, पतितन मैं सिरनाम।
रसनिधि वाहि निवाहिवौ, प्रभु तेरोई काम ॥८८॥

शब्दार्थ—अघ=पाप। पतित=पापी। सिरनाम=शिरोमणि।

भावार्थ—हे भगवन्! मेरे रोम-रोम में पाप भरे हुए हैं, मैं पापियों का शिरोमणि हूँ। ऐसे मुझ पापी का निर्वाह करना या उद्धार करना, रसनिधि कवि कहते हैं कि हे प्रभु! तुम्हारा ही काम है।

गंग प्रगट जिहि चरण तैं, पावन जग कौ कीन।
तिहि चरनन कौ आसरौ, आइ रसिकनिधि लीन ॥८९॥

शब्दार्थ—पावन=पवित्र। आसरौ=सहारा। लीन=लिया।

भावार्थ—रसनिधि कवि कहते हैं कि भगवान् विष्णु के जिन चरणों से प्रकट हुई गंगा ने सारे संसार को पवित्र कर दिया, मैंने भगवान् के उन्हीं चरणों का सहारा ले लिया है। पुराणों में लिखा है कि गंगा भगवान् विष्णु के चरणों का चरणामृत है।

लखि औगुन तन आपनै, भूल सबै सुधि जाइ।
अधम-उधारन-विरद तुव, रसनिधि सुमिर सुहाइ ॥९०॥

शब्दार्थ—लखि=देख कर। औगुन=दोष। अधम-उधारन=

पापियो का उद्धार करने वाले। बिरद = उपाधि।

भावार्थ—रसनिधि कवि कहते हैं कि जब मैं अपने दोषों या पापों की ओर ध्यान करता हूँ, तब तो मारे भय के अपनी सुध-बुध भी भूल जाता हूँ। पर हे भगवन्! जब मैं आपकी पतित पावन नामक उपाधि का स्मरण करता हूँ, तो कुछ संतोष होता है कि भगवान् मेरा उद्धार कर ही देंगे।

भगतन तौ तुम तारिहौ, अधम कौन पै जाइ।
अधम-उधारन तुम बिना, उन्हैं ठौर कहुँ नाइ ॥६१॥

शब्दार्थ—तारिहौ = उद्धार कर दोगे। अधम = नीच, पापी। कौन पै = किसके पास। ठौर = स्थान। नाइ = नहीं।

भावार्थ—हे भगवन! भक्तों का तो आप उद्धार कर ही देंगे पर पापी कहाँ जायँ। हे पतितों का उद्धार करने वाले प्रभु! आपके बिना उनका और कोई दूसरा आश्रय नहीं है।

गिनति न मेरे अघन की, गिनती नहीं बढाइ।
असरन-सरन कहाइ प्रभु, मत मोहिं सरन छुड़ाइ ॥६२॥

शब्दार्थ—असरन सरन = जिसका कोई रक्षक न हो, उसका रक्षक।

भावार्थ—हे भगवन्! मेरे पापों की कोई गिनती नहीं हो सकती, पर आप तो जिसका कोई रक्षक नहीं, उसके रक्षक कहला कर मुझे अपने आश्रय से मत हटा देना।

हौ अति अघ-भारन भरौं, अधमन कौ सिरदार।
अधम-उधारन नाम तुव, सो मेरे आधार ॥६३॥

शब्दार्थ—अघ-भारन = पापों के समूह।

भावार्थ—रसनिधि कवि कहते हैं कि मैं पापों के समूह से भरा हुआ सब पापियों का शिरोमणि हूँ, पर आपका नाम पापियों का उद्धार करने

वाला है, इसलिए आप ही मेरे आधार हैं। आप ही मेरा उद्धार कर सकते हैं।

जौ करुनामय हेरिहौ, मो करनी की ओर।
मोसौ पतित न पाइहौं, ढूँढ़ै हूँ छिति छोर ॥६४॥

शब्दार्थ—करुनामय = दयालु। हेरिहौ = देखोगे। छिति = पृथ्वी। छोर = अन्त।

भावार्थ—हे दयालु भगवन्! यदि आप मेरी करनी की ओर देखेंगे तो आपको मेरे जैसा पापी इस पृथ्वी के ओर-छोर तक कहीं भी कोई भी नहीं मिलेगा। अतः आप ही मुझ जैसे पापी के सहारा हैं।

गिरिधर राय

परिचय

जन्म संवत् १७७०

गिरिधर कुण्डलियों से हिन्दी-साहित्य में बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं। कविराय पद से यह भाट जान पड़ते हैं। इनका जन्म १७७० के लगभग माना जाता है। यह मुलतान के किसी आसपास प्रदेश के रहने वाले थे। कहा जाता है कि इनकी एक बढ़ई से अनबन हो गई थी। उस बढ़ई का राजा के यहाँ बड़ा मान था। एक बार बढ़ई ने राजा को पलंग बनाकर दिया। पलंग सुन्दर था, राजा ने फिर उसी प्रकार दूसरा पलंग बनाने के लिए कहा। बढ़ई को गिरिधर कविराय को अपमानित करने की सूझी। उसने राजा से कहा कि यदि गिरिधर कविराय के घर की बेरी की लकड़ी मिल जाय तो वैसा पलंग तैयार हो सकता है। गिरिधर के अनुनय-विनय करने पर भी राजा ने वृक्ष कटवा ही डाला। गिरिधर ने इस अपमान को न सहते हुए अपनी पत्नी सहित बाहर जाने की ठान ली। पत्नी सहित मार्ग में घूमते हुए आपने हिन्दी-साहित्य की रत्नमयी कुण्डलियाँ लिखीं। कहा जाता है कि इनकी पत्नी भी बड़ी कवयित्री थीं। इनकी और इनकी पत्नी की कुण्डलियाँ दूध-मिश्री की भाँति मिल गई हैं। साईं नाम से लिखी हुई कुण्डलियाँ इनकी पत्नी की लिखी हुई हैं। इनकी कुण्डलियों के विषय राजनीति, समाजहित तथा धर्मादि हैं। यद्यपि इन्होंने व्याकरण पर विशेष रूप से ध्यान नहीं दिया तथापि कुण्डलियों का स्थान इनके अनूठे कथन के कारण ऊँचा है।

कुण्डलियाँ

सार और आलोचना

मनुष्य धोखे से बड़ी-बड़ी भूल कर देता है। मित्र के वियोग के बराबर संसार में कोई दुःख नहीं। चाहे प्राणों पर आ बने पर सज्जन अपने प्रण को भग नहीं करते—इत्यादि सार और व्यावहारिक विचारों से आपकी कुण्डलियाँ ओत-प्रोत हैं।

आपकी कुण्डलियों में उपदेश की मात्रा अधिक है—

केवल मनोरञ्जन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमे उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए॥

आपने अपनी कविता में उपदेश का 'भी' के स्थान पर उपदेश का 'ही' कर्म होना चाहिए, इस पर अधिक बल दिया है। आपकी कविता का लक्ष्य उपदेश से मनोरञ्जन करना है। मनोरञ्जनात्मक सामग्री से उपदेश प्राप्त करना नहीं।

सुवा एक दाड़िम के धोके, गयो नारियल खान।
कछु खायो कछु खान न पायो, फिर लागो पछितान॥
फिर लागो पछितान, वुद्धि अपनी को रोवा।
निर्गुणियन के साथ वैठि, अपने गुन खोआ॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो रे मोरे नोखे।
गयो भटाका टूटि चोंच, दाड़िम के धोखे॥१॥

शब्दार्थ—सुवा = तोता। दाड़िम = अनार। रोवा = रोया। निर्गुणियन = गुणहीन।

भावार्थ—एक तोता एक दिन अनार के धोखे में नारियल खाने के लिये चला गया। अत्यन्त कठोर होने के कारण उसने कुछ तो नारियल

खा लिया और कुछ न खा सका। फिर पछताने लगा और अपनी बुद्धि पर रोने लगा। निर्गुण व्यक्तियों के पास बैठकर मनुष्य अपने गुण भी खो देता है। गिरिधर कविराय कहते हैं कि हे मेरे प्रिय मित्रो ! सुनो इस प्रकार इस बेचारे भोले-भाले तोते की चोंच अनार के धोखे मे नारियल को खाते हुए एक झटके में टूट गई। भाव यह है कि मनुष्य को कोई भी काम सोच-समझ कर करना चाहिए। अत्यधिक लोभ बुरी बला है।

मोती लादन पिय गए, धुर पटना गुजरात।
मोती मिले न पिय मिले, युग भर बीती रात॥
युग भर बीती रात, विरहिनी विरह सतावै।
चौंक परी ब्रजनारि पिया को लिखा न आवै।
कह गिरिधर कविराय, गोपिका यह कह रोती।
आगि लगै वह देश, जहाँ उपजत हैं मोती॥२॥

शब्दार्थ—लादन = लादने के लिए, भरने के लिए। धुर = ठेठ या तक।

भावार्थ—गिरिधर कविराय कहते हैं कि अपनी प्रिया से बिछुड़ कर प्रियतम मोती लाने के लिए ठेठ गुजरात और पटना तक चले गये। इधर उनकी विरहिणी प्रेयसी के लिए एक-एक रात एक-एक युग के समान बीती और वह विरह से व्याकुल हो रही है। जैसे ब्रज की नारियाँ कृष्ण का कोई सदेश न पा कर परेशान रहती थीं वैसे ही यह विरहिणी भी पति के पत्र न आने पर दुखी रहती है और यह कहकर रो रही है कि उस देश को आग लगे जहाँ मोती उत्पन्न होते हैं। जिन मोतियों के लिए मुझसे मेरा प्रिय बिछुड़ गया।

मित्र-बिछोहा अति कठिन, मति दीजै करतार।
वाके गुण जब चित चढ़ै, वर्षत नयन अपार॥
वर्षत नयन अपार, मेघ सावन झरि लाई।
अब बिछुरे कब मिलौ, कहो कैसी बन आई॥

कह गिरिधर कविराय, सुनो हो विनती एहा।
हे करतार दयालु देहु, जनि मित्र-बिछोहा ॥३॥

शब्दार्थ—बिछोहा=बिछुड़ना, विरह। करतार=ईश्वर। वाके=उसके। वर्षत=बरसते हैं। झरि लाई=झड़ी लग गई। ऐहा=यह। जनि=मत।

भावार्थ—हे प्रभु! मित्र से बिछुड़ना अत्यन्त कठिन है। इसलिए किसी को मित्र-वियोग मत दीजिए, क्योंकि जब उस मित्र के गुणों का स्मरण आता है तो आँखों में आँसुओं की इस प्रकार झड़ी लग जाती है मानो सावन-भादों के बादलो की झड़ी लगी हुई हो। मनुष्य सोचता है कि अब के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे। हम पर न जाने कैसी बन आई है।

गिरिधर कविराय कहते हैं कि हे दयालु भगवन्! मेरी यह प्रार्थना सुनें कि किसी को भी मित्र-वियोग मत दे।

पीवै नीर न सरवरौ, बूँद स्वाति की आस।
केहरि तृण नहिं चरि सकै, जो व्रत करै पचास।
जो व्रत करै पचास, विपुल गजजुत्थ बिदारै।
सुपुरुष तजे न धीर, जीव बरु कोई मारै।
कह गिरिधर कविराय, जीव जो धक भरि जीवै।
चातक बरु मरि जाय, नीर सरवर नहिं पीवै ॥४॥

शब्दार्थ—पीवै=पीता है। नीर=जल। सरवरौ=तालाब का। स्वाति=एक नक्षत्र। आस=आशा। केहरि=शेर। तृण=घास। चरि सकै=चर सकता है। व्रत=भूखे रहना। गज=हाथी। विपुल=बहुत से। जुत्थ=झुण्ड। बिदारै=चीर डाले। सुपुरुष=श्रेष्ठ मनुष्य। तजे=छोड़े। धीर=धैर्य। जीव=प्राण। बरु=चाहे। धक भरि=क्षण भर। चातक=पपीहा। मरि जाय=मर जाय।

भावार्थ—गिरिधर कविराय कहते हैं कि पपीहा स्वाति नक्षत्र में बरसे

हुए जल की बूँद की आशा में रहता है, पर वह कभी तालाब का पानी नहीं पी सकता। इसी प्रकार शेर चाहे पचासों दिन भूखा क्यों न रह जाय पर वह घास नहीं खा सकता। वह तो बड़े-बड़े हाथियों के झुण्डों को ही चीर-फाड़ फेंकता है। इसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुष भी अपने धैर्य को नहीं छोड़ते चाहे उनके प्राण ही क्यों न चले जायँ। गिरिधर कविराय कहते हैं कि यह जीव तो घड़ी भर जीता है (श्रेष्ठ पुरुष उस जीवन की परवाह न कर अपने प्रण का वैसे ही पालन करता है जैसे कि) पपीहा मर भले ही जाय, पर तालाब का पानी नहीं पीता। भाव यह कि सज्जन अपने स्वीकृत व्रत का मरते दम तक पालन करते हैं।

मूसा कहै बिलार सौं, सुन रे झूठ झुठैल।
हम निकसत हैं सैर को, तुम बैठत हो गैल।
तुम बैठत हो गैल, कचरि धक्कन सों जैहौं।
तुम तो निपट गरीब, कहा घर बैठे खैहौं।
कह गिरिधर कविराय, बात सुनिये हो हूमा।
वाउ दिनन का फेर, बिलारिहि सिसवै मूसा ॥५॥

शब्दार्थ - मूसा=चूहा। बिलार=बिल्ली। झूठ झुठैल=झूठ बोलने वाला। निकसत हैं=निकलते हैं। गैल=रास्ता। कचरि जैहो= कुचल जाओगे। धक्कनसों=धक्कों से। निपट=बिल्कुल, सर्वथा। कहा=क्या। खैहौं=खाओगे। वाउ=वह भी। दिनन का=दिनों का। बिलारिहि=बिल्ली को। सिसवै=सिखाता है।

भावार्थ—चूहा बिल्ले को कहता है कि हे झूठ झुठेले बिल्ले! हम सैर के लिए निकलते हैं तो तुम हमारे मार्ग में आ बैठते हो। कहीं ऐसा न हो जाय कि हमारे धक्कों से कुचले जाओ। तुम बहुत गरीब हो। अगर कहीं ऐसा हो गया और तुम कुचले गये तो फिर घर बैठे क्या खाओगे।

गिरिधर कविराय कहते हैं कि मेरी बात सावधान होकर सुन लो। यह दिनों का फेर है कि चूहा बिल्ली को उपदेश दे रहा है। भाव यह कि बुरे दिन आने पर छोटे-छोटे आदमी भी बड़े-बड़ों पर शासन करने लग पड़ते हैं।

कौवा कहे मराल से, कहा जाति कह गोत।
तुम ऐसे बदरूपिया, कहूँ न जग मे होत॥
कहूँ न जग मे होत, महा मैले, मलखाना।
बैठि कचहरि जाय, वेद मर्याद न जाना।
कह गिरिधर कविराय सुनो हो पंछी हौवा।
धन्य मुल्क यह देश जहाँ के राजा कौवा॥६॥

शब्दार्थ—मराल=हंस। गोत=गोत्र। बदरूपिया=बुरे रूप वाले। कहूँ=कहीं। मलखाना=मैल की खान। हौवा=भूठी डराने वाली वस्तु।

भावार्थ—कौआ हंस से कहता है कि अरे हंस! तेरी क्या जाति और क्या गोत्र है अर्थात् तू बड़ी नीच जाति का है। तेरे जैसा कुरूप जीव तो हमने संसार में नहीं देखा। तू बड़ा मैला और मल का भण्डार है। तुझे कचहरियों अर्थात् राजसभाओं में जाकर बैठने की सभ्यता नहीं आती और न वेद की मर्यादा को ही जानता है। हे दूसरों को व्यर्थ ही भयभीत करने वाले पक्षियो! सुनो वह देश धन्य है जहाँ के राजा कौए हैं। भाव यह कि जहाँ विद्वानों का आदर न हो, मूर्ख लोग विद्वानों पर शासन करते हों, उस देश का कभी कल्याण नहीं हो सकता।

हुक्का बाँधो फेंट में, नैग हि लीन्हीं हाथ।
चले राह में जात हैं, लिये तमाखू साथ।
लिये तमाखू साथ गैल, को धंधा भूल्यौ।
गह सब चिन्ता भूलि, आगि देखत मन फूल्यौ।

कह गिरिधर कविराय, यों यम कर आयो रुक्का।
जितै गयौ सो काल, हाथ मे रहिगो हुक्का ॥७॥

शब्दार्थ – फेंट = कमर। नेग = हुक्के की नली। गैल = रास्ता। धधा = काम। गृह = घर। यम कर = मौत का, यमराज का। रुक्का = पत्र।

भावार्थ—मनुष्य अपनी कमर से हुक्का बाधे, हाथ में नली लिये और साथ में तम्बाकू लिये चले जा रहे हैं। वे अपने हुक्के-तम्बाकू में इतने मस्त हैं कि घर का काम-धधा भी भूल गये। घर की चिन्ता भी नहीं रही। हुक्के की आग को देखकर मन प्रसन्न हुआ फूला नहीं समा रहा है, पर ज्यों ही यमराज का निमन्त्रण-पत्र आया, त्यों ही हुक्का हाथ का हाथ में रह गया और काल उठाकर ले गया। भाव यह कि मनुष्य ससार के धधों में फँसा रहता है और मौत का ध्यान नहीं रखता। एक दिन मृत्यु मनुष्य को सब कामों से छुड़ा कर अपने साथ ले जाती है, उसकी सब मन की कल्पनाएँ यहाँ धरी की धरी रह जाती हैं।

गिरिधर सो जो गिरिधरै, यत्न शून्य बिन खेद।
गिरि कारण सूक्ष्म स्थूल, तनु गिरिधर प्रत्येक वेद ॥
गिरिधर प्रत्येक वेद, जो है नित ही प्रापत।
विना श्रोत्र ध्वनि सुनै, वाक बिन शब्द अलापत।
कह गिरिधर कविराय, जास में नहीं मित्र अर।
सब को आपन आप, आतमा सों तू गिरिधर ॥८॥

शब्दार्थ—गिरिधरै = पर्वत को धारण करे। यत्न = प्रयत्न, परिश्रम। शून्य = बिना। खेद = दुःख, कष्ट। गिरि = पर्वत। सूक्ष्म = छोटा। स्थूल = बड़ा। तनु = शरीर। वेद = जानता है। प्रापत = प्राप्त होता है। श्रोत्र = कान। ध्वनि = शब्द। वाक = वाणी, जीभ। अलापत = बोलता है। जास में = जिसमें। अर = अरि, शत्रु।

भावार्थ—गिरिधर कविराय कहते हैं कि जो व्यक्ति बिना ही विशेष

परिश्रम या प्रयत्न किये और बिना किसी प्रकार के कष्ट के अपने शरीर-रूपी पर्वत को धारण करता है, वास्तव में वही 'गिरिधर' है। सूक्ष्म कारण शरीर ही गिरि है। इस सूक्ष्म कारण शरीर रूपी गिरि को धारण करने वाला यह स्थूल शरीर है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति यह जानता है कि यह आत्मा ही गिरिधर है। इस शरीर को धारण करने वाला आत्मा जो सदा सब के शरीरों में व्याप्त हो रहा है, वही गिरिधारी है। वह आत्मा या परमात्मा बिना कानों से शब्द सुनता है और बिना वाणी के ही शब्द बोलता है। न उसका कोई शत्रु है, न मित्र है। इस प्रकार वास्तव में सब की आत्मा ही अपने आप गिरिधर है।

कोप करै जिस शख्स पर परमेश्वर जब आप।
लोकन साथ मिलाय पुनि, चाहै दिन अरु रात॥
चाहै दिन अरु रात, वासना उपजै खोटी।
कृपणता के लिए, बुद्धि हो जावे मोटी।
कह गिरिधर कविराय, आपुनौ करिकै लोप।
अनातम चिन्तन करै, यहि ईश्वर को कोप॥६॥

शब्दार्थ—कोप=क्रोध। शख्स=मनुष्य। पुनि=फिर। अरु=और। वासना=तृष्णा। उपजै=उत्पन्न होती है। खोटी=बुरी। कृपणता=कंजूसी। आपनौ=अपना। लोप=नाश। अनातम=जो आत्मतत्व न हो। चिन्तन करै=विचार करता है।

भावार्थ—भगवान् जब किसी मनुष्य पर स्वयं क्रोध करता है, तो वह उसे संसारी मनुष्य, सगे सम्बन्धियों, पुत्र-पौत्रों आदि मे रात दिन उलझाये रखता है। तब मनुष्य के हृदय में अनेक बुरी-बुरी वासनाएँ उत्पन्न होती हैं। वह अत्यन्त कंजूस हो जाता है और कंजूसी के लिए उसकी बुद्धि भी मोटी हो जाती है। इस प्रकार अनात्मतत्व अर्थात् भौतिक शरीर और विषय-वासना का ही रात-दिन चिन्तन करता हुआ वह अपना

नाश कर लेता है। भाव यह कि मनुष्य जब संसारी माया-जाल में और विषय-वासनाओं में फँस जाता है तो धीरे-धीरे उसका सर्वनाश हो जाता है।

करै कृपा जिस पुरुष पर, अतिशय करिकै राम।
ताको कोई ना फुरै, लौकिक वैदिक काम।
लौकिक वैदिक काम, रहैं नहि करनो बाकी।
हर जगा, हर वखत, ब्रह्म को होवे झॉकी।
कह गिरिधर कविराय अविद्या जिनकी मरै।
सर्व क्रिया के माँहि, एक प्रभु दर्शन करै॥१०॥

शब्दार्थ—अतिशय = बहुत अधिक। ताको = उसे। फुरै = दिखता। लौकिक = सासारिक। बाकी = बाकी, शेष। सर्व = सब।

भावार्थ—गिरिधर कविराय कहते हैं कि भगवान् जिस व्यक्ति पर अत्यधिक कृपा करते हैं, उसे कोई सासारिक काम धधा या वैदिक यज्ञ-यागादि कोई भी कर्म नही दीखता या अच्छा नहीं लगता। उसके लिए कोई भी कर्म करना शेष नहीं रह जाता। उसे तो प्रतिक्षण प्रत्येक स्थान में उस परब्रह्म की झॉकी दिखाई देती रहती है। जिन ज्ञानी पुरुषों की अविद्या का नाश हो गया, वे सम्पूर्ण क्रियाओं में उस परब्रह्म का ही दर्शन करते हैं।

भाग सर्वत्र फलत है, न च विद्या पौरुष सबल।
हरि हर मिल सागर मथ्यौ, हर को मिल्यौ गरल॥
हर को मिल्यौ गरल, हरि ने लक्ष्मी पाई।
षट् भग हो सम्पन्न, भाग की कही न जाई॥
कह गिरिधर कविराय, कोउ मिल खेले फाग।
कोउ हमेशा रोवैं आयो आपने भाग॥११॥

शब्दार्थ—सर्वत्र = सब स्थानो पर। पौरुष = पुरुषार्थ। सबल =

बलवान्। हरि=विष्णु। हर=शिव। सागर=समुद्र। मथौ=मथा। गरल=विष, ज़हर। फाग=होली। षट्=छः। भग=ऐश्वर्य।

भावार्थ—सभी स्थानों पर मनुष्य का भाग्य ही फल देता है, उसकी विद्या या पुरुषार्थ कुछ भी काम नहीं आती। जैसे कि भगवान् शिव और विष्णु दोनो ने मिलकर समुद्र का मंथन किया। यद्यपि परिश्रम दोनों का बराबर था फिर भी शिवजी महाराज को तो जहर मिला और भगवान् विष्णु को लक्ष्मी प्राप्त हो गई। वे छहों प्रकार के ऐश्वर्यों से युक्त हो गये। बात तो यह है कि किस के भाग्य में क्या लिखा है, यह कोई नही बता सकता। गिरिधर कविराय कहते हैं कि कोई तो आनन्द से मिलकर होली खेलते हैं और कोई सदा रोते ही रहते हैं। बात तो यह है कि मनुष्य का अपना-अपना भाग्य है। किसी के भाग्य में सुख ही सुख लिखा है तो किसी के भाग्य में दु ख ही दुःख।

अवश्यमेव भोक्तव्य है, कृत कर्म शुभाशुभ जोय।
ज्ञानी हँस करि भोग हैं, अज्ञानी भोगे रोय।
अज्ञानी भोगै रोय, पुनि पुनि मस्तक कूटै।
प्रारब्ध हो जोय, बिना भोग नहिं छूटै।
कह गिरिधर कविराय न दीरघ होत रहस्य।
जैसे जैसे भाग पुरुष के, वे ही फलैं अवश्य ॥१२॥

शब्दार्थ—अवश्यमेव=जरूर। भोक्तव्य है=भोगना पड़ता है। कृत=किये हुए। शुभाशुभ=भले-बुरे। जोय=जो। मस्तक=सिर। पुनि-पुनि=बार-बार। प्रारब्ध=प्रारम्भ किया हुआ कर्म या भाग्य। दीरघ=बड़ा, दीर्घ।

भावार्थ—मनुष्य को अपने शुभ और अशुभ कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। उन कर्मों के फलों को ज्ञानी पुरुष खुशी के साथ हँस कर भोग लेता है और अज्ञानी पुरुष रोकर, दुखी होकर भोगता है तथा

बार-बार दु:ख के कारण अपना माथा ठोकता है । गिरधर कविराय कहते हैं कि जो कर्म एक बार किया गया है, उसका फल भोगे बिना कभी छुटकारा नहीं हो सकता । वास्तव में यह कोई बहुत बड़े रहस्य की बात नहीं है । मनुष्य के जैसे कर्म और भाग्य होते हैं, उसे वैसा फल अवश्य मिलता है ।

जैसा यह मन भूत है, और न दुतिय वताल ।
छिन मे चढै अकास को, छिन में धसै पताल ।
छिन में धसै पताल, होत छिन में कम जादा ।
छिन में शहर निवास करै, छिन बन का रादा ।
कह गिरिधर बिन ज्ञान, चित्त थिर होत न ऐसा ।
गुरू अनुग्रह विना वोध, दृढ होत न जैसा ॥१३॥

शब्दार्थ—द्वितीय=दूसरा । रादा=इरादा, विचार । अनुग्रह=कृपा । बोध=ज्ञान ।

भावार्थ—गिरिधर कविराय कहते हैं कि जैसा यह मनरूपी भूत है, वैसा कोई और नहीं बताया जा सकता । या वैसा और कोई वैताल (विक्रमादित्य का वश में किया हुआ भूत या गण जो आकाश पाताल सब जगह पहुँच जाता था) नहीं है । यह मन रूपी भूत क्षण भर मे तो आकाश में चढ जाता है और दूसरे ही क्षण में पाताल मे पहुँच जाता है । एक क्षण में कम हो जाता है तो दूसरे क्षण में अधिक । एक क्षण में शहर में रहता है तो दूसरे ही क्षण में जगल में रहने का निश्चय कर लेता है । ज्ञान के बिना यह मन वैसे ही स्थिर नहीं होता जैसे कि गुरु की कृपा के बिना दृढ ज्ञान नही प्राप्त हो सकता । भाव यह कि मनुष्य का मन बड़ा चचल है । गुरु की कृपा द्वारा प्राप्त ज्ञान से ही इस मन को वश में किया जा सकता है ।

ताप मध्य मे ताप हूँ, ना मैं ताप अताप।
जाप मध्य मे जाप हूँ, ना मैं जाप अजाप।
ना मैं जाप अजाप, आप को आप प्रकाशक।
सूक्ष्म स्थूल प्रपंच सर्व को इक रस भासक।
कह गिरिधर कविराय पाप मे पाप अपाप।
जा मे जिय अरात अष्ट ज्वर जो हैं ताप ॥१४॥

शब्दार्थ—ताप=तप। जाप=जप। प्रपच=ससार। इकरस=एक समान। भासक=प्रकाशित करने वाला। अपाप=पाप रहित। ज्वर=बुखार। अरात=अटका हुआ, स्थिर।

भावार्थ—गिरिधर कविराय कहते हैं कि यह आत्मा तप के मध्य में तप है, न तप है और अतप ही है। जप के मध्य में जप भी यही है, साथ ही जप और अजप दोनो से परे है। यह जो स्थूल और सूक्ष्म ब्रह्माड रूपी प्रपच है, इसमें वह ब्रह्म या आत्मतत्व सर्वत्र एक समान जगमगा रहा है। वह आत्मा पापी में पापस्वरूप होते हुए भी पापरहित है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, अहकार, ईर्ष्या, द्वेष, इन आठ ज्वरों में यह जीव फँसा रहता है। वास्तव में यही आत्मा के लिए सब से बड़े पाप हैं।

करुणा हो श्रीराम की, औ' गुरु को परताप।
पुन पुरुषार्थ आपनौ, कटै अविद्या पाप।
कटै अविद्या पाप, जुडे जो यह संयोग।
देह इन्द्रिय मन प्राण, माँहिं कोउ रहे न रोग।
कह गिरिधर कविराय, छुटै जब जन्म अरु मरना।
कृत-कृत्य भयो पुमान; बहुरि कछु रहै न करना ॥१५॥

शब्दार्थ—परताप=प्रताप। पुन.=फिर। पुरुषार्थ=उद्योग। अविद्या=अज्ञान। अरु=और। कृतकृत्य=सफल, जिसने अपने

सब काम कर लेता हो। [illegible]

भावार्थ—[illegible] कि [illegible] प्रथम तो भगवान् की कृपा हो, फिर गुरुदेव का प्रताप [illegible] लिए सहायक हो, साथ ही साथ कुछ पुरुषार्थ भी किया जाय, [illegible] स अविद्या के सब पाप मिट जाते हैं। यदि सब का हो जाय अर्थात् परमात्मा की कृपा, गुरु का अनुग्रह एव पुरुषार्थ का संयोग हो जाय तो शरीर, मन और इन्द्रियों में कोई रोग या विकार नहीं रह सकता। जन्म और मरण के बन्धन छूट जाते हैं। यह पुरुष, यह आत्मा कृतकृत्य अर्थात् सफल हो जाता है और इसे कुछ भी करना धरना शेष नहीं रह जाता।

भाव यह है कि मनुष्य इस अवस्था मे जीवनमुक्त हो जाता है।

चयनिका

विक्रम

राधापति हिय मैं धरौं, राधापति मुख बैन।
राधापति नैनन लहौं, राधापति सुख दैन ॥१॥

शब्दार्थ—राधापति=श्रीकृष्ण। हिय=हृदय। बैन=वचन। लहौं=प्राप्त करूँ। सुखदैन=सुख देने वाला।

भावार्थ—विक्रम कवि कहते हैं कि राधापति श्रीकृष्ण को अपने हृदय में धारण करता हूँ, मुख से उन्हीं का नाम लेता हूँ और परमसुख देने वाले श्रीकृष्ण के ही अपने नेत्रों से ही दर्शन करता हूँ।

मनमोहन मन में बसौ, हृषीकेस हिय आहि।
कमलनैन नैननि बसौ, मुरलीधर मुख माहिं ॥२॥

शब्दार्थ—बसौ=निवास करें। हृषीकेस=इन्द्रियों के ईश या स्वामी अर्थात् श्रीकृष्ण। कमलनैन=कमल के समान नेत्रों वाले श्रीकृष्ण।

भावार्थ—विक्रम कवि कहते हैं कि मन को मोहित करने वाले श्रीकृष्ण मेरे मन में निवास करें। और हृषीक अर्थात् इन्द्रियों के स्वामी श्रीकृष्ण मेरे हृदय में निवास करें। कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाले श्रीकृष्ण मेरे मुख में वसे रहें अर्थात् सदा मैं उनका नाम लेता रहूँ।

वृन्दावन राजैं दुवौ, साजै सुख के साज।
महरानी राधा उतै, महाराज ब्रजराज ॥३॥

शब्दार्थ—राजैं=शोभित होते हैं। दुवौ=दोनों। उतै=उधर।

भावार्थ—वृन्दावन में सब प्रकार के सुख के साज सजाये हुए राधा और कृष्ण दोनों अत्यन्त सुशोभित हो रहे हैं। इधर तो भगवान् श्रीकृष्ण विराज रहे हैं तो उधर महारानी राधिका जी शोभा दे रही हैं।

विहरत बृन्दा-विपिन में, गोपिन सँग गोपाल।
विक्रम हृदै सदा बसौ, इहि छवि सौं नँदलाल ॥४॥

शब्दार्थ—विहरत = विहार कर रहे हैं। विपिन = जगल। हृदै = हृदय में।

भावार्थ—विक्रम कवि कहते है कि वृन्दावन मे गोपियों के साथ श्रीकृष्ण विहार कर रहे हैं। इस अनुपम शोभा और छवि के साथ श्रीकृष्ण मेरे हृदय में सदा निवास करें।

मन वच कर्म सुभाय कर, रघुपति पद अनुराग।
सो जानत सियराम हैं, धन्य भरथ कौ भाग ॥५॥

शब्दार्थ—रघुपति = रामचन्द्र। पद = चरण। अनुराग = प्रेम।

भावार्थ—विक्रम कवि कहते हैं कि मन, वचन, कर्म और स्वभाव से जिनका श्राराम के चरणों में प्रेम है, जिनके इस वास्तविक प्रेम को सीताराम स्वय जानते हैं, ऐसे भरत के भाग्य धन्य हैं।

फिरि फिरि राधा-कृष्ण कहि, फिरि फिरि ध्यान लगाइ।
फिरिहौं कुंजन बे-फिकिर, कब बृन्दाबन जाइ ॥६॥

शब्दार्थ—फिरिहौं = फिरूँगा। कुंजन = झाड़ियों में।

भावार्थ—विक्रम कवि कहते हैं कि बार-बार राधा-कृष्ण राधा-कृष्ण कहता हुआ और उन्हीं का ध्यान करता हुआ मैं वृन्दावन के कुंजों में निश्चिन्त होकर कब घूमा करूँगा!

नदी नीर तीछन वहै, मेघ-वृष्टि अति घोर।
हरि विनु को पारहि करै, लै नैया वरजोर ॥७॥

शब्दार्थ—नीर = जल। तीछन = तीक्ष्ण, तेज़। मेघ = बादल। वृष्टि = वर्षा। अति घोर = बहुत भयकर। पारहि करै = पार करें। बरजोर = दृढ।

शब्दार्थ—विक्रम कवि कहते हैं कि नीचे तो बड़ी भयकर नदी का जल वह रहा है और ऊपर से भी भयकर वर्षा हो रही है, ऐसे संकट के समय में भगवान् के सिवा दूसरा कौन है जो मजबून नाव लेकर पार कर दे अर्थात् भगवान् ही विपत्ति से पार करने वाले हैं।

मेरी दीरघ दीनता, दयासिंधु दिल देव।
प्रभु गुन-आला जानिकै, बालापन तैं सेव ॥८॥

शब्दार्थ—दीरघ=बड़ी। दयासिंधु=दया के समुद्र। दीनता=गरीबी। गुन-आला=गुणों का आलय—घर, भण्डार।

भावार्थ—हे दया के समुद्र भगवन्! मेरी बडी भारी दीनता को देख कर आप मेरी ओर अवश्य ध्यान दीजिए, क्योंकि मैं आपको गुणों का भण्डार जानकर बचपन से ही आपकी सेवा कर रहा हूँ।

प्रनत-पाल-बिरदावली, राखी आनि जहान।
अब मम बार अबार कत, कीजत कृपानिधान ॥९॥

भावार्थ—प्रनतपाल=प्रणत—नम्र भक्तों की पालना करने वाले। बिरदावली=यश का समूह। जहान=ससार। मम=मेरी। अबार=देर। कत=क्यों।

भावार्थ—हे भगवन्! सारा ससार आपको प्रणतपाल अर्थात् भक्तों का रक्षक कहकर आपका यश गा रहा है। फिर अब मेरी बार न जाने आपने क्यों इतनी देर लगा दी है। आप मेरा भी तत्काल उद्धार क्यों नहीं कर देते।

कै तुव कान परी नहीं, दीनबन्धु मम टेर।
चार जुगन सुनि चारि भुज, लगी न एती देर ॥१०॥

शब्दार्थ—कै=अथवा। तुव=तुम्हारे। टेर=पुकार। चारिभुज=चार भुजाओं वाले भगवान् विष्णु। चार जुगन=सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग, ये चार युग। एति=इतनी।

भावार्थ—हे दीनबन्धो ! मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है कि अभी तक मेरी पुकार आपके कानों तक पहुँची ही नहीं है, क्योंकि हे चतुर्भुजधारी भगवन् ! आपने पहले चारों युगों में कभी किसी पापी का उद्धार करने में देर नहीं लगाई। फिर यह कैसे हो सकता था कि मेरी पुकार तो आप सुन लेते और मेरा तत्काल उद्धार न कर देते।

दीनबन्धु ह्वै दीन की, जो तुम नहिं सुध लेत।
नाम कियो इमि प्रगट किमि, दीनबन्धु केहि हेत ॥११॥

शब्दार्थ—ह्वै=होकर। सुध=खबर। इमि=इस प्रकार। किमि=कैसे।

भावार्थ—हे भगवन्! यदि आप दीनबन्धु होकर भी मुझ दीन की सुधि नहीं लेते तो आपने अपना नाम दीनबन्धु क्यों प्रसिद्ध करा रखा है ? भाव यह कि या तो आप अपने को दीनबन्धु कहलाना छोड़ दीजिए या मेरा उद्धार कर दीजिए।

निज सुभाय छोडत नहीं, कर देखौ हिय गौर।
अधम-उधारन नाम तुव, हौं अधमन-सिरमौर ॥१२॥

शब्दार्थ—निज=अपना। सुभाय=स्वभाव। हिय=हृदय। गौर=ध्यान। अधम उधारन=पापियों का उद्धार करने वाले। हौं=मैं। सिरमौर=शिरोमणि।

भावार्थ—कोई भी व्यक्ति अपना स्वभाव नहीं छोड़ता है। हे भगवन् ! आप इस बात को अपने हृदय में विचार कर देख लीजिए। यदि आपका नाम अधमों अर्थात् पापियों का उद्धार करने वाला है तो मैं पापियों का शिरोमणि हूँ। इसलिए आप मुझ पापी का अवश्य उद्धार कर दीजिए।

तेरौ तेरौ हौं कहत, दूजो नहीं सहाइ।
कहिवौ बिरद सम्हार अब, विक्रम मेरो आहि ॥१३॥

शब्दार्थ—विरद=यश या उपाधि। संभार=सँभालो। आहि=है।

भावार्थ—हे भगवन्! मैं अपने आपको सदा तुम्हारा (सेवक) कहता हूँ। इसलिए अब आप मुझे 'अपना है' ऐसा कह कर अर्थात् अपना कर अपने यश या उपाधि की लाज रख लीजिए।

हौं चेरौ ब्रजराज कौ, जानत सकल जहान।
मेरौ कहत न चूकबी, अधम-उधारन-बान ॥१४॥

शब्दार्थ—चेरौ=दास। सकल=सारा। जहान=ससार। बान=स्वभाव, आदत।

भावार्थ—यह सारा ससार यह जानता है कि मैं ब्रजराज श्रीकृष्ण का सेवक हूँ। इसलिए हे भगवन्! आप 'मेरा' कहते हुए अपने अधम—पापियों के उद्धार करने के स्वभाव को मत भूल जाइए। भाव यह कि जिसे आपने अपना कह दिया है चाहे वह अधम भी है उसका उद्धार आप अवश्य करें।

दीनबंधु तुम दीन हौं, यह नातो उर लेख।
ह्वै कृपाल सुन कीजिए, विक्रम विनय विशेष ॥१५॥

शब्दार्थ—हौं=मैं। नातो=सम्बन्ध। उर=हृदय। लेख=समझ लो। ह्वै=होकर।

भावार्थ—हे भगवन्! आप दीनबन्धु हैं, तो मैं दीन हूँ। आपके और मेरे इस विशेष सम्बन्ध को आप हृदय में सोच लीजिए और कृपा करके मेरी इस विशेष विनय को सुन लीजिए।

मोर मुकुट कटि पीत पट, उर वनमाल रसाल।
आवत गावत सखिन मग, लखे आज नँदलाल ॥१६॥

शब्दार्थ—कटि=कमर। पीतपट=पीला वस्त्र। उर=हृदय। र =सुन्दर। मग=मार्ग। लखे=देखे।

भावार्थ—मस्तक पर मोर मुकुट, कमर में पीताम्बर और हृदय सुन्दर वनमाला धारण किये हुए, गाते हुए श्रीकृष्ण को आज गोपियों मार्ग में आते हुए देखा।

जो कविता मैं आदरत, साहित रीति विचार।
सो निहार लघु करि कह्यौ, निज मति के अनुसार ॥१७॥

शब्दार्थ—आदरत = आदर करता हूँ। साहित = साहित्य, शास्त्र रीति = रीति ग्रन्थ। निहार = देखकर। लघु = छोटा। मति = बुद्धि।

भावार्थ—विक्रम कवि कहते हैं कि साहित्य-शास्त्र और रीतिग्रथों आधार पर मैं जिस कविता का आदर करता हूँ, उसी को मैंने अप बुद्धि के अनुसार इस छोटे से दोहे छद में कहा है।

मनभावन आवन भवन, सुख सरसावन काज।
सावन बरसावन सुखनि, समय सुहावन आज ॥१८॥

शब्दार्थ—मनभावन = मन को भाने वाला, प्रियतम। बरसावन = बरसाने वाला। सुहावन = सुन्दर। भवन = घर।

भावार्थ—विक्रम कवि सावन का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सुर की वर्षा करने वाला सावन का सुन्दर समय आज आ पहुँचा है औ इसी समय सुख को सरसाने के लिए मनमोहन प्रियतम का भी घर प आगमन हो गया है।

कुंभकरन कौ देखि कपि, नासा-करन-विहीन।
अट्टहास करि भू झुके, मन भौ मोद अधीन ॥१९॥

शब्दार्थ—कपि = बन्दर। नासा = नासिका, नाक। करन = कर्ण कान। विहीन = रहित। अट्टहास = जोर से खिलखिलाकर हँसना भू = पृथ्वी। मोद = आनन्द, खुशी। भौ = हो गया।

भावार्थ—विक्रम कवि कहते है कि कुम्भकर्ण के नाक और का

कटे देखकर युद्ध में बन्दर जोर से खिलखिलाकर हँस पडे और उनका मन आनन्दविभोर हो उठा।

हनूमान बहु गिरि लिए, गरजत प्रभु कौ घेर।
लगी दृगन मैं टकटकी, रहे रिच्छ कपि हेर ॥२०॥

शब्दार्थ—बहु = बहुत से। गिरि = पर्वत। गर्जत = गर्ज रहे है। दृग = नेत्र, आँखें। रिच्छ = रीछ। हेर = देखना।

भावार्थ—हनुमान् जी सजीवनी बूटी से युक्त द्रोणाचल पर्वत को हाथ पर उठाये हुए भगवान् राम की जय-जयकार करते हुए जोर-जोर से गर्ज रहे हैं। राम की सेना के रीछ और बन्दर आदि उन्हें बडे प्रेम से एकटक निहार रहे हैं।

रघुनदन दसकंध के, काटे मुंड कराल।
छलक्यौ छतज कबध तैं, कर्यौ भूमि नभ लाल ॥२१॥

शब्दार्थ—रघुनंदन = श्रीरामचन्द्र। दसकंध = दस कधो या सिरो वाला रावण। मुंड = सिर। कराल = भयंकर। छलक्यौ = बहा। छतज = क्षतज, खून। कबन्ध = धड़। भूमि = पृथ्वी। नभ = आकाश।

भावार्थ—श्री रामचन्द्र जी ने रावण के दसो भयंकर सिरों को काट डाला। उन धड़ो से बहे हुए खून से पृथ्वी और आकाश लाल हो गये।

रोदन करत सुलोचना, पिय कौ मरन सुनाय।
रघुनंदन के दृग कमल, रहे आँसु उतराय ॥२२॥

शब्दार्थ—रोदन = रोना। सुलोचना = मेघनाद की स्त्री। दृगकमल = नेत्र रूपी कमल। उतराय = उतरे।

भावार्थ—मेघनाद के मर जाने पर उसकी स्त्री सुलोचना फूट-फूट कर रो रही है। उसे रोते देखकर दया के कारण भगवान् राम की भी आँखों में आँसू भर आये।

नहिं जानत गुन जासु को, सो तिहि निंदत जाइ।
गजमुक्ता तजिकै अधम, गुंजा लेत उठाइ ॥२३॥

शब्दार्थ—जासु कौ = जिसका। तिहि = उसका। निंदत = निन्दा करता है। गज-मुक्ता = एक विशेष मूल्यवान् मोती, कहते हैं कि यह हाथी के सिर से उत्पन्न होता है। तजिकै = छोड़कर। अधम = नीच।

भावार्थ—विक्रम कवि कहते हैं कि जो जिसके गुणों को नहीं जानता, वह उसकी निन्दा किया ही करता है। जैसे कि नीच जाति की भीलनी बहुमूल्य गजमोतियों को छोड़कर रत्तियों को उठा लेती है।

बिटप तिहारे पुहुप हम, सोभा देत बढ़ाइ।
और ठौर सीसन चढत, पै रावरे कहाइ ॥२४॥

शब्दार्थ—बिटप = वृक्ष। तिहारे = तुम्हारे। पुहुम = पुष्प। रावरे = आपके।

भावार्थ—पुष्प वृक्ष से कहते हैं कि हे वृक्ष! हम तुम्हारे पुष्प तुम्हारी शोभा बढा देते हैं। चाहे हम दूसरे स्थानों पर लोगों के सिरों पर चढते हैं पर कहलाते तो तुम्हारे ही हैं।

सुचि सुगंध सोभा सरस, राजत अमल अमंद।
सखि गुलाब के फूल तै, झरत मधुर मकरंद ॥२५॥

शब्दार्थ—सुचि = शुचि, पवित्र। अमल = निर्मल। अमन्द = तेज। मधुर = मीठा। मकरंद = पुष्प रस।

भावार्थ—एक सखी दूसरी सखी से गुलाब की सुन्दरता का वर्णन करते हुए कहती है कि हे सखी! इस गुलाब के पुष्प की अत्यन्त पवित्र सुगन्धि और शोभा है। यह अपनी बड़ी निर्मल कांति से सुशोभित हो रहा है। इससे मधुर मकरन्द (पुष्प-रस) झर रहा है।

चंद बरदाई

सरस काव्य रचना रचौं, खलजन सुनिन हसन्त ।
जैसे सिंधुर देखि मग, स्वान सुभाव भुसन्त ॥१॥

शब्दार्थ—रचौं=बनाता हूँ । खलजन=दुष्ट मनुष्य । सुनिन=सुनकर । हसन्त=हँसते हैं । सिंधुर=हाथी । मग=मार्ग । स्वान=कुत्ता । सुभाव=स्वभाव । भुसन्त=भौंकते हैं ।

भावार्थ—महाकवि चदबरदाई कहते हैं कि मैं महाकाव्य की रचना कर रहा हूँ । इस रचना को सुनकर दुष्ट लोग तो वैसे ही हँसेंगे जैसे हाथी को देखकर कुत्ते (मार्ग में) स्वभाव से ही भोंकने लगते हैं ।

तौ पुनि सुजन निमित्त गुन, रचिये तन मन फूल ।
जूका भय जिय जानिकै, क्यों डारिये दुकूल ॥२॥

शब्दार्थ—तौ=तो भी । पुनि=फिर । रचिये=बनाता है । फूल=प्रसन्नता । जूका=जूँ । जानिकै=जानकर । डारिये=डालें, फेंके । दुकूल=दुपट्टा ।

भावार्थ—फिर भी सज्जन पुरुष तो इसके गुणों के कारण इस रचना से प्रसन्न ही होंगे जैसे कोई इस भय से कि इसमें जूँएँ न पड जायें, दुपट्टे को फेंक थोडे ही देता है । जैसे जूँओं के भय से कोई दुपट्टा नहीं फेंक देता वैसे ही दुष्ट लोगों के परिहास के भय से कवि काव्यरचना से विमुख नहीं हो सकता ।

समदरसी ते निकट है, भुगति मुगति भरपूर ।
विषम दरस वा नरन ते, सदा सरवदा दूर ॥३॥

शब्दार्थ - समदरसी=सबको समान भाव से देखने वाला । निकट=पास में । भुगति=भोग । मुगति=मुक्ति, मोक्ष । विषम दरस=भेद-भावना वाला ।

भावार्थ—महाकवि चन्द वरदाई कहते है कि जो लोग समदर्शी हैं, प्राणीमात्र के लिए समान भाव रखते हैं, उनको भोग और मोक्ष दोनों अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं। इसके विपरीत जो विषमदर्शी हैं, जो भेद-भावना के काम लेते हैं, उन्हें वह मुक्ति कदापि नहीं प्राप्त हो सकती। ऐसे लोगों से भोग और मोक्ष दोनों दूर भागते हैं।

सूरदास

सुनि परमित पिय प्रेम की, चातक चितवति पारि।
घन आशा सब दुख सहै, अत न यॉंचै वारि ॥१॥

शब्दार्थ—परमित=परिणाम। चातक=पपीहा। चितवति= देखता है। घन=बादल। यॉंचै=मॉंगे। वारि=जल।

भावार्थ—सूरदास जी कहते हैं कि प्रिय के प्रेम के या परिणाम की महत्ता को जानकर या सुनकर पपीहा बादल की ओर निरन्तर देखता रहता है। उसी मेघ की आशा से सब दु ख सहता है पर मरते दम तक भी पानी के लिए प्रार्थना नहीं करता। सच्चा प्रेमी अपने प्रेमी से कभी कुछ नही मॉंगता या चाहता।

देखो करनी कमल की, कीनों जल सों हेत।
प्राण तज्यो प्रेम न तज्यो, सूख्यो सरहि समेत ॥२॥

शब्दार्थ—करनी=कार्य। कीनो=किया। हेत=प्रेम। तज्यो= छोड़ दिया। समेत=साथ। सर=तालाब।

भावार्थ—महाकवि सूरदास कहते हैं कि कमल के इस महान् कार्य को देखो कि उसने जल से प्रेम किया था तो प्राण दे दिये पर प्रेम को नहीं छोड़ा, यहाँ तक कि पानी के साथ कमल भी सूख गया।

दीपक पीर न जानई, पावक परत पतग।
तनु तो तिहि ज्वाला जर्यो, चित न भयो रस भग ॥३॥

शब्दार्थ—दीपक=दीया। पीर=पीड़ा। जानई=जानता है।

पावक=अग्नि। पतग=परवाना। तनु=शरीर। ज्वाला=लौ। भंग=नाश, टूटना।

भावार्थ—पतगा दिये की लौ पर जलकर भस्म हो जाता है पर दीपक इसकी पीडा को नहीं जानता। पतग का शरीर तो दीपक की ज्वाला में जलकर भस्म हो जाता है पर इसका प्रेम नष्ट नहीं होता।

मीन वियोग न सहि सकै, नीर न पूँछै बात।
देखि जु तू ताकी गतिहि, रति न घटै तन जात॥४॥

शब्दार्थ—मीन=मछली। नीर=पानी। तन=शरीर। घटै=कम होता है।

भावार्थ—चाहे पानी मछली की बात भी नहीं पूछता फिर भी मछली तो पानी का वियोग नहीं सह सकती। तुम मछली के प्रेम की निराली गति को देखो कि इसका निराला शरीर चला जाता है तो भी उसका पानी के प्रति प्रेम रत्ती भर भी कम नहीं होता।

सदा सँघाती आपनो, जिय को जीवन प्रान
सो तू बिसर्यो सजह ही, हरि ईश्वर भगवान॥५॥

शब्दार्थ—सँघाती=साथ रहने वाला। बिसर्यो=भूल गया। सहज=सरलता।

भावार्थ—सूरदास जी कहते हैं कि जो ईश्वर सदा अपने साथ रहने वाला है, प्राणों का भी प्राण है, उस प्रभु को तूने अनायास ही बातों ही बातों में भुला दिया है।

प्रभु पूरन पावन सखा, प्राणनहू को नाथ।
परम दयालु कृपालु प्रभु, जीवन जाके हाथ॥६॥

शब्दार्थ—पावन=पवित्र। सखा=मित्र। प्राणनहू=प्राणों का भी। नाथ=स्वामी।

भावार्थ—वह प्रभु परिपूर्ण है, पवित्र मित्र है, प्राणों का स्वामी है। अत्यन्त दयालु है और सभी प्राणियों का जीवन उसी के हाथ मे है।

जिन जड ते चेतन कियो, रचि गुण तत्व विधान।
चरन चिकुर कर नख दिये, नयन नासिका कान ॥७॥

शब्दार्थ—रचि = बनाकर। गुण = सत्व, रज, तम, ये तीन गुण। तत्व = पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पॉच तत्व। चरन = पॉव। चिकुर = बाल। कर = हाथ।। नासिका = नाक।

भावार्थ—सूरदास जी कहते हैं कि जिस ईश्वर ने सत्व, रज, तम—इन तीन गुणों तथा पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पॉच तत्वों के द्वारा जड़ से चेतन बना दिया और हाथ, पॉव, ऑख, कान, नाक, बाल, और नाखून दिये (बड़े दु.ख की बात है कि मनुष्य उसके गुणों का स्मरण नहीं करता)।

असन वसन बहु विधि दये, औसर औसर आनि।
मात पिता भैया मिले, नई रुचहि पहिचानि ॥८॥

शब्दार्थ—असन = भोजन। वसन = वस्त्र। बहुविधि = नाना प्रकार के। औसर = समय-समय पर। आनि = लाकर। रुचहिं = चाह या इच्छा वाले।

भावार्थ—उसी ईश्वर ने अनेक प्रकार के भोजन वस्त्रादि समय-समय पर लाकर दिये। और साथ ही नई-नई पहचान वाले माता, पिता, भाई आदि प्रियजन भी लाकर मिलाये।

कह जानो कहॅवा मुवो, ऐसे कुमति कुमीच।
हरि सों हेत विसारि के, सुख चाहत है नीच ॥९॥

शब्दार्थ—मुवो = मरा (एक गाली)। कुमति = बुरी बुद्धि वाला। कुमीच = बुरी मौत। हेत = प्रेम। विसारिके = छोड़कर।

भावार्थ—यह मनुष्य जाने कैसा दुष्ट बुरी बुद्धि वाला है। और न जाने कहाँ कैसी बुरी मौत मरेगा जो यह भगवान् से प्रेम या भक्ति को छोड़कर भी सुख चाहता है।

जो पै जिय लज्जा नहीं, कहा कहौ सौ वार।
एकहु अंक न हरि भजे, रे सठ 'सूर' गॅवार ॥१०॥

शब्दार्थ—अक=अक्षर। सठ=शठ, दुष्ट।

भावार्थ—सूरदास जी कहते हैं कि हे गॅवार दुष्ट, अगर तुझे अपने दिल में शर्म नहीं है, तो मैं तुझे सौ बार क्या कहूँ क्योंकि तूने तो एक बार भी भगवान् का भजन नहीं किया।

दादूदयाल

घीव दूध मे रमि रह्या, व्यापक सब ही ठौर।
दादू बकता बहुत हैं, मथि काढ़ें ते और ॥१॥

शब्दार्थ—घीव=घी। रमि रह्या=व्याप्त हो रहा। बकता=वक्ता, कहने वाला।

भावार्थ—दादूदयाल जी कहते हैं कि जैसे दूध में घी सर्वत्र व्याप्त हो रहा है, वैसे ही वह परब्रह्म परमात्मा सभी स्थानों में व्याप्त हो रहा है। इसका वर्णन करने वाले तो बहुत हैं पर ससार रूपी दूध को मथ कर उसमें से प्रभुरूपी मक्खन को प्राप्त कर लेने वाला कोई विरला ही है। वे और ही होते हैं जो भगवान् का दर्शन कर लेते हैं।

दादू दीया है भला, दिया करो सब कोय।
घर मे धरा न पाइये, जो कर दिया न होय ॥२॥

शब्दार्थ—धरा=रखा हुआ। कर=हाथ।

भावार्थ—दादूदयाल जी कहते हैं कि 'दीया' अर्थात् दान देना बड़ा अच्छा है; इसलिए सब कोई दान दिया करो। यदि हाथ में दीया न हो

तो अन्धेरे घर में रखी हुई चीज भी नहीं मिल सकती ।

कहि कहि मेरी जीभ रहि, सुणि सुणि तेरे कान ।
सतगुरु वपुरा क्या करै, जो चेला मूढ अजान ।।३।।

शब्दार्थ—वपुरा=बेचारा । मूढ़=मूर्ख ।

भावार्थ—गुरुदेव कहते हैं कि हे मूर्ख शिष्य ! मेरी जीभ कहते-कहते थक गई और तेरे कान सुनते-सुनते थक गये (पर तूने उस उपदेश पर कभी आचरण नहीं किया) । बेचारा सद्गुरु क्या करे, यदि चेला ही मूर्ख और अनजान हो ।

सुख का साथी जगत सब, दुख का नाहीं कोइ ।
दुख का साथी साइयाँ, दादू सतगुरु होइ ।।४।।

भावार्थ—दादूदयाल जी कहते हैं कि सारा ससार सुख का साथी है, पर दु ख का साथी कोई नहीं है । दु ख के साथी तो केवल सद्गुरुदेव या भगवान् ही हैं ।

दादू देख दयाल कौ, सकल रहा भरपूर ।
रोम रोम में रमि रह्यो, तू जिनि जानै दूर ।।५।।

शब्दार्थ—दयाल=दयालु ईश्वर । सकल=सब । जिनि=मत ।

भावार्थ—दादूदयाल जी कहते हैं कि वह प्रभु तो सब स्थानों में व्याप्त हो रहा है । और रोम-रोम में समाया हुआ है । तू उसे अपने से दूर मत समझ ।

मिसरी माँहैं मेल करि, मोल विकाना बस ।
यौं दादू महिंगा भया, पारब्रह्म मिलि हस ।।६।।

शब्दार्थ—माँहै=में । विकाना=बिक गया । हंस=आत्मा ।

भावार्थ—दादूदयाल जी कहते हैं कि मिश्री में मिलकर बाँस भी मिश्री के मूल्य में बिक जाता है । इसी प्रकार यह आत्मा भी परमात्मा मे मिल

कर उसी का रूप बन जाती है। भाव यह है कि कूजे की मिश्री में जो बाँस की फाँस लगी रहती है वह भी उस मिश्री के साथ ही बिकती है। इसी प्रकार जीव भी ब्रह्म में मिलकर उसी का रूप हो जाता है।

केते पारखि पचि मुये, कीमति कही न जाइ।
दादू सब हैरान हैं, गूँगे का गुड़ खाइ ॥७॥

शब्दार्थ—केते=कई। पारखि=परीक्षक। कीमति=कीमत, मूल्य।

भावार्थ—दादूदयाल जी कहते हैं कि कितने ही परीक्षक पच-पच कर मर गये पर उस प्रभु रूपी हीरे का मूल्य कोई न बता सका। दादूदयाल जी कहते हैं कि सब लोग, जिनको उस ईश्वर का ज्ञान हो भी गया, वे भी उसका वर्णन करने में वैसे ही असमर्थ हैं जैसे कि गूँगा गुड़ खाकर भी उसके स्वाद का वर्णन नहीं कर सकता।

जब मन लागै राम सों, तब अनत काहे को जाइ।
दादू पाणी लूण ज्यों, ऐसै रहै समाइ ॥८॥

शब्दार्थ—अनत=अन्यत्र दूसरे स्थान पर। लूण=नमक।

भावार्थ—दादूदयाल जी कहते हैं कि जब भक्त का मन भगवान् में लग जाता है तो उसका मन भगवान् को छोड़कर अन्यत्र नहीं जाता, जैसे कि नमक पानी में समा जाता है, फिर उससे अलग नहीं होता, वैसे ही जीव ब्रह्म से मिलकर उसके साथ एकाकार हो जाता है।

काया कठिन कमान है, खींचै विरला कोइ।
मारै पाँचौ मिरगलौ, दादू सूरा सोइ ॥९॥

शब्दार्थ—कमान=धनुष। विरला=कोई-कोई। मिरगलौ=मृग, हरिण (पाँचों इन्द्रियाँ रूपी हरिण)। सूरा=शूरवीर।

भावार्थ—दादूदयाल जी कहते हैं कि शरीर रूपी धनुष बड़ा

कठिन है। इसको खींचकर अपने वश में करने वाला कोई विरला है
वास्तव में पाँचों इन्द्रियों रूपी मृगों को मारकर उनको अपने वश में क
लेने वाला ही सच्चा शूरवीर है।

जिहि घर निंदा साधु की, सो घर गयो समूल।
तिनकी नीव न पाइये, नाँव न ठाँव न धूल ॥१०॥

शब्दार्थ—समूल=जड़ से।

भावार्थ—दादूदयाल जी कहते हैं कि जिस घर में सज्जनों की निन्द
होती है, उस घर का नाश हो जाता है। उस घर की नींव, नाम-निशा
और धूल का भी पता नहीं लगता।

मलूकदास

जहाँ जहाँ बच्छा फिरै, तहाँ तहाँ फिरै गाय।
कहैं मलूक जहँ सतजन, तहाँ रमैया जाय ॥१॥

शब्दार्थ—बच्छा = बछड़ा। रमैया = राम, ईश्वर।

भावार्थ—मलूकदास जी कहते हैं कि जिस प्रकार बछड़ा जहा-ज
जाता है गाय भी उसके पीछे-पीछे वहीं जाती है, वैसे ही जहाँ ज
श्रेष्ठ पुरुष जाते हैं वहीं-वहीं भगवान् भी जाते हैं।

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका यों कहै, सबके दाता राम ॥२॥

शब्दार्थ—पछी=पक्षी। दाता=देने वाला। चाकरी=सेवा।

भावार्थ—मलूकदास जी कहते हैं कि अजगर कभी किसी
सेवा नहीं करता, पक्षी कभी किसी का कोई काम नहीं करते तो भी उ
चारा चुग्गा मिलता ही रहता है। बात यह है कि भगवान् ही सबको दे
वाले और पालन-पोषण करने वाले हैं।

मलुका सोई पीर है, जो जानै पर प'र।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर वेपीर ॥३॥

शब्दार्थ—पीर=गुरु। पर=दूसरे की। पीर=पीड़ा। काफिर= अधर्मी या विधर्मी।

भावार्थ—मलूकदास जी कहते हैं कि सच्चा गुरु वही है जो दूसरे के दुख और पीड़ा को पहचाने। जो दूसरे की पीडा को नहीं पहचानता वह तो पीर या गुरु नहीं प्रत्युत बे-पीर अर्थात् निगुरा और काफिर या अधर्मी ही है।

माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम।
सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पायो विसराम ॥४॥

शब्दार्थ—कर=हाथ। जिभ्या=जीभ। विसराम=विश्राम।

भावार्थ—मलूकदास जी कहते हैं कि न तो मैं माला लेकर भगवान् का नाम ही लेता हूँ और न हाथों की उंगलियों पर गिनकर कभी जप करता हूँ। यहाँ तक कि कभी जीभ से भी राम का नाम नहीं लेता। बात तो यह है कि मेरा भगवान् स्वय स्मरण करता है। इसलिए मैंने तो विश्राम प्राप्त कर लिया है।

दया धर्म हिरदै वसै, वोलै अमृत वैन।
तेई ऊँचै जानिये, जिनके नीचे नैन ॥५॥

शब्दार्थ—हिरदै=हृदय में। वसै=रहता है। वैन=वचन, शब्द।

भावार्थ—मलूकदास जी कहते हैं कि जिनके हृदय में दया धर्म है, जो अमृत के समान मधुर वचन बोलते हैं विनय और लज्जा के कारण जिनकी आँखें सदा नीचे झुकी रहती हैं, वास्तव में वे ही ऊँचे मनुष्य या महापुरुष हैं।

आदर मान महत्व सत, पालापन को नेह।
ये चारों तबही गये, जबहि कहा कछु देह ॥६॥

शब्दार्थ—महत्व=बड़ाई। सत=सत्ता, हैसियत।

भावार्थ—मलूकदास जी कहते हैं कि आदर, मान, बड़ाई, सत्ता और बचपन का प्रेम, ये चारों उसी समय नष्ट हो जाते हैं, जबकि कोई मनुष्य किसी से कुछ माँगता है।

प्रभुता ही को सब मरै, प्रभु को मरै न कोय।
जो कोई प्रभु को मरै, प्रभुता दासी होय ॥७॥

शब्दार्थ—प्रभुता=बड़प्पन।

भावार्थ—मलूकदास जी कहते हैं कि बड़प्पन को तो सब कोई चाहते हैं पर उस बड़े प्रभु को प्राप्त करने का कोई कुछ प्रयत्न नहीं करता। यदि कोई उस प्रभु को प्राप्त कर ले तो प्रभुता उसकी दासी हो जाय।

सुन्दरदास

वैद्य हमारे राम जी, औषधि हू हरि नाम।
सुन्दर यहै उपाय अब, सुमिरण आठो जाम ॥१॥

शब्दार्थ—औषधि=दवाई। हू=भी। जाम=पहर (तीन घंटे का एक पहर)।

भावार्थ—सुन्दरदास जी कहते हैं कि भगवान् ही हमारे वैद्य हैं और वे ही हमारी औषधि हैं। हमारे लिए तो यही उपाय है कि हम आठों पहर अर्थात् दिन-रात भगवान् का स्मरण करते रहें।

सुन्दर ससय को नहीं, बडो महुच्छव एह।
आतम परमातम मिलो, रहो कि विनसो देह ॥२॥

शब्दार्थ—ससय=सन्देह। महुच्छव=महोत्सव, बड़ा भारी उत्सव। विनसो=नष्ट हो जाय। देह=शरीर।

भावार्थ—सुन्दरदास जी कहते हैं कि शरीर चाहे रहे या चला जाय, मुझे कुछ संशय या दुःख नहीं है। मेरे लिए तो यह बड़े भारी उत्सव की बात है, क्योंकि शरीर छूटने पर तो आत्मा और परमात्मा का मिलन हो जाता है।

सुन्दर जो गाफिल हुआ, तौ वह साईं दूर।
जो वन्दा हाजिर हुआ, तौ हाजरॉ हजूर ॥३॥

शब्दार्थ—गाफिल=असावधान। बन्दा=सेवक। हजूर=स्वामी।

भावार्थ—सुन्दरदास जी कहते हैं कि यदि भक्त असावधान हुआ तो भगवान् उससे दूर भाग जायेगे और यदि भक्त सावधान होकर सदा प्रभु की सेवा में उपस्थित रहा तो प्रभु उसके पास ही में प्रकट हो जायेंगे।

सुन्दर पंछी बिरछ पर, लियो बसेरा आनि।
राति रहे दिन उठि गये, त्यों कुटुम्ब सब जानि ॥४॥

शब्दार्थ—पंछी=पक्षी। बिरछ=वृक्ष। बसेरा=निवास। आनि=आकर। राति=रात। कुटुम्ब=परिवार।

भावार्थ—सुन्दरदास जी कहते हैं कि जिस प्रकार पक्षी वृक्ष पर आकर रात भर बसेरा लेता है, सारी रात वहीं काटकर प्रातःकाल होते ही वहॉं से उठ जाता है, उसी प्रकार यह आत्मा भी इस संसार रूपी कुटुम्ब मे आकर कुछ दिन रहकर फिर चला जाता है।

लौन पूतरी उदधि मैं, थाह लेन कौं जाइ।
सुन्दर थाह न पाइये, बिचही गई बिलाइ ॥५॥

शब्दार्थ—लौन=नमक। पूतरी=पुतली, डली। उदधि=समुद्र। बिलाइ=लुप्त हो गई, नष्ट हो गई।

भावार्थ—सुन्दरदास जी जीव और ब्रह्म की एकरूपता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार नमक की डली समुद्र की थाह लेने के लिए जाये तो वह समुद्र ही में समा जाती है, उसी का रूप बन जाती

है वैसे ही आत्मा भी परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर उसी का स्वरूप बन जाता है।

ललितकिशोरी

कदम-कुंज ह्वैहौं कबै, श्रीवृन्दावन माहिं।
ललितकिसोरी, लाड़िले, बिहरैंगे तिहिं छाहिं ॥१॥

शब्दार्थ—कदम=कदम्ब वृक्ष। ह्वैहौं=होऊँगा, बनूँगा। विहरैंगे=विहार करेंगे। तिहि=उसकी। छाहि=छाया में।

भावार्थ—ललितकिशोरी जी कहते हैं कि कब मैं श्री वृन्दावन के कदम्ब-कुंज में जाऊँगा जिनकी छाया में लाड़ले लाल श्रीकृष्ण विहार किया करते हैं।

कब हौं सेवा-कुंज में, ह्वैहौं स्याम तमाल।
लतिका कर गहि बिरमिहैं, ललित लड़ैतीलाल ॥२॥

शब्दार्थ—हौं=मैं। सेवाकुंज=वृन्दावन में एक स्थान का नाम स्याम=काला। तमाल=एक वृक्ष का नाम। लतिका=बेल। कर=हाथ। गहि=पकड़ कर। बिरमिहैं=विश्राम करेंगे या सहारा लेंगे ललित=सुन्दर। लड़ैतीलाल=लाडलेलाल श्रीकृष्ण।

भावार्थ—ललितकिशोरी जी कहते हैं कि मैं वृन्दावन के सेवा-कुं में कब ऐसा श्याम तमाल वृक्ष बन जाऊँगा जिसकी लताओं या शाखाओं को पकड़ कर प्रियतम श्रीकृष्ण विश्राम किया करेंगे। भाव यह कि ललित किशोरी जी सेवा-कुंज या तमाल वृक्ष ही बन जाना चाहते हैं ताकि उ रूप में उन्हें भगवान् के अङ्गों का स्पर्श तो प्राप्त होता रहेगा।

सुमन-वाटिका-विपिन में, ह्वैहौ कब मैं फूल।
कोमल कर दोउ भावते, धरिहैं बीनि दुकूल ॥३॥

शब्दार्थ—सुमन=फूल। वाटिका=बगीची। विपिन=जंगल य

बाग। दोऊ=दोनों (राधा और कृष्ण)। भावते=प्रिय। धरिहैं= रखेंगे। दुकूल=दुपट्टा।

भावार्थ—ललितकिशोरी जी कहते हैं कि वह दिन कब आयेगा जब मैं पुष्पवाटिकाओं अर्थात् फूलों की बगीची या बागों में ऐसा फूल बन जाऊँगा जिसे चुन-चुनकर प्रियतम श्रीकृष्ण और राधिका अपने दुपट्टे में धर लिया करेगी। भाव यह कि इस मनुष्य बनने से तो पुष्प बन जाना ही अच्छा है जिसे श्री राधा-कृष्ण सदा अपने आँचल में लिये रहते हैं। और इस प्रकार वह सदा उनके अगों के साथ लगा रहता है।

कब कालीदह-कूल की, ह्वै हौं त्रिविधि समीर।
जुगुल अँग-अँग लागिहौं, उडिहै नूतन चीर ॥४॥

शब्दार्थ—कालीदह=वृन्दावन में यमुना का एक घाट जहाँ 'काली' रहा करता था। कूल=किनारा। त्रिविध=शीतल, मन्द और सुगन्धित तीन प्रकार की। समीर=वायु। जुगल=दोनों (राधा-कृष्ण)। लागिहौं=लगूँगा। उडिहै=उड़ेगा। नूतन=नया। चीर=वस्त्र।

भावार्थ—ललितकिशोरी जी कहते हैं कि यमुना के कालीदह नामक घाट के किनारे की शीतल, मन्द, सुगन्धित तीन प्रकार की वायु कब बन जाऊँगा। और इस प्रकार वायु बनकर राधाकृष्ण के अगों का इस प्रकार से कब स्पर्श करूँगा जिससे कि उनके नये वस्त्र उड़ने या लहराने लगें।

मिलिहैं कब अँग छार ह्वै, श्रीबन बीथिन धूरि।
परिहैं पद-पंकज जुगुल, मेरी जीवन-मूरि ॥५॥

शब्दार्थ—छार=धूल, राख। ह्वै=होकर। श्रीबन=वृन्दावन का एक बाग। बीथिन=मार्गों या पगडडियों में। धूरि=धूल। परिहैं=पड़ेंगे। पदपंकज=चरण-कमल। जीवनमूरि=जीवन के आधार।

भावार्थ—ललितकिशोरी जी कहते है कि मैं राख या धूल बनकर

कब व्रज के श्रीवन के मार्गों या पगडंडियों से जाऊँगा ताकि मेरे जीवनाधार श्री राधा कृष्ण के चरण-कमल मुझ पर पड़ते रहें।

भूषण

दसरथ जू के राम भे, वसुदेव के गोपाल।
सोई प्रगटे साहि के, श्री सिवराज भुवाल ॥१॥

शब्दार्थ—जू=जी। भे=हुए। गोपाल=श्रीकृष्ण। प्रगटे=प्रगट हुए। साहि=शाहजी, शिवाजी के पिता। सिवराज=शिवाजी। भुवाल=राजा।

भावार्थ—महाकवि भूषण कहते है कि महाराज दशरथ के श्रीरामचन्द्र जी उत्पन्न हुए और वसुदेव के श्रीकृष्ण प्रकट हुए, वैसे ही शाहजी के श्री शिवाजी महाराज प्रकट हुए।

गरव करत कत चाँदनी, हीरक छीर समान।
फैली इती समाज गत, कीरति सिवा खुमान ॥२॥

शब्दार्थ—गरव=गर्व। कत=क्यों। हीरक=हीरा। छीर=क्षीर, दूध। इती=इतनी। समाज गत=समाज में व्याप्त। कीरति=यश। खुमान=शिवाजी की उपाधि।

भावार्थ—महाकवि भूषण चाँदनी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे हीरे और दूध के समान स्वच्छ चाँदनी! तू अपनी निर्मलता का अभिमान क्यों करती है, क्योंकि सारे समाज में व्याप्त श्री शिवाजी महाराज की तेरे ही समान स्वच्छ और निर्मल कीर्ति सारे समाज में फैल रही है। भाव यह कि शिवाजी का यश चाँदनी से भी अधिक स्वच्छ और निर्मल है।

आयो आयो सुनत ही, सिव सरजा तुव नावँ।
वैरि नारि दृग जलन सों, बूडि जात अरि गावँ ॥३॥

शब्दार्थ—आयो=आया। तो=तेरा। नावँ=नाम। वैरी=शत्रु। नारी=स्त्री। दग=आँख। दगजलन =आँख के पानी, आँसू। बूड़ि जात=डूब जाते हैं। अरि=शत्रु।

भावार्थ—भूषण कवि कहते हैं कि हे शिवाजी महाराज! आप गाँव के पास में आ पहुँचे हैं, यह बात सुनते ही शत्रुओं की स्त्रियों की आँखों के जल अर्थात् आँसुओं से उनके गाँव डूब जाते हैं। भाव यह कि शत्रुओं की स्त्रियाँ जब यह सुन लेती हैं कि शिवाजी महाराज चढाई करते-करते हमारे गाँव के पास तक आ पहुँचे हैं, तो उन्हें निश्चय हो जाता है कि उनके पति अब अवश्य युद्ध में मारे जायेंगे। इसलिए वे शोकाकुल होकर इतना रोती हैं कि सारे गाँव के गाँव ही उनके आँसुओं से बह जाते हैं।

कवि तरुवर सिव सुजस रस, सींचे अचरज मूल।
सुफल होत है प्रथम ही, पीछे प्रगटत फूल ॥४॥

शब्दार्थ—तरुवर=वृक्ष। कवि-तरुवर=कविरूपी वृक्ष। सिव=शिवाजी महाराज। सुजस रस=सुन्दर यश रूपी जल। अचरज=आश्चर्य। प्रथम=पहले।

भावार्थ—भूषण कवि कहते हैं कि कवि रूपी वृक्ष शिवाजी के सुन्दर यश रूपी जल से इस प्रकार सींचे गये हैं कि उन्हें देखकर बड़ा आश्चर्य होता है; क्योंकि और वृक्षों के तो पहले फूल लगते हैं, फिर फल लगते हैं पर यहाँ पर शिवाजी की प्रसन्नता ने कवियों को पुरस्कार रूपी फल पहले ही मिल जाता है और उसके इस परिणाम स्वरूप आनन्द से वे खिल उठते हैं। इसलिए फल के पश्चात् फूल होता है, यह कहा गया है। यही आश्चर्य का विषय है।

तुही साँच द्विजराज है, तेरी कला प्रमान।
तो पर सिव किरपा करी, जानत सकल जहान ॥५॥

शब्दार्थ—साँच=सच्चा। द्विजराज=चन्द्रमा और ब्राह्मण।

शब्दार्थ—बानी=वाणी, शब्द। चर्चा=भगवान् का गुणगान। सगत=साधुओं की सगति।

भावार्थ—साधु रूपी वृक्ष हैं, उनकी वाणी ही मानो कलियाँ है और भगवान् की चर्चा मानो फूल खिल रहे हैं। सज्जनों की सगति रूपी बाग में अनेक प्रकार के फल पक रहे हैं।

बैठ बैठ बहुतक गये, जग तरवर की छाँहि।
सहजो बटाऊ बाट के, मिलि-मिलि बिछुरत जाहि ॥७॥

शब्दार्थ—बहुतक=बहुत से। तरवर=वृक्ष। बटाऊ=यात्री। बाट=मार्ग।

भावार्थ—ससार रूपी वृक्ष की छाया मे बहुत से लोग बैठ बैठ कर चले गये। मार्ग के यात्री रूपी ये प्राणी एक दूसरे से कुछ समय मिलकर फिर बिछुड़ जाते हैं।

अभिमानी नाहर बडो, भ्रमत फिरत उजार।
सहजो नन्हीं बाकरी, प्यार करै ससार ॥८॥

शब्दार्थ—नाहर=शेर। भ्रमत=घूमता हुआ। उजार=जगल।

भावार्थ—सहजो बाई कहती हैं कि अभिमानी पुरुष को, उस बड़े भारी सिंह के समान जो उजाड़ जगलों में घूमता फिरता है, कोई भी नहीं पूछता, सब उससे डरते हैं पर अभिमान रहित नन्हीं-सी बकरी को सारा ससार प्यार करता है।

सीस कान मुख नासिका, ऊँचै ऊँचै ठाँव।
सहजो नीचे कारने, सब कोउ पूजै पाँव ॥९॥

शब्दार्थ—नासिका=नाक। ठाँव=स्थान।

भावार्थ—सहजो बाई कहती हैं कि सिर, कान, मुख और नाक ये सब ऊँचे-ऊँचे स्थानो पर हैं किन्तु इनको कोई नही पूजता बल्कि

पाँव की सब लोग पूजा करते हैं क्योंकि वे सबसे नीचे हैं भाव यह कि अभिमानी को कोई नहीं पूछता।

प्रेम दिवाने जो भये, पलट गयो सब रूप।
सहजो दृष्टि न आवई, कहाँ रंक कहँ भूप ॥१०॥

शब्दार्थ—दिवाने=पागल। पलट गयो=बदल गया। रंक=गरीब। भूप=राजा।

भावार्थ—जो मनुष्य प्रेम में पागल हो गये हैं उनका सारा रूप ही बदल जाता है। यहाँ तक कि उसे राजा तथा रंक मे कोई भेद मालूम ही नहीं होता।

साहन को तो भै घना, सहजो निरभै रंक।
कुंजर के पग बेड़ियाँ, चींटी फिरै निशंक ॥११॥

शब्दार्थ—भै=भय, डर। निरभै=निर्भय, निडर। कुंजर=हाथी।

भावार्थ—सहजो बाई कहती हैं कि शाहो या धनवानों को तो बहुत अधिक भय रहता है पर गरीब सदा निडर ही रहते हैं। जैसे कि हाथी के पैरों में तो बेड़ियाँ पड़ी रहती हैं पर कीडी सर्वत्र निडर होकर घूमती है।

दयाबाई

जो पग धरत सो दृढ धरत, पग पाछे नहिं देत।
अहंकार कूँ मार करि, राम रूप जस लेत ॥१॥

शब्दार्थ—दृढ=मजबूत। जस=यश।

भावार्थ—सज्जन पुरुष जो भी पाँव उठाते हैं मजबूती से उठाते हैं, एक बार उठाये हुए पाँव को फिर पीछे नहीं रखते हैं। दयाबाई कहती हैं कि सज्जन अहंकार को मार कर भगवान् का रूप बन जाते हैं और यश प्राप्त करते हैं।

बौरी ह्वै चितवत फिरूँ, हरि आवै केहि ओर।
छिन उट्ठूँ छिन गिर परूँ, राम दुखी मन मोर ॥२॥

शब्दार्थ—बौरी = पगली। ह्वै = होकर। चितवत = देखती।

भावार्थ—दयाबाई कहती हैं कि मैं पागल होकर देखती फिरती हूँ, कि भगवान् किस ओर से आते हैं? कभी उठती हूँ, कभी गिर पड़ती हूँ। हे राम! आपके विरह में मेरा मन बड़ा दु.खी हो रहा है।

प्रेम पुंज प्रगटै जहाँ, तहाँ प्रगट हरि होय।
दया दया करि देत हैं, श्रीहरि दर्शन सोय ॥३॥

शब्दार्थ—पुंज = समूह।

भावार्थ—दयाबाई कहती हैं कि जहाँ पर प्रेम प्रकट होता है वहाँ भगवान् स्वयं प्रकट हो जाते हैं। भगवान् फिर दया करके उसे स्वयं दर्शन दे देते हैं।

दुख तजि सुख की चाह नहिं, नहिं वैकुण्ठ बेवान।
चरन कमल चित चहत हौं, मोहि तुम्हारी आन ॥४॥

शब्दार्थ—तजि = छोड़कर। बेवान = विमान। आन = सौगंध।

भावार्थ—दयाबाई कहती हैं कि हे भगवन्, मैं तुम्हारी सौगंध खाकर कहती हूँ कि मुझे दु ख को छोड़कर सुख की इच्छा नहीं है और न मुझे वैकुण्ठ के विमान की ही इच्छा है। मैं तो आपके चरण-कमलों में ही चित्त लगाना चाहती हूँ।

साधु संग मैं सुख बडो, जो करि जानै कोय।
आधो छिन सतसंग को, कलमख डारै खोय ॥५॥

शब्दार्थ—छिन = क्षण। कलमख = कल्मष, पाप। डारैं खोय = नष्ट करते हैं।

भावार्थ—दयाबाई कहती हैं कि यदि कोई जान ले तो उसे ज्ञात होगा कि साधुओं की संगति में बड़ा भारी सुख है। सत्संगति का आधा क्षण भी मनुष्य के सब पापों को नष्ट कर देता है।